मास्टर ऑफ सोशल वर्क
(M.S.W.)
प्रथम वर्ष

भारतीय समाज एवं सामाजिक समस्याएँ
Indian Society & Social Problem
(द्वितीय प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (सतना) म.प्र. - ४८५३३४

भारतीय समाज एवं सामाजिक समस्याएँ
(Indian Society & Social Problmem)

ई–संस्करण 2023–24 / M.S.W. –I - 02

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :

प्रो. भरत मिश्र

कुलपति

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

डॉ. विनोद शंकर सिंह, म0ग0चि0ग्रा0 विश्वविद्यालय चित्रकूट

डॉ. अजय आर. चौरे, म0ग0चि0ग्रा0 विश्वविद्यालय चित्रकूट

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. अजय आर. चौरे,

पाठ्यक्रम अभिकल्पना एवं सम्पादक मण्डल :

डॉ. कमलेश थापक डॉ. ललित सिंह

डॉ. नीलम चौरे डॉ. राजेश त्रिपाठी

मुद्रण प्रस्तुति

डॉ. सन्तोष अरसिया, उपकुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सन्तोष राजपूत, सहायक कुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

शिवांगी त्रिपाठी

सम्पर्क सूत्र :

डॉ. कमलेश थापक, निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष– 07670–265460, E-mail – directordistancemgcgv@gmail.com, website : www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

प्राक्कथन...

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की तपोस्थली, मंदाकिनी नदी के सुरम्य तट पर स्थापित महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय भारतरत्न नानाजी देशमुख के शैक्षिक चिंतन और संकल्पों की जीवंत अभिव्यक्ति है, जो म.प्र.शासन द्वारा 12 फरवरी, 1991 को विशेष अधिनियम 09, 1991 द्वारा स्थापित हुआ।

विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है–'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्' अर्थात ग्राम विश्व का लघु रूप है। विश्वविद्यालय चित्रकूट में स्थित है, जो एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। नई पीढ़ी के लिये यह स्थान आदर्श एवं प्रेरणा का केन्द्र है।

विश्वविद्यालय में कृषि, प्रबंधन, अभियांत्रिकी, लोक विज्ञान, ग्रामीण विकास एवं स्थानीय स्वशासन, लोक शिक्षा, कला, संस्कृति एवं साहित्य सहित सभी अकादमिक धारायें प्रभावी रूप में उपस्थित हैं। विश्वविद्यालय, ग्राम को समाज जीवन की मूल इकाई मानकर शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध और प्रसार कार्यों से सर्वांगीण विकास के लिए विगत 3 दशकों से अधिक समय से समर्पित प्रयास कर ग्रामोदय से राष्ट्रोदय के संकल्प में लगा हुआ है। विश्वविद्यालय ने अपनी गतिविधियों और कार्यक्रमों के माध्यम से कौशल विकास के उन्नयन एवं प्रमाणन तथा सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है तथा शासन के सहयोगी के रूप में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

प्राचीन एवं सनातन भारतीय ज्ञान की परम्परा के आलोक में आई, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 चिरवांछित जन आकांक्षाओं की सम्यक् अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के युगान्तरकारी प्रावधानों को लागू करने में मध्यप्रदेश अग्रणी राज्य रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने नवाचारों के लिए सकारात्मक और अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया है। विद्यार्थियों की पठन–पाठन की स्वतंत्रता, कौशल विकास के समुचित अवसर तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार आने वाले भविष्य के लिए तैयार करने की प्रतिबद्धता राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों में स्पष्टतः दिखाई देती है।

विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों को दूरवर्ती के विभिन्न पाठ्यक्रमों में अर्थपूर्ण रूप से जोड़कर इन्हें सत्र 2023–24 से पुनः संशोधित/परिवर्धित रूप में प्रारम्भ किया है। विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रसार एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु दूरवर्ती माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष प्रयास कर रहा है। दूरवर्ती पद्धति से संचालित विभिन्न पाठ्यक्रमों में नियमित संपर्क कक्षाओं के आयोजन, उच्च शिक्षा की स्व–अध्ययन सामग्री एवं नई शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शिक्षार्थी को बेहतर शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चत की जा रही है।

विश्वविद्यालय के दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र द्वारा सत्र 2024–25 में संचालित परास्नातक, स्नातक तथा डिप्लोमा स्तरीय दूरवर्ती पाठ्यक्रमों के शिक्षार्थियों हेतु ई–स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करते हुये मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है।

पाठ्यक्रम से जुडे सभी शिक्षार्थियों, अभिभावकों, प्रशासकों, समन्वयकों और अन्य सभी को मेरी मंगलकामनायें

प्रो. भरत मिश्रा
कुलपति

भारतीय समाज एवं सामाजिक समस्याएँ
(Indian Society and Social Problem)

विषय–सूची

इकाई – 1 : समाज (Social)

इकाई – 2 : सत्ताधारी अभिजन (The Poewr Elite)

इकाई – 3 : सामाजिक परिवर्तन (Social change)

इकाई – 4 : भारत में सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य (Goals of Social Change in India)

इकाई – 5 : निर्धनता (Poverty)

यूनिट–1

समाज (Social)

- मैकाइवर एवं पेज के अनुसार समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल या व्यवस्था है।
- समाज के निर्माण के लिये मैकाइवर एवं पेज ने तीन बातों का उल्लेख किया है–

1. व्यक्तियों की बहुमता क्रिया
2. अन्तःक्रिया
3. सामाजिक सम्बन्ध
4. समाज शब्द लैटिन शब्द से बना है।

- J.L. Gillin ने अपने ग्रन्थ 'The ways of men' मे कहा है 'समाज तुलनात्मक रूप से बड़ा और स्थायी समूह है जो सामान्य हितों समान्य भू–भाग पारस्परिक सहयोग अथवा अपनत्व की भावना से प्रयुक्त है तथा जिसके आधार पर अपने को बाहर के समूहों से पृथक रखता है।
- बी.टयूटर जिस प्रकार जीवन एक वस्तु नहीं वरन् जीने की एक प्रक्रिया है, उसी प्रकार समाज एक वस्तु नहीं वरन् सम्बन्ध बनाने की प्रक्रिया है।'

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार समाज की विशेषतायें हैं–

a. रीतियाँ
b. कार्यप्रणालियाँ
c. सत्ता
d. सहायता
e. समूह एवं विभाग
f. व्यवहारों पर नियन्त्रण
g. स्वतन्त्रता

नोट– समाज की परिभाषायें नोट में दी गई है।

हैरी एम. जॉनसन के अनुसार– समाज एक ऐसा समूह है, जिसमें चार तत्व पाये जाते हैं–

निश्चित क्षेत्र
प्रजनन
विस्तृत संस्कृति
स्वतन्त्रता

नोट– जॉनसन ने समाज को मूर्तता के रूप में परिभाषित किया है।

समाज की विशेषतायें–

1. पारस्परिक जागरूकता
2. समाज अमूर्त है।
3. समाज में समानता एवं असामनता
4. समाज में सहयोग एवं संघर्ष
5. समाज अन्योन्याश्रिता पर आधारित है।
6. समाज एक परिवर्तनशील एवं जटिल व्यवस्था है।

7. सभी जीवों में समाज पाये जाते हैं। किन्तु समाजशास्त्र मे केवल मानव समाज का ही अध्ययन करते हैं।

किग्सले डेविस के अनुसार समाज के निम्न तत्व हैं–

1. सभी समाज की प्रथम आवश्यकता सदस्यों के संगठन का एक स्तर होना है।
2. जनसंख्या
3. समाज व्यवस्था किसी न किसी प्रकार के समूह में अन्तःक्रियाओं द्वारा इन आवश्यकताओं की पूर्ति सरल बनाती है।

समूह सहयोग के लिये किसी न किसी रूप में श्रम विभाजन या सदस्यों में विशेषीकरण आवश्यक है।

प्रत्येक समाज के लिये सदस्यों को एक दूसरे के सम्पर्क में आना और इस प्रकार के लिये आवश्यक प्रेरणाओं का होना आवश्यक है। प्रत्येक समाज के लिये व्यवस्था एवं निरन्तरता बनाये रखना आवश्यक है।

नोट– समाज कई प्रकार का होता है।

1. सरल समाज
2. जटिल समाज
3. कृषक समाज
4. औद्योगिक
5. उत्तर औद्योगिक समाज

(1) जनजातीय समाज (Tribal Society)–

माण्डल हॉबल ने अपनी पुस्तक 'Man in the primitivewirta' में कहा है, ''एक जनजाति एक सामजिक समूह है जो एक विशेष भाषा बोलता है। एक विशेष संस्कृति रखता है, जो दूसरे जनजातिय समूहों से पृथक करती है। वह अनिवार्य रूप से राजनैतिक संगठन नहीं है।''

गिलिन एवं गिलिन ने अपनी पुस्तक 'Cultural Sociology' में कहा, ''स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी संग्रह को जो कि एक सामान्य क्षेत्र में रहता है, एक समान्य भाषा बालता है एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता है, एक जनजाति है।''

D.N. Magumdar ने अपनी पुस्तक 'Races and Cultures of India' में कहा है कि जनजाति परिवार या परिवारों के समूह का एक संकलन होता है जिनका एक सामान्य नाम है, जिनके सदस्य एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं समान भाषा बोलते है और विवाह, व्यवसाय, उद्योग के विषय में निश्चित नियमों का पालन करते है। पारस्परिक कर्त्तव्यों की एक सुनिश्चित व्यवस्था का प्रतिमान है।

डॉ. रिर्क्य, ''जनजाति एक ऐसा सरल प्रकार का समूह है जिसके सदस्य सामान्य भाषा का प्रयोग करते हों, युद्ध आदि सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते है।''

नोट– रिवर्स ने भौगोलिक क्षेत्र का वर्णन नहीं किया है।

संविधान के अनुच्छेद 366 में जनजातियों को परिभाषित किया गया है। जनजातियों को संविधान के अनुसार अनुसूचित जनजाति कहा जाता है। तथा इसकी परिभाषा अनुच्छेद 366 में दी गयी है।

इन्हें गिरिजन, आदिवासी नामों से भी सम्बोधित किया जाता है।

वेरियर एल्विन के अनुसार, ''ये जनजातियाँ ही इस देश की वास्तविक उपज है तथा इनकी उपस्थिति में प्रत्येक भारतवासी विदेशी है।''

जनजातियों के मसीहा ठक्कर बप्पा एवं संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य जयपाल सिंह ने आदिवासी नाम से पुकारा है। वेरियर एल्विन ने भी आदिवासी कहा है।

G.S. Ghuriye (घुरिये) ने इन्हें 'पिछड़े हिन्दू' कहा है।

जनजातियों की विशेषताएँ–

1. सामान्य भूक्षेत्र
2. सामान्य भाषा
3. बड़ा आकार
4. अन्तर्विवाह
5. एक नाम
6. सामान्य संस्कृति

'शमन'– शमन सरल समाजों में धार्मिक जादुई विशेषण होते है। उनमें अलौकिक शक्ति पाई जाती है। बीमारी का इलाज तथा फसल की सुरक्षा करते हैं। Gerontocide वृद्धों को मारने की प्रथा । यह प्रथा टुण्ड्रा क्षेत्र में पायी जाती है। विशेषतः एस्कीमो में। जब वृद्ध कार्य करने में अक्षम हो जाते हैं या आर्थिक बोझ बन जाते हैं तो वहाँ के लोगों द्वारा वे मार दिये जाते हैं। इनके आवास को इग्लू कहते हैं। रेण्डियर नामक कुत्ते पालते हैं तथा स्लेज नामक गाड़ी का प्रयोग करते हैं।

जनजातियों का वर्गीकरण–

भौगोलिक वर्गीकरण– बी.एस. गुहा ने अपनी पुस्तक 'Recial elements in Indian population' में भौगोलिक आधार पर भारतीय जनजातियों को तीन क्षेत्रों में बाँटा है–

1. उत्तर एवं उत्तर पूर्वी क्षेत्र– कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, असम, लेह शिमला, लुसाई पर्वत।

प्रमुख जनजातियाँ– भोटिया, थारू, लोज्जा, नागा, गोरा, खासी डाफला, कूकी, मिकिर, मुसाई गुज्जर, चकमा, गुरंग।

2. मध्य क्षेत्र– उत्तर गंगा के मैदान से लेकर कृष्णा नदी तक एवं विन्ध्य तथा सतपुड़ा पहाड़ियों तक।

बंगाल, बिहार, द. उत्तर प्रदेश, द. राजस्थान, म.प्र., उडीसा और महाराष्ट्र का उत्तरी भाग। **3. प्रमुख जनजातियाँ**– संथाल मुण्डा, उराँव, और झे, खरिया, बिरहोर, बैगा, भील, केरल, मीड़ा।

दक्षिणी क्षेत्र– कृष्णानदी के दक्षिण में मैसूर, त्रावणकोर, कोचीन, हैदराबाद, आ.प्र., तमिलानाडु

4. प्रमुख जनजातियाँ– नीलगिरि के टोडा, कोटा, पेरियार, इरूला, एनादी, चेचू, कुरुम्बा, अण्डमान–निकोबार के जाखा (श्रवजंजं), निकोबारी, सेण्डलीज, ऑग, शोयन।

नोट– श्यामाचरण दुबे ने चार वर्गों में बाँटा है। तीन बी.एस. गुहा के समान है। चौथा वर्ग पश्चिमी क्षेत्र है। पश्चिमी क्षेत्र में महादेव,कोली, भील, कटकरी आती है।

(ठ) प्रजातीय वर्गीकरण – बी.एस. गुहा ने तीन वर्गों में बाँटा है।

1. नीग्रिटो– यह सबसे पुरनी है। द. भारत की कादर, पेरियार, इरूला असम के अंगामी नागा, झारखण्ड एवं नीलगिरि की पहाड़ियों में रहने वाली प्रजातियाँ।

2. प्रोटो आस्ट्रेलायड– भारत में अधिक संख्या में हैं। मध्य भारत की अधिकांश जनजातियाँ, भील एवं चेंचू।

3. मंगोलायड– पूर्वोत्तर भारत की जनजातियाँ चौड़े सिर वाली जनजातियाँ चटगाँव एवं वर्मा। लम्बे सिर वाली असम और समीप्रान्त में।

आर्थिक वर्गीकरण

1. शिकार एवं फलाश्रित जनजातियाँ– दक्षिण भारत की इहला, चेचू कादर, मालापन्तरम, पेरियार, बिहार की बिरहोर तथा खरिया, म.प्र. की कमार, बैगा, अभुजमरिया, आ.प्र. की एनादी, तमिलनाडु की कोया, कोड़ा कोडारेड्डी महाराष्ट्र की कटकरी।

2. पशुपालक– नीलगिरी के टोड़ा (भैंसपपालन), हिवप्रव के गुज्जर, कश्मीर के बाकरवाल, उ.प्र. के भोटिया (पशुपालक एवं पशुव्यवसायिक दोनों हैं)

3. खेती करने वाली जनजातियाँ– संथल, ओरॉव, हो, उ.प्र. के थारू एवं कोरवा, म.प्र. के भील एवं भीलाना, उडीसा की सओरा, नीलगिरि की बगाडा, मिजोरम की मीजो एवं अरूणाचाल के अयातानी तथा घाटी अपाटानी (झूम कृषि से स्थायी कृषि)

4. उद्योगरत् जनजातियाँ– ओरॉव, मुण्डा, खरिया, गोंड, असम के चाय बागान एवं अन्य अद्योगों में लगी जनजातियाँ।

5. शिल्पकार जनजातियाँ– कोरवा, अगडिया (परम्परागत लौह गलाने) थारू (काष्ठ उपकरण, घरेलू बर्तन, टोकरी, संगीत–वाघ–यन्त्र, रस्सी और चटाई तैयार करने वाले) रूला (बाँस की चटाई, टोकरियाँ एवं पहिए का निर्माण), अपातानीर (चाकू तथा तलवार) काटा (कुशल बढ़ई, लोहार एवं कुम्हार होते हैं), मारिया मुरिया (सुन्दर प्रतिमाओं का निर्माण), गोण्ड (धातु या मिटी के खिलौने)।

नोट– नीलगिरि की जनजाति– टोड़ा, कोटा, बरागा।

(1) भाषाई वर्गीकरण– चार वर्ग।

1. इण्डो–यूरोपियन या आर्यन– मराठी, बंगाली
2. द्राविडियन– द. भारत की

3. आस्ट्रिक

4. साइनोट्राइबेटन या चीनी–तिब्बती

नोट– द्रविडियन भाषा तेलुगू, कन्नड, तमिल, मलायालम, गोडं लोग मध्यभारत, हैदाराबाद, आ.द. राज्यों में फैले हैं तथा द्रविड भाषा बोलते है। मल्टोगोनिया भी द्रविड भाषा बोलते हैं। उडिसा की कुन्ध, बिहार एवं उडीसा में रहने वाली हुई और उरॉव में भी। टोडा, मलेर, पोलिया, सवर, कोया, पनियान, चेंचू, इरूला, कादर (सभी) की द्रविड भाषा बोलती हैं।

आस्ट्रिक भाषा–परिवार मध्य एवं पूर्वी भारत की कोल एवं मुण्डा इस भाषा को बालती है। यह भाषा Bihar, Orisa, Assamesa में प्रचलित है। सन्थाली, मुन्दारी हो, खरिया, धूमिज, गारो, खासी।

कारक भाषा म.प्र. एवं बरार क्षेत्र में बोली जाती है।

यसथरा और गाडबा भाषा उड़ीसा में बोली जाती है।

मध्य क्षेत्र में अस्ट्रिक भाषा की प्रबलता है किन्तु ओरॉव, पोलांव, खोण्ड (कोण्ड) द्रविण भाषा से मिल्ती–जुलती भाषा बालते है।

साइनो–ट्राइबेटर भाषा परिवारः– पूर्वी कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हि.प्र., भूटान, उ. पूर्वी बंगाल, असम, सिक्मि, नेपाल, दार्जलिंग, बिपुरा आदि। कुछ उत्तर पूर्वी में मोनखमेड भाषा (Mon-shms) का प्रयोग होता है। यह भाषा आस्ट्रिक भाषा परिवार से सम्बन्धित है। उदाहरण– खासी। नागा पहाड़ की जनजातियों में 16 भाषाएँ बोली जाती है।

सांस्कृतिक वर्गीकरण– वेरियर एल्विन ने अपने ग्रन्थ 'Aborigionals (1943) में सांस्कृतिक आधार पर वर्गीकरण किया है।

अपराधी जनजातियाँ– अपराधी जनजातियों के निम्न क्षेत्र हैं–

1. उत्तर क्षेत्र, 2. मध्य क्षेत्र एवं 3. दक्षिण क्षेत्र।

उत्तरी और मध्य क्षेत्र (भारत) में बावरिया, भाटू, भेड़कट, पारवीवारा, टांगू बिलोचन, हरनी, कंजर, करवाल, मीना, महतम हैं। दक्षिण भारत में एरकुला, सण्डाडी (एनादी), सुगाली है।

2. कुछ प्रमुख जनजातियाँ–

1. कंजर– उ.प्र., महाराष्ट्र, राजस्थान, म.प्र., द. भारत में इसे दक्षिण कंजर कहा जाता है। इनको अन्य नामों, जैसे– बिजोरिया नट, कबूतरी नट, बंचछाडे से सम्बोधित किया जाता है में चोरी, उठाईगिरी, डकैती, राहजनी एवं सेंध लगाते है। यह जनजाति कभी दिन में ही डकैती किया करती थी, लेकिन अब रात में ही इस अपराध को करना सुरक्षित समझते है।

सामान्य तौर पर ये जनजाति पूर्णमासी के 2–3 दिन बाद अपना कार्य सम्पादित करती हैं तथा कार्य सम्पादन के बाद उस गाँव के पास ही मल त्याग करती हैं।

2. बावरिया– यह जनजाति उत्तरभारत में प्रमुख रूप से पायी जाती है तथा चोरी, डकैती करती है। यह दो प्रकार की सेंधमारी हैं– 1. बगली नकाब (सेंधमारी) तथा 2. सम्पति के निर्दिष्ट स्थान पर।

3. ये अपराधी जनजातियाँ चोरी करते समय अपने सदस्यों की सहायता हेतु चिन्हों का भी प्रयोग करती है। ये निम्न है–

1. दल चुनी गई दिशा की ओर जाता है।
2. निकट ही तीन लोग छिपे हुए हैं।
3. तीर की दिशा में चार लोग गए हैं।
4. दो लोग कुएँ में छिपे हैं।
5. दल गाँव में मौजूद हैं।
6. सम्पत्ति प्राप्त हो गयी है तथा तीर की दिशा में सदस्य गए हैं।
7. दल के पास चार सौ की सम्पत्ति प्राप्त हुयी है एवं दल तीर की ओर गया है।

युवागृह या युवा संगठन– (Youth Organisation Dormatories)

जनजाति	–	युवागृह
1. मुण्डा एवं हो	–	गितिओरा
2. कोनयक नागा	–	
() बालको का	– बान या मोरुवा	
(इ) बालिकाओं का	– यो	
3. यो नागा	– अरीचू और मेमिस	
4. मिमीनागा / मेमीनागा		
पुरुषों का	– ईकुची	
(इ) स्त्रियों का	– इलुइनी/इकोयची	
5. अंगामी नागा	– ईकुची	
6. ओरांव	– जोन्करया/धुमकुडियार	
7. भुईया/मुईया	–छंगरबासा/धंगरबासा	
8. गोंड	–घोटुल	
9. कुनीकर	–कुमार यवन	
10. जुऑग	–दरबार	
11. गारो	–नोकयते	
12. भोंटीया	–रंगबंग	
13. लोहाटनागा	–चम्पों	
14. खासी	–चांग	

15. मिकिड़ —रिसोमर

16. ओ —आरीचू

17. बोण्डो —सोलानीडिगों

जनजातिय नृत्य (Tribal Pancas)

जनजाति	नृत्य
1. गोंड	—करमा
2. राजस्थान की भील	—गौरी नृत्य नाटिका
3. मारिआ गोंड	— मृदंग
4. भील	— मादल
5. कुमायु मण्डल की जनजाति	—चाँचेरी एवं छपेली (भोटिया, थारू, बोक्सा)
6. असम एवं Sevensistros	— विहू
7. गरसिया (Rajasathan)	—गौरेजा वाद्ययंत्र
8. महाराष्ट्र के भील	— पुंगी

जनजाजियों के लिए राष्ट्रीय उद्यान (National Rarb /Yarden) की बात वेरियर एल्विन ने की है।

शराबी जनजातियाँ—

1. मध्य प्रदेश	—हण्डिया
2. असम	— पोंवा
3. उत्तर पूर्वी क्षेत्र	— जू
4. पंजाब एवं हि.प्र.	— तुद्गी
5. बिहार	— पछावे

ऋणग्रस्त जनजातियाँ—

प्रदेश	प्रथा (ऋण)	जनजाति
1. आ.प्र.	गोथी बेहती	कोया, डोरा, रेडडी
2. बिहार	कामिया	सभी जनजातियाँ
3. गुजरात	हाली	दुवला, हलपति

4. केरल	वसलूरकवापालम	पनियान, आदिमान, निष्णुपन्नम
5. कर्नाटक	जीथा	सभी जनजातियाँ
6. म.प्र.	हेरवाही, हाली, मोहिदारी, कामिया	द्रविड वर्ग की जनजातियाँ
7. महाराष्ट्र	बेट, बेगार	धोरकोली, भील
8. उड़ीसा	गोथी	कोंघ (कोहा), परोडा
9. राजस्थान	संगठी	भील, भीलमोना
10. उ.प्र.	मात	कोल्टा, कोल

जनजातियों की समस्या के लिए तीन उपागम अपनाए गए हैं–

1. अलगाव (Isolator)– इसके समर्थक 'J.H. Hutton' और 'Variyar – दोनों को पृथकतावादी भी कहते है। इनके अनुसार जनजातियों के विकास के लिए एक पृथक स्थान की आवश्यकता है तथा वेरियर, एल्विन ने 'राष्ट्रीय उपवन' की एक सौ छब्बीस परिकल्पना दी है। ऐसा करने से दो लाभ हैं–

राष्ट्रीय उद्यान (National Pasti / Garden)–

1. जनजातीय लोंग अपनी संस्कृति, प्रथा, परम्परा को स्थिर बनाए रखने की स्थिति में होंगे।

2. बाहरी शोषण से मुक्त रहेंगे।

2. सालीकरण (Assimilation)– प्रमुख समर्थक ठक्कर बापा हैं। इसके अनुसार जनजातियों को इस प्रकार उत्साहित करना चाहिए कि वे सभ्य समाज की संस्कृतियों से आत्मसात कर सकें एवं राष्ट्रीय जीवन में पूर्वरूप से भाग ले सकें।

1. ईसाई मिशनरियाँ तथा ठक्कर बाया (समाज सुधारक) यह प्रयास करते रहे हैं कि जनजातिय लोग ईसाई समुदाय एवं हिन्दू समुदाय में घुल–मिल जाए।

2. सात्मीकरण से इनके अन्दर अपराध भावना एवं मानसिक तनाव पैदा हो सकता है।

3. एकीकरण (Integration)– ऐसा प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे धीरे–धीरे सभ्य समाज के सम्पर्क में आ जाए तथा राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित हो जाए, इससे सभ्य समाज के लाभों को प्राप्त कर सकती है।

इसके अन्तर्गत कुछ जनजातियों को धीरे–धीरे मैदानी क्षेत्रे में बसाना भी सम्मिलित है। आज हमारे देश में जनजातियों के उत्थान के लिए इसी दृष्टिकोण को अपनाया जा रहा है।

इसी दृष्टिकोण के ध्यान में रहकर पढ़ जवाहार लाल नेहरू ने 1957 में वेरियर एल्विन द्वारा रचित पुस्तक की प्रस्तावना में पाँच सिद्धान्तों को स्थापित किया है जिसे जनजातिय पंचशीला सिद्धान्त कहते है।

1. जनजातिय क्षेत्र में बाहरी लोगों का हस्तक्षेप नहीं होगा तथा इनको अपने स्वयं के कल्पना, बुद्धि के दायरे पर संस्कृतियों के विकास की अनुमति होगी।

2. जंगल तथा जमीनों के अधिकारों का सम्मान किया जाएगा।

3. प्रशासन और विकास के लिए इन्हीं लोगों द्वारा प्ररिक्षित टीम का गठन किया जाएगा तथा प्रारम्भ में कुछ तकनीकी कर्मचारियों को जाना ज्यादा महत्वपूर्ण हो सकता है लेकिन अधिक लोगों को इनके क्षेत्रों में नहीं भेजा जाएगा।

4. जनजातिय क्षेत्रों पर 'अति प्रशासन' या अधिक योजनाओं को नहीं लाया जाएगा।

5. कार्यों का मूल्यांकन मानव चरित्र के विकास के गुणों के आधार पर किया जाएगा न कि ऑकडो एवं उस क्षेत्र में व्यय किए गए धन के आधार पर।

संवैधिनिक प्रावधानों से दो भागों में काटा जा सकता है।

(1) संरक्षी उपबन्ध

1. 'Article' (अनुच्छेद) 15 (4)– जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक हितों के लिए प्रोत्साहन।

2. 16 (4)– पढ़ों एवं नौकरियों में आरक्षण।

3. 17–किसी भी प्रकार के अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है।

4. 23 मानव व्यापार एवं बलात्श्रम का प्रतिषेध किया गया है।

5. 25 से 28 तक धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार।

6. 29 – सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार।

7. 46–अनुसूचित जाति एवं जनजाति एवं दुर्बल वर्गों की शिक्षा एवं आर्थिक हितों की अभिवृद्धि राज्य का उत्तरदायित्व होगा।

8. 164– बिहार, उडीसा, म.प्र. में 57 'ST' के कल्याण के सम्बन्ध में एक जनजातीय मन्त्री की नियुक्ति।

9. 330 –लोक सभा में प्रतिनिधित्व के लिए आरक्षण की व्यवस्था।

10. 332 – विधान सभा में अनु.जाति एवं जनजाति के लिए आरक्षण की व्यवस्था।

11. 334 –स्थानों के आरक्षण और विशेष प्रतिनिधित्व का 50 वर्ष के पश्चात न रहना।

12. 335 – आरक्षण के दावे सरकार नौकरियों में इनके लिए सुरक्षित रखेगी।

13. 338–विशेष अधिकारी की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा (ST बहुल्य क्षेत्र) में।

14. 339–1. राष्ट्रपति राज्यों के आनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और ST के कल्याण के विषय में प्रतिवेदन देने के लिए एक आयोग की नियुक्ति का परामर्श दे सकेगा।

नोट– अनुसूचित क्षेत्र एवं ST पर 1960 में प्रथम आयोग गठित किया गया एवं इसके अध्यक्ष न्ण्छण् क्रीमइंत थे।

SC एवं ST के आर्थिक विकास के लिए की गयी व्यवस्था–

1. Acticle (अनुच्छेद) 275 संविधान के अनुबन्धों की पूर्ति के लिए राज्यों को संघ से अनुदान मिलने की व्यवस्था।

2. 339 संघ की कार्यवाहिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने का होगा जो उन राज्य के अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए निर्देश में आवश्यक बतायी गयी स्कीमों के बनाने और निष्पक्ष के बारे में है।

3. 244 (क) – अनुसूचित क्षेत्रों एवं ST के प्रशासन से सम्बन्धित व्यवस्था है।

5वीं अनुसूची – अनुसूचित क्षेत्रों एवं उनके प्रशासन पर 5वीं अनुसूची के उलब्ध लागू होते है। यहाँ उन क्षेत्रों से मतलब है जिन्हें राष्ट्रपति के आदेश द्वारा अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया गया है।

नोट– 1. इसका संशोधन 368 के अन्तर्गत नहीं माना जाएगा।

2. अनुसूचित क्षेत्रों और उनके प्रशासन का इतिहास 1874 से प्रारम्भ होता है।

3. 5वीं अनुसूची की मुख्य विशेषताएँ–

1. राज्यपाल को विशिष्ट विधायी शक्ति

2. राष्ट्रपति का राज्यपाल को प्रतिवेदन

3. जनजाति सलाहकार परिवार की स्थापना

छठवीं अनुसूची–

1. असम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम राज्यों के जनजातियों पर लागू।

2. अपने अधिकार क्षेत्र के मामले में पूर्णतः स्वतंत्र है।

3. स्वाशासित जिला एवं स्वाशासित प्रदेशों के जरिये जनजातियों को अपना प्रबन्ध अपने आप करने की शक्ति।

4. इन क्षेत्रों की स्वायत्ता इस सीमा तक है कि संसद अथवा राज्य विधान मण्डल का कोई समादेश तब तक स्वतः मान्य नहीं हागा जब तक कि सम्बद्ध अधिनियम का विस्तार राज्यपाल द्वारा विशेष रूप से अधिसूचित न किया जाये।

Article (अनु.) 371 (क) नागालैंड –

इसके अनुसार संविधान की कोई भी विधि या नियम नगालैंड राज्य में तब तक लागू नहीं होगा जब तक नागालैंड विधानसभा विशेष संकल्प द्वारा ऐसा निश्चय न कर दे।

371 (ख) असम–

राष्ट्रपति आदेश द्वारा असम विधान सभा की एक समिति का गठन और कृत्यों के लिए उपलब्ध कर सकेगा। यह समिति जैसा कि छठवीं (6वीं) अनुसूची में बताया गया है कि जनजाति क्षेत्रों से निश्चित वहाँ की विधानसभा की सदस्यों से तथा उसी नि.स. के उतने सदस्यों के बनेगी जितने राष्ट्रपति के आदेश में विनिर्दिष्ट किए गए होगें।

371 (ग) मणिपुर–

इसके अन्तर्गत राष्ट्रपति के आदेश से एक समिति के गठन और कृत्यों के संयोजन की व्यवस्था है। राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों से निर्वाचित राज्य वि.सभा के सदस्य इन समिति के सदस्य होते है। राज्यपाल को प्रतिवर्ष, या जब राष्ट्रपति वैसी अपेक्षा करें, राष्ट्रपति को मणिपुर के प्रशासन के बारे में प्रतिवेदन देना होता है।

संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उक्त राज्य क्षेत्र में केवल निर्देश देने तक है।

महत्वपूर्ण बिन्दुः–

वेरियर एलविन एलविन मूलतः आयरिस हैं। 1937 में पुणे में पादरी के रूप में धर्म–प्रचारक बनकर आए थे। पुणें में सील जनजाति का अध्ययन किया। भारत की 9 जनजातियों का अध्ययन किया। 1954 में पहला जनजातिय (ज्तपइंस) आयोग बना जिनके चेयरमैन एकविन थे। सुरजीत सिन्हा– एक ही साथ भारत के दो इलाकों का अध्ययन किया।

1. छतीसगढ़– बस्तर जिला– गोंड जनजाति

2. प. बंगाल – वीरभूमि 19– भूमिज जनजाति

नोट– इस अध्ययन के आधार पर सिन्हा ने राजपूतीकरण की अवधारण दी। इस अवधारणा सामर्थक के.एल. शर्मा हैं। शर्मा ने राज्यस्थान के छः गाँवों का अध्ययन किया। राजस्थान मीणा जनजाति राजपूतिकरण का परिमाण मानी जाती है राजपूती की नकल करती है।

राजस्थान की सबसे बड़ी जनजाति – भील

डी.एन. मजूमदार – इन्होंने कानपुर के पास रमापुर का अध्ययन किया। इनकी पुस्तक Race and culture in India है। इन्होंने असंस्कृतिकरण की अवधारणा दी है।

जनजातियों के प्रमुख अध्ययन

1. टोड़ा 1906 W.H. Rivers
2. बैगा 1939 वेरियर एलविन
3. मुरिया एवं उनके घोटुल वैरियर एल्विन (वेरियर एलविन)
4. कमार –S.C. Dubey
5. छोटा नागपुर के मुण्डा एवं ओरॉव – S.C. Ray
6. कमार 1914 P.R.T. Gurder
7. अण्डमान निकाबरा – रेडक्लिक ब्रउन
8. रेगना नागा 1937
9. सिंहभूमि के हो 1950

10. भील 1956
11. वस्तर के मारिया गोंड 1938
12. चमारबिग्स (Briggs) एवं जाति बाहासन

सरल समाज–

सरल समाज परम्परागत समाज को कहा जाता है। प्रौद्योगिकी अपेक्षाकृत सरल होती है। ऐसे समाज का आकार छोटा एवं उनका पर्यावरण पर नियन्त्रण कम होता है। अर्थव्यवस्था परम्परागत कृषि पर आधारित होती है। आजकल अधिकांश सरल समाज को संरक्षण शील समाज कहते है।

जीवन निर्वाह के लिए भौतिक उत्पादन विधि के आधार पर सरल समाज की अर्थव्यवस्था को चार वर्गों में बॉटा गया है।

1. शिकार एवं एकत्रीकरण–भारत में कादर, चेचू, पेरियार (तमिलानाडु) कुरूषा, विरहोर (बिहार), खड़िया, म.प्र. के बैगा, भुजमरिया, एनादी (आ.प्र.) कोयां (तमिलानाडु) कोडा, कोडा, रेड्डी, कटकरी (महाराष्ट्र), ओंगे एवं जरावा (अण्डमान द्वीप)।

2. पशुचारक– टोडा (भैंस पवित्र पालन), बकरवार (ज.क.), गुज्जर (हि.प्र.), भोटिया (उतराचंल) में पशुपालन के साथ पशु व्यापारी भी है।

अस्थायी कृषि (Shigting Cultivation)– प्रमुख बिन्दु

इसे कर्तन या दहन कृषि को कहते है।

असम, त्रिपुरा, अ.प्र., मिजोरम में इसे झूमकृषि कहते है।

म.प्र. में बेवार या दहया, आ.प्र. में पोखू, उतरी उडीसा में कोमन या बिंगल या बिंगा कहते है। लोहता, अंगामी नागा, खासी, कूकी, बिहार की असुर, उडीसा की सओरा और जुआंग, म.प्र. की बैगा, गोंड, कोखा एवं कोरवा।

4. स्थायी कृषि

(ठ) जटिल समाज

इसमें विस्तृत क्षेत्र एवं विशाल जनसंख्या होती है। उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन, भवनों, उद्योगों आदि के निर्माण में उच्च कार्य विभाजन पाया जाता है। पेशागत विभेदीकरण होता है। उपभोक्ता वस्तुओं एवं शिक्षा के स्वरूप में परिर्वतन की गति तेज होती है।

जटिल समाज का मुख्य आधार वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिकरण एवं नगरीकरण है। आर्थिक व्यवस्था का मुख्य आधार औद्योगिक विकास होता है। सम्पूर्ण आधुनिक समाज जटिल सामज के उदाहरण हैं। जटिल समाज को दो उपभागों में बाटा जा सकता है।

1. आधुनिक समाज या औद्योगिक समाज– इसके प्रमुख बिन्दु निम्न है–

- पूँजिपतियों द्वारा अधिक मुनाफा कमाने की दृष्टि से भारी उत्पादन।
- उच्च प्रौद्योगिकी का प्रयोग, औपचारिक सामाजिक सम्बन्ध

- नौकरशाही व्यवस्था भौतिकवादिता, व्यक्तिवादिता, प्रतियोगिता
- शिक्षा, चिन्तन एवं वैज्ञानिकता का प्रसार
- नौकरी में लगी जनसंख्या अधिकांशतः कारखानों या कार्यालयों में रहती है।
- उच्च स्तर का श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण, धन का अधिक महत्व नवीन औद्योगिक क्षेत्रों में सामाजिक जीवन अव्यक्तिगत एवं गुमनाम होता है।
- राजनीतिक व्यवस्थाएँ परम्परागत समाजों की तुलना में काफी विकसित प्रकार की हाती है। बड़ी–बड़ी कम्पनियों एवं कारपोरेशन।

2. उत्तर आधुनिक समाज या उत्तर औद्योगिक समाज– इसके प्रमुख बिन्दु निम्न हैं। इसे 'Post Industioril Socity' कहते हैं। यह विकसित देशों की विशेषता है। यह समाज मौलिक वस्तुओं के उत्पादन पर आधारित न होकर सूचनाओं के उत्पादन पर आधारित है।

- गैर कृषि कार्यों में अधिकांश जनसंख्या।
- भौतिक सुख में वृद्धि
- मुख्य जीविकोपार्जन के साधन उद्योग व्यापार एवं विशिष्ट सेवा। व्यक्ति की प्रस्थिति उसके विशेषज्ञ होने पर निर्भर करती है।
- श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण का महत्व
- समाज में व्यवसायी तथा तकनीकी प्रभाव ज्यादा ही होता है। उद्योगों के स्थान पर विश्वविद्यालयों की महत्ता।
- तरक्की और चिन्तन का वैज्ञानिक आधार होता है।
- यातायात एवं संचार के साधन वृद्धि के कारण अब लोग दूसरे समाज के काफी निकट आ गए हैं।
- उत्पादन विधि स्वचलित मशीनों से
- कम्प्यूटर का प्रयोग बड़ी मात्रा में। इन समाजों का पुरूष केन्द्र ज्ञान हैं। ज्ञान पूँजी शक्ति से ज्यादा महत्वपूर्ण है।
- औद्योगिक समाज वस्तुतः अनुमान का विषय है।
- 'Post Indusgtriol Society' की अवधारणा डेनियल बेल के नाम से जोड़ी जाती है।
- डेनिपल बेल पुस्तम –The Coming of Post Industrial Souety– 1973 समाज का वर्गीकरण

1. औद्योगिकी मूलक समाज – एलियन तोरेन पुस्तक Le Sociate Post Industrelle in Frdnch

2 ए मोरेट एवं जी. डैवी (G Davy) 1926

इन्होंने पैमाना एवं आन्तरिक विशेषीकरण के आधार पर एक समाज की कल्पना की है। जिसे From tribe to Empird' कहते है। यही पुस्तक का भी नाम है।

3. टॉनिज ने दो भागों में बाटा है –

(i) जैमिनशास्टा (ii) जैसेलशाफट

4. जे. शुम्पीटर ने तीन भागों में बॉटा है–

(i) पूजीवादी समाज (ii) समाजवादी समाज (iii) प्रजातान्त्रिक समाज

5. 'Herbest Spencer' ने उद्विकास के आधार पर समाज को वर्गों में बाँटा है। चार वर्ग है।

1. **सरल समाज** (Semple Society)

यहां सामाजिक उद्विकास का प्रथम चरण है। यह ऐसा समाज है जो दूसरों की अधीनता से मुक्त होता है, समानता पायी जाती है। इसके विभिन्न अंग समान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक केन्द्रीय नेतृत्व में या उसके बिना भी एकत्रित होते है। समाज नेतृत्व विहीन भी हो सकता है। उसमें अस्थायी या स्थायी नेतृत्व भी हो सकता है। जैसे वडेडा लंका एवं व्यूबलों आदि।

2. **संयुक्त समाज** (मिश्रित समाज) Compound Society

जब स्थायी नेतृत्व वाले कई सरल समाज. एक प्रधान मुखिया के रूप में संगठित होते है। तो उसे संयुक्त समाज कहते है।

6. नेतृत्व की दृष्टि से संयुक्त समाज तीन प्रकार के हो सकते है– 1. अस्थायी नेतृत्व वाले 2. स्थायी नेतृत्व वाले 3. अनिश्चित नेतृत्व वाले।

7. जे.एच. स्टीवर्ट एवं के. विट फोगल

इन्होंने हाइड्रोलिक समाज की कल्पना की है। इन्होंने नौरशाही संगठन के अध्ययन के दौरान इसकी परिकल्पना की।

नोट –जे.एच. स्टीवर्ड ने इसे सिंचाई सभ्यता कहा है।

8. ई.आर. लीच– लीच ने भी Hydrolic Socioty की चर्चा की है। yhp Hydrolic Socioty in Celone' (सीलोन) Present and Past

9. के.आर. पापर– समाज को दो भागों में बाँटा है–

1. जनजाति समाज Tribe Society

2. खुला समाज Open Society

10. डेहरेनडॉर्फ–Post Compitalistic Society

11. प्रो. जोसवर्ग या सजोवर्ग–Pre Srdusytrial Society

12. एल्विन टाफ्लर –Third wave society

13. हेनरी मेन – इन्होंने कहा कि प्रस्थिति से संविदा की ओर समाज की प्रगति होती है। प्रस्थिति का तात्पर्य पारिवारिक अधीनस्थ द्वारा प्रतिस्थापित व्यक्ति की सामाजिकरण स्थिति से है।

प्रस्थिति के अन्तर्गत परिवार के मुखिया के माध्यम से परिवार के सदस्य नौकर, स्त्री, बच्चे आदि पारिवारिक बंधन द्वारा एक–दूसरे से अबद्ध रहते है। इसे ही होनरी मेन ने 'Patner Society'

मेन की पुस्तकें:–

1. 'Ancient Laue 1861' 2- Village Communicties 1671' 3- Ebsly History of Institations 1875'4- 'Dissertation on Eanty laue and customs'

14. एन्थोनी गिडेन्स – इनका समाज का वर्गीकरण 1998 में प्रकाशित हुआ था। इन्होंने अभी तक के समाज के उद्विकास के आधार पर सात वर्गों में बांटा है।

1. एकत्रीकरण एवं शिकार करने वाले समाज – इस समाज की उत्पति आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व मानी जाती है। गिडेन्स के अनुसार इनकी संख्या लगभग 0.001 प्रतिशत है। तथा अब धीरे–धीरे समाज हो रहे है। कन्दमूल, फल, पशु–पक्षियों का शिकार होता है।

2. कृषक सामज (Agrarian Socielty) – ऐसे समाज की उत्पति आज से लगभग 1200 वर्ष पूर्व हुई और अब भी यह समाज पाया जाता है।

इसका प्रारम्भ खेती और बागवानी से माना जाता है। इसमें लोग बहुत ही आक्रामक एवं हिंसक जीवन बिताते है। इस अवस्था में लोग छोटे सामज में रहते है जीविको पार्जन का मुख्य खेत कृ षि था लेकिन कुछ लोग शिकारी जीवन भी व्यतीत करते थे।

3. पशुचारक समाज – इस स्तर पर समाज धुमक्कडी जीवन (NarmadicLife) व्यतीत करता था।

4. परम्परागत राज्य या सभ्यता – समय 600 ईसा पूर्व से 19 वीं सदी तक माना जाता है। खेती जीवन निर्वाह का मुख्य आधार था। लेकिन व्यापार एवं उद्योग का पूर्व विकास हो चुका था। फलस्वरूप बडे–बडे नगरों की उत्पति भी हो चुकी थी। राज्य का शासन राजाओं और महाराजाओं के हाथ में था। समाज पूरी तरह वर्ग व्यवस्था पर आधारित था। लेकिन भारत इसका आवास था।

5. प्रथम विश्व के समाज (पहली दुनिया के समाज) – इसकी शुरूवात युरोप और अमेरिका में 18 वीं सदी में हुआ। इस अवस्था में अधिकतम लोग नगरों में रहने लगे। आबादी का एक हिस्सा कृषि पर आधारित था। समाज में असमनताओं के आधार पर वर्ग का निर्माण हुआ लेकिन विभिन्न वर्गों के बीच बीच अधिक सामाजिक दूरी नहीं होती थी।

आधुनिक तकनीकी और उद्योग इतने विकसित हो गए कि लागों के जीवन में भौतिक सुखों का स्तर काफी ऊँचा हो गया। कनाडा, अमेरिका, इग्लैंण्ड, फ्रांस, जर्मनी एवं जापान।

6. दूसरी दुनिया के समाज (Second World Society) – इस समाज की उत्पति 20 वीं सदी के दूसरे दशक में मानी जाती है। विद्वानों का हना है कि इसकी उत्पति रूसी क्रांन्ति (1917) के फलस्वरूप हुयी। इसके अन्तर्गत बहुत से साम्यवादी देश आ जाते है। जो विकसित श्रेणी के है चीन इसका अपवाद है। इस समाज का जीविकोपार्जन साधन कृषि एवं उद्योग दोनों है। अर्थव्यवस्था का नियन्त्रण राज्य द्वारा होता है। राज्य वर्ग – विभाजन को स्वीकार नहीं करता है।

7. तीसरी दुनिया का समाज (Third World Society) –इस प्रकार के समाज का काल 18वीं सदी से लेकर वर्तमान काल तक माना जाता है। जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि होता है। लेकिन साथ ही यहाँ महानगर एवं उद्योंग भी पाए जाते हैं।

विकास का स्तर इतना निम्न होता है कि रहन–सहन का स्तर भी निम्न हो जाता है। इस प्रकार के सामज में कुदू देश पूँजीवादी व्यवस्था का अनुसरण करते हैं तथा कुछ मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थव्यवस्था का जापान को छोड़कर एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका के बहुत से देश इस समाज में आते है।

इस प्रकार के समाज के अधिकांश देश औपनिवेशिक भी रहे है। चीन, भारत, वर्मा, बांग्ला देश, नेपाल आदि।

15. कार्ल मार्क्स– मार्क्स ने आर्थिक व्यवस्था को एक संस्था के रूप में मानकर समाज का अपना आर्थिक प्रगति करता रहता है तथा निम्न अवस्थाएँ बतायी हैं–1. आदिम 2. एशियाई 3. प्राचीन 4. सामन्तवादी 5. आधुनिक।

मार्क्स एवं एंजिल्स ने एक जगह मानव इतिहास को निम्न प्रकार दर्शाया है–1. आदिम 2. साम्यवादी 3. प्राचीन 4. सामन्तवादी 5. पूँजीवादी 'T.B. Botto More' ने इन दोनों को सम्मिलित करके मार्क्स के वर्गीकरण को पाँच वर्गों में रखा है।

1. आदिम समाज (Primitive Society) –इसे आदिम साम्यवाद समाज भी कहते है। ऐसे समाज में उत्पादन के साधनों पर पूरे समुदाय का समान अधिकार होता है। साधनों पर पूरे समुदाय का समान अधिकार होता है।

उत्पादन प्राणाली आदिम प्रकार की होती है। वर्ग भेद एवं शेषष नहीं होता है।

2. एशियाई समाज – आदर्श उदाहरण भारत है। कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था होती है साथ ही नौकरशाही होती है।

3. प्राचीन समाज – परम्परा प्रधान होता है। उत्पादन प्रणाली अल्प विकसित। पशुपालन एवं कृषि कार्य निम्न कोटि का होता है। निम्न कोटि के औजार होते है। निजी सम्पति की धारणा एवं सम्पति का असमान वितरण, आर्थिक आधार पर वर्ग देखने को मिलते हैं। वर्ग संघर्ष एवं शोषण भी पाया जाता है।

4. सामन्ती (सामन्तवादी) समाज (Feidalist Society)

यूरोपीय एवं जापान समाज उदाहरण है। उत्पादन के साधनों पर जमींदारों का अधिकार होता है। निजी सम्पति की धारणा तथा सम्पति का असमान वितरण किसानों का शोषण, वर्ग–संघर्ष पाया जाता है।

5. पूँजीवादी समाज (Copitalistic Society)

आविष्कार एवं बडे–बड़े अद्योगों का प्रभाव होता है। बड़े पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन होता है। उत्पादन के साधनों पर पूँजीपति का अधिकार होता है। मुनाफाखोरी पायी जाती है। श्रमिकों की दयनीय स्थिति तथा पूँजीपतियों द्वारा शोषण होता है। वर्ग भेद, वर्ग संघर्ष की गति तीव्र हो जाती है।

औद्योगिक समाज से सम्बन्धित प्रमुख तथ्य

एस.सी. कुशल अपनी पुस्तक The Industrial Economy of Indiaesa हिन्दुस्तानी औद्योगिक आयोग की 1916–18 कर रिर्पोट के हवाले से लिखा है कि जब आधुनिक औद्योगिक समाज का मसीहा यूरोप भी असभ्यता के सूत्रों पर झूल रहा था, भारत अपने राजाओं की दौलत ही नहीं अपने कारीगरों की कलात्मक कुशलता के लिए भी प्रसिद्ध था।

भारत की वर्तमान औद्योगिक संरचना का सूत्रपात्र 1850–60 में हुआ जब एक जूट तथा सूती मिल की स्थापना कलकत्ते में हुई।

पि. गिल्बर्ट – पुस्तक 'Fundamentals Of Industrial Sociology'

प्रिस्टन – ''जहाँ मशीन मनुष्य की स्थापन्न प्रतिनिधि बन जाए वहाँ निःसन्देह औद्योगिक समाज का ही अस्तित्व होगा।''

औद्योगिक समाज के दो भाग–

(1) बाह्य औद्योगिक समाज – इसमें निम्नलिखित श्रेणियाँ पायी जाती है– 1. पूँजीपति 2. न्यासी 3. शेयर होल्डर्स 4. अधिकारी 5. कर्मचारी

(ठ) अन्तरिक औद्योगिक समाज/औद्योगिक संगठन (Industorial Organigation) इसमें निम्न चीजें हैं–

1. औपचारिक संगठन 2 अनौपचारिक संगठन

औद्योगिक संगठनों में कार्य करने वाले कर्मचारियों को पाँच श्रेणियों में बाटा जा सकता है–

1. प्रबन्धक 2. पर्यवेक्षक (Superivisory) 3. विशेषज्ञ 4. खेतपोश कर्मचारी अथवा बाबू (Deerta) 5. नीलपोश कर्मचारी अथवा श्रमिक (Lobowrers)

औद्योगिक क्रांन्ति शब्द का प्रयोग 1837 मे ब्लेक्यिनर नामक एक फ्रांसीसी द्वारा किया गया। उसके बाद में जेवन्स, मार्क्स, एंजिल्स ने इस शब्द का प्रयोग किया। आर्नोल्ड टायनकी ने 1884 में इस शब्द का प्रयोग किया।

कृषक समाज (Agrarian Or Peasant Socity)

कृषक समाज को ग्रामीण समाज अथवा ग्रामीण समुदाय का पर्याय मान लिया जाता है। कृषक मूलतः ग्रामों में ही निवास करते है यह सत्य है किन्तु प्रत्येक ग्रामवासी कृषक ही हो, यह आवश्यक नहीं होता है। रेडफील्ड ने कृषक समाज की अवधारणा को समझाने के लिए इस शब्द से मिलते–जुलते अनेक शब्दों के विभेदीकरण को स्पष्ट किया। उनका मानना था कि कृषक समाज तथा ग्रामीण समाज दो पृथक् धारणाएँ है।

का प्रारूप है। भारत में कुम्बापेडटेई (गाँव) में जाति का संस्तारण कृषि कार्य के संस्तरण के अनुरूप है। रामपुरा (गॉव) में उच्च तथा मध्यम जातियों स्वयम ही हल चलाकर कृषि कार्य करती है। वन्याजातीय समाज से पृथक सामान्य ग्रामीण समाज में ही कृषक समाज होता है।

परिभाषाएँ –

वेबस्टर शब्द कोष के अनुसार, ''वह वर्ग जो लघु भूस्वामी है, देहाडी मजदूर के रूप में खेत को जोतता है, कृषक समाज कहलाता है।''

चौम्बर शब्दकोश, ''कृषक एक ग्रामीण व्यक्ति, एक देहाती व्यक्ति जिसका मूल व्यवसाय ग्रामीण श्रम हो।"

ऑक्सफोर्ड – शब्दकोष के अनुसार, ''वह व्यक्ति जो गाँवों में रहता हो, खेत पर काम करता हो, असभ्य ग्रामीण हो, कृषक कहलाता है।''

रेडफील्ड, ''कृषक गुच्छ में उन लोगों का समावेश होना चाहिए जिनके लिए कृषि ही उनकी आजीविका का साधन तथा सम्पूर्ण जीवन–विधि है तथा जिनकी वृत्ति व्यापार लाभ की नहीं होती।''

नोट– कृषक समाज की अवधारणा राबर्ट रेडफील्ड ने श्च्मेंदज ैवबपमजल ंदक ब्नसजनतमश में की है क्रोबर, कृषक लोग निश्चय ही ग्रामीण है कि तब भी वे नगर के बाजारों के साथ संघर्ष में रहते है वे अंगभूत संस्कृतियों वाले अंग–समाज होते है।

कार्लमार्क्स, ''कृषक समाज एक ऐसा समाज है जो अपने ही उपयोग के लिए उत्पादन करता है।''

आन्द्रेबेत्तेई ने कृषक समाज की परिभाषा देते हुए तीन बातों पर प्रकाश डाला है–

1. कृषक भूमि से जुडा होता है। कानूनी दृष्टि से वह भूमि का स्वामी, उसे किराए पर जोतने वाला या बिना भूस्वामी अधिकार के एक श्रमिक हो सकता है।

2. ऐसा माना जाता है कि अधिकांश समाजों में कृषकों की निम्न स्थिति होती है।

3. कृषकों को श्रमिकों का प्रतिपक्ष माना जा सकता है।

रेडफील्ड, ''वे ग्रामीण लोग जो जीवन निर्वाह के लिए अपनी भूमि पर नियन्त्रण बनाए रखते हैं उसे जोतते हैं तथा कृषि जिनके जीवन मापन का परम्परागत तरीके का एक भाग होता है और जो कुलीन वर्ग या नगरीय लोगों कर ओर देखते हैं और उनसे प्रभावित होते हैं जिनके जीवन का ढंग उन्हीं के समान हैं लेकिन कुछ अधिक सभ्य प्रकार का।''

नोट– 1. रेडफील्ड ने कृषक शब्द के अन्तर्गत उन छोटे खेतिहार लोगों को ही सम्मिलित किया है। जो स्वयं उपयोग के लिए उत्पादन करते है, उन लोगों को जो बाजार के लिए उत्पादन करते हैं, किसान कहा है।

2. रेडफील्ड ने कृषक समाज, कुलीन वर्ग और अन्य लोगों के सम्बन्धों को सावयवीय बन्धन के रूप में माना है।

कृषक समाज की विशेषताएँ–

(1.) आन्द्रे बिताई के अनुसार–

1. कृषक समाज भावनात्मक लगाव रखता है।

2. सामाजिक स्तीकरण में कृषक समाज की तुलनात्मक स्थिति निम्न होती है।

(2) रयूक और नाईट के अनुसार –

1. दरिद्रता से पूर्ण जीवन

2. अपरिर्वतन व्यावहारिक प्रवृति

3. संचय का अभाव

4. समाज के स्तरीकरण में निम्न स्थिति

(3) रेडफील्ड के अनुसार पाँच विशेषताएँ

1. आजीविका का एक मात्र साधन कृषि

2. कृषक समाज अपेक्षतवा एक अस्तरीकृत समाज है।

(4) टी. शैनिन के अनुसार –

1. भूमि तथा खेत के साथ गहरा सम्बन्ध

2. परिवार सम्बन्धों में स्थायित्व

3. खेत तथा खलिहानों पर निर्भरता

4. श्रम की प्रतिष्ठा

5. परिवार के समस्त सदस्यों की कृषि में सहभागिता

6. निम्न वर्गीय स्थिति

7. शक्तिशालियों भूपतियों, राजनीतिज्ञों तथा भूमि सम्बन्धी कानूनों द्वारा सान्यता शोषित

8. विशिष्ट परम्परागत संस्कृति, जो लघु समुदायों के जीवन के समान होती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु–

एरिक बुल्क ने समाज को आर्थिक रूप से आत्म निर्भर इकाई माना है।

डैनियल थार्नर ने कृषकों, भूपतियों, देहाती मजदूरों तथा बटाईदारों के समूह को कृषक समाज माना है।

कृषक समाज की श्रेणियाँ (Categories Of Agrarian Socity)

डी.एन. धानागरे ने कृषक समाज की पाँच श्रेणियाँ बतायी हैं–भूस्वामी, धनी कृषक– इस श्रेणी में वे कृषक आते हैं, जो मुख्यतः हरितक्रान्ति की देन हैं। यह कथन टी.के. उनन का है, मध्यम वर्गीय कृषक, निर्धन कृषक, भूमिहीन खेतिहर मजदूर– अमन, ''यदि इनके पास कुछ जमीन होती भी है तो वह आबादी से अतिरिक्त कुछ नहीं जिस पर उनके मकान निर्मित होते हैं।''।

डेनियल थर्नर ने तीन आधारों पर कृषक समाज का वर्गीकरण किया है– (1) भूमि से प्राप्त होने वाली आय –तीन प्रकार, भूमि से प्राप्त किराया, अपनी खेती की उपलब्धि, तनख्वाह या वेतन, अधिकारों की प्रकृति, भूमि का स्वामित्व, किरायेदारी, फसल में हिस्सेदारी, किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं।

प्रमुख तथ्य–

डेनियल थार्नर, ''सबसे ऊपर हैं भूमिदार, उनसे नीचे सरदार तथा उनसे भी नीचे असामी है। इस समुदाय में सबसे नीचे हैं बटाईदारों तथा भूमिहीन श्रमिकों का एक पूरा समूह।''

ए.सी. मेयर, ''भारतीय कृषक समाज में साथ–साथ रहने के बन्धन उस समाज की लम्बवत एकात्मकता का वर्णन करते हैं।''

आर.पी. गोरे, – जापान में जनभूमि सुधार लागू हो रहा था और भूपतियों एवं असामियों के सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गए थे, व्यक्तियों ने प्रायः उन्हीं लोगों का समर्थन किया जो उनके 'वर्ग' के न होकर भी उनके अपने क्षेत्र के थे।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा विभिन्न ग्रमीण अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि रेडफील्ड द्वारा कृषक समाज की दी गयी अवधारणा भारतीय गावों में पूरी तरह सुसंगत नहीं है।

लघु समुदाय (Little Community)–

लघु समुदाय की अवधारणा ने सर्वप्रथम पनकोम ग्राम के अध्ययन के दौरान दी है। तथा इसका विस्तृत विवेचन अपनी पुस्तक Little Community' में किया है। 'Redlfield' के अनुसार संसार के सभी भागों में तथ समस्त मानव इतिहास में लघु समुदायों का क्षस्तिल रहा है और है। एस्कीमों गाँवों ईरान के घुमन्ती समूहों का गाँव इसके उदाहरण है। 'Redfield' लघु समुदाय को इसके चार आवश्यक तत्वों से समझाया है।

1. लघुता (Smallness)

2. विशिष्ट (Distinctivene)

3. सजातीयता समरूपता (Homogeniety)

4. आत्मनिर्भरता (Self Sufficiency)

समूह Social Group

सामाजिक समूह–

समूह में रहने की इच्छा की प्रकृति एक मूल प्रकृति है जो प्रत्येक व्यक्ति में पायी जाती है। पशुओं में भी समूह में रहने की इच्छा पायी जाती है कोई भी मानव समाज रहित नहीं है। ओल्सन ने अपनी पुस्तक 'The progress of Organization' में कहा है कि सामाजिक समूह एक प्रकार का संगठन है जिसके सदस्य एक दूसरे को जानते हैं और वैयक्तिक रूप एक दूसरे से अपनी एक रुपता स्थापित करते हैं।

सापिर ने कहा है कि 'समूह का निर्माण केवल इस तथ्य पर आधारित है कि कोई न कोई विशेष स्वार्थ उस समूह के सदस्यों को एकता के सूत्र में बांधे रखता है।

मैकाइवर एवं पेज का विचार है कि समूह से आशय मनुष्यों के ऐसे संग्रह से है जिनके आपस सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं।

टी.बी. बाटोमोर ने अपनी पुस्तक सोशियोलॉजी ए गाइड टू प्राब्लम्स एण्ड लिटरेचर में सामाजिक समूह को व्यक्तियों का संकलन माना है तथा सामाजिक समूह में दो बातें बतायी हैं–

1. विभिन्न व्यक्तियों के बीच निश्चित सम्बन्ध

2. प्रत्येक व्यक्ति और उसके प्रतिको के प्रति सचेत

दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक सामाजिक समूह का कम से कम प्रारम्भिक ढांचा एवं संगठन (नियम तथा संस्कार सहित) होता है और उसके सदस्यों की चेतना का मनोवैज्ञानिक आधार होता है।

टी.बी. बाटोमोर के अनुसार एक परिवार गांव, राष्ट्र, मजदूर संगठन अथवा राजनैतिक दल ये सभी सामाजिक समूह हैं।

आर.बी. केटल के अनुसार समूह व्यक्तियों के उस एकत्रीकरण को कहते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सभी का सहयोग किया जाए।

परिभाषाएं–

बोगार्डस के अनुसार–

1. समूह किसी वस्तु की इकाईयों की संख्या है जो एक दूसरे के निकट सामीप्य में स्थित है।

इस परिभाषा के आधार पर किसी गली में घरो के वन में वृक्षों के बस स्टैण्ड में बसों के समूह की बात कर सकते हैं किन्तु समाजशास्त्र में सामाजिक समूह के लिए यह धारणा उचित नहीं हैं।

1. एक सामाजिक समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों की एक ऐसी संस्था को कहते हैं जिनका ध्यान कुछ सामान्य उद्देश्यों पर हो और जो एक दूसरों को प्रेरणा दें, जिनमें निष्ठा हो और जो सामान्य क्रियाओं में सम्मिलित हों।

2. डब्लू. एफ. आगबर्न एवं एम. एफ. निमकाफ के अनुसार– जब कभी दो या दो से अधिक व्यक्ति एक साथ मिलते और एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं तो वे एक समूह का निर्माण करते हैं।

3. मेरिल एवं एल्ड्रिज के अनुसार सामाजिक समूह दो या दो अधिक व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसमें एक लम्बी अवधि से संचार होता रहा है और जो एक सामान्य प्रकार्य या प्रयोजन के अनुसार कार्य करते हैं। इनकी पुस्तक कल्चर और सोसायटी है।

4. ग्रीन के अनुसार– समूह व्यक्तियों का संग्रह है जो स्थाई है जिसमें एक या अधिक सामान्य हितएवं क्रियायें हैं तथा जो संगठित हैं।

5. हार्ट एवं रीस के अनुसार– समूह अन्तःक्रिया में संलग्न व्यक्तियों का एक संगठित संग्रह है।

6. शेरिफ एवं शेरिफ के अनुसार– समूह एक सामाजिक इकाई है जिसका निर्माण ऐसे व्यक्तियों से होता है।

जिनके बीच कम या अधिक निश्चित प्रस्थिति एवं भूमिका विस्यक सम्बन्ध हो तथा व्यक्ति सदस्यों के आचरण को कम से कम समूह के लिए महत्वपूर्ण मामलों में नियमित करने के लिएजिसके कुछ मूल्य या आदर्श नियम हो। इनकी पुस्तक "An Introduction to Social Psychology" है।

व्यक्ति + सम्बन्ध (प्रस्थिति एवं भूमिका) + मूल्य = समूह

इस परिभाषा को हम पूर्ण मान सकते हैं तथा इसी के आधार पर क्रिकेट क्लब, राजनैतिक दल तथा फैक्ट्री के श्रमिकों को एक संग्रह की संज्ञा दे सकते हैं।

समूह संग्रह से भिन्न है संग्रह में अन्तःक्रिया का तत्व विद्यमान नहीं होता है। संग्रह समूह का एक पक्ष है। सामाजिक समूह का सार भौतिक निकटता नहीं है, अपितु संयुक्त अन्तःक्रिया की चेतना है।

आर.के. मर्टन अपनी पुस्तक Social theory and Social Structure में समूह के लिए तीन बातें आवयश्क बतायी हैं– 1. दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना 2. इनमें सामाजिक सम्बन्ध का पाया जाना। यह सम्बन्ध व्यक्तियों में बार–2 अन्तःक्रिया से ही बनता है। 3. व्यक्ति को किसी समूह का सदस्या माना जाने के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं अपने को किसी समूह विशेष का सदस्य समझे, उसके प्रति हम की भावना रखें। साथ ही यह भी आवश्यक है कि समूह के अन्य सदस्य तथा दूसरे समूह भी उसे उस समूह विशेष का सदस्य समझें।

मर्टन का कहना है कि क्षणिक सामाजिक सम्बन्ध समूह को विकसित नहीं करते हैं समूह के लिए अन्तः क्रियाओं एवं सम्बन्धों में बारम्बारता आवश्यक है।

निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि जब दो या दो से अधिक व्यक्ति पारस्परिक रूप से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा किन्ही सामान्य हितों के लिए एक दूसरे के साथ अर्थपूर्ण अन्तःक्रियाओं के द्वारा सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो एक समूह का निर्माण होता है।

वर्तमान समय में समूह शब्द का प्रयोग इतने वृहद अर्थ में नहीं होता है इसलिए अब अन्य विद्वान जाति–प्रजाति एवं राष्ट्र को सामाजिक समूह नहीं मानते हैं। जाति प्रजाति एवं राष्ट्र समुच्चय है न की समूह।

सामाजिक समूह, सामाजिक श्रेणी एवं समुच्चय– एन्थोनी गिडेन्स ने उपर्युक्त तीनों अवधारणाओं को अलग–अलग रुप में परिभाषित किया है।

सामाजिक समुच्चय को समझाते हुये गिडेन्स ने कहा है कि सामाजिक समुच्चय केवल व्यक्तियों का एकत्रीकरण है जो एक ही समय तथा एक ही स्थान में मिलते हैं किन्तु एक दूसरे से अन्तः क्रिया नहीं करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि बस स्टाप, रेल्वे स्टेशन पर एकत्रित जन समूह को तथा जेल देखने के लिए चौराहे पर एकत्रित भीड़ को सामाजिक समूह नहीं कहा जा सकता है मेले में आयी भीड़ तथा टूर्नामेन्ट देखने आयी भीड भी सामाजिक समूह नहीं है। ये सभी

सामाजिक समुच्चय के उदाहरण है। ऐसे समूह को बाटोमोर ने अर्द्धसमूह कहा है। क्वासी ग्रुप में अन्तः क्रिया को अभाव होता है। इसीलिए इसे समूह नहीं कह सकते हैं।

गिडेन्स ने सामाजिक श्रेणी को समझाते हुये कहा है कि समान शिक्षा या आय वाले व्यक्तियों के समूह को सामाजिक श्रेणी कहा जाता है।

गिटलर ने अपनी पुस्तक "Social Dynamics" में कहा गया कि सामाजिक श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जिनमें कुछ सामान्य सामाजिक अथवा शारीरिक गुण होते हैं प्रजाति एक संवर्ग का उदाहरण है। एक ही प्रजाति के लोग एक ही प्रकार की शारीरिक विशेषताओं से युक्त होते हैं।

मर्टन ने कहा है कि जिन व्यक्तियों में एक सी सामान्य विशेषता है वे एक ही सामाजिक संवर्ग के सदस्य हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति एक ही यौन, आयु, वैवाहिक स्थिति अथवा आर्थिक स्थिति या वर्ग के हैं। वे लोग एक ही सामाजिक संवर्ग के सदस्य हैं।

मर्टन ने समूह के दो महत्वपूर्ण पक्ष बताये हैं–

1. व्यक्ति परक पक्ष– इसका अर्थ यह है कि स्वयं समूह के सदस्यों में इस बात का ज्ञान होना चाहिये कि वह समूह का सदस्य है।

2. वस्तुपरक पक्ष– इसका अर्थ यह है कि समूह के सदस्यों के अतिरिक्त दूसरे लोग या एक निरपेक्ष व्यक्ति भी इसे गाने की अमुक व्यक्ति अमुक समूह का सदस्य है।

मार्टन के अनुसार सामाजिक संवर्ग के सदस्यों में अन्तःक्रिया नहीं होती है जबकि गिटलर मानते हैं कि अन्तःक्रिया हो सकती है।

सामाजिक संवर्ग के सदस्यों में सामाजिक समुच्चय या समष्टि के सामाजिक समूह बनने के अवसर हमेशा विद्यमान रहते है।

जानसन के अनुसार– सभी समूहों में सामाजिक सम्बन्ध होते हैं किन्तु सभी समूहों में सामाजिक सम्बन्धों से समूह नहीं बनते हैं क्योंकि संघर्ष पर भी सामाजिक सम्बन्ध होते हैं।

गिडेन्स का मत है कि– एक सामाजिक समूह केवल लोगों का एक समूह है जो एक दूसरे के साथ नियमित रुप से अन्तःक्रिया करते हैं।

मैकाइवर एवं पेज का गत है कि एक समूह से अर्थ यह है कि उसमें केवल सामाजिक प्राणियों का एक एकत्रिकरण होता है तथा वे लोग एक दूसरे से सामाजिक सम्बन्धों के द्वारा बंधे रहते हैं। सामाजिक अन्तःक्रिया समूह का एक मूलभूत तत्व है तभी तो हार्टन एवं हण्ट ने कहा है कि सामाजिक समूह का सार भौतिक नजदीकता नहीं है किन्तु एक दूसरे से अन्तःक्रिया होने की चेतना है।

समचेतना– इस अवधारणा के दाता गिडिन्स हैं। व्यक्तियों में एक प्रकार की ऐसी भावना पाई जाती है कि वे अन्तःक्रिया के द्वारा समूह का निर्माण करते हैं। इसी समूह निर्माण की भावना को गिडिंग्स ने समचेतना कहा है।

फिक्टर का मत है कि सामाजिक समूह सामाजिक प्राणियों का पारस्परिक सम्बन्ध है। भीड़ सामाजिक समूह नहीं है किन्तु नातेदारी समूह, परिवार, मित्र मण्डली ये सभी सामाजिक समूह है।

गिटलर ने समूह के पक्ष दो बताये हैं–

1. वाह्यपक्ष– यह देखा जा सकता है जैसे समूह में अन्तः क्रिया करते हुये देखा जाना।

2. आन्तरिक पक्ष– इसे देखा नहीं जा सकता है जैसे समूह में रहने की भावना को नहीं देखा जा सकता।

गिटलर का कहना है कि समूह निर्माण में समय एवं स्थान दोनों महत्वपूर्ण हैं। गिलिन एवं गिलिन ने समूह की अवधारणा में अन्तःक्रिया का प्रयोग किया है तथा समूह निर्माण के लिए दो तथ्यों को महत्वपूर्ण माना है–

1. उत्तेजना– उत्तेजना आरम्भ करने वाला व्यक्ति Ego कहलाता है।

2. अनुक्रिया– उत्तेजना का उत्तर देने वाला व्यक्ति Alter कहलाता है।

स्वजातिवाद/नस्लवाद/संजाति केन्द्रियता/स्वसमूह केन्द्रियता/स्वकेन्द्रियता– इस अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग डब्ल्यू.जी. समनर ने अपनी पुस्तक Folkay में सन् 1906 में किया। इस अवधारणा का प्रयोग अन्तः समूह और वाह्यसमूह के पक्षपात पूर्ण मनोवृत्तियों को समझाने के लिए किया। संजाति केन्द्रियता अन्तःसमूह की विशेषता है।

स्वजातिवाद एक ऐसी संवेगात्मक मनोवृत्ति है जिसके अनुसार व्यक्ति अपने समूह, जाति, प्रजाति, समाज तथा संस्कृति को अन्य प्रजाति अथवा संस्कृति समूहों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझता है तथा दूसरों के प्रति घृणा, द्वेष, संदेह, उदासीनता, अरुचि, जैसे मनोभावों को प्रकट करता है। एक समूह का प्रत्येक सदस्य अपने समूह को दूसरे समूहों से ऊंचा समझता है तथा दूसरे समूह को अपेक्षाकृत हीन समझता है। गिलिन एवं गिलिन ने भी इस अवधारणा का प्रयोग किया है।

सनजाति केन्द्रियता के कारण क्या है – समनर के अनुसार यह है कि व्यक्ति में अपने समूह के साथ तादाम्य की भावना इस भावना को गमप्लोविज ने सहजन्यवाद कहा है।

सामाजिक समूह की विशेषता–

1. एक से अधिक व्यक्तियों का संकलन

2. पारस्परिक सम्बन्ध

3. सामान्य उद्देश्य

4. एकता की भावना

5. विचारों एवं क्रियाओं का पारस्परिक आदान–प्रदान मेला तथा श्रीड में क्रियाओं का आदान–प्रदान नहीं होता है इसीलिए यह समूह नहीं है किन्तु कक्षा में क्रियाओं का आदान–प्रदान होता है इसलिए यह सामाजिक समूह है। व्यक्तियों के बीच अन्तःक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि सभी के बीच जीवन के मूल्य लगभग एक जैसे हैं। जिसे लाजर्स फेल्ड एवं मर्टन ने "Value

Homophilyo" कहा है। इस भावना के आभाव में लोगों के बीच मित्रता का भाव उत्पन्न नहीं हो सकता।

6. हम की भावना

7. सापेक्षिक स्थायित्व

8. सामान्य हित

9. सामाजिक पहचान– यह जरूरी नहीं है कि किसी समूह के सभी सदस्य एक दूसरे को भली–भांति पहचानते ही हों। महत्वपूर्ण यह है कि समूह या बाहर के लोग किसी व्यक्ति को किस समूह के सदस्य के रूप में जानते या स्वीकार करते हैं।

10. सामान्य व्यवहार

11. ऐच्छिक सदस्यता– किसी सामाजिक समूह का सदस्य होना व्यक्तियों की इच्छा पर है किन्तु कुछ सामाजिक समूह ऐसे होते हैं कि उनकी सदस्यता न तो आसानी से प्राप्त की जा सकती और न ही आसानी से छोड़ सकते हैं जैसे– परिवार, नातेदारी समूह।

12. समूह के आदर्श नियम

13. कार्य विभाजन

14. एक सामाजिक संरचना

15. स्तरीकरण

सामाजिक समूह का वर्गीकरण–

1. लेस्टरवार्ड का वर्गीकरण – इन्होंने दो प्रकार के समूह बतायें हैं– प. ऐच्छिक समूह जैसे क्लब की सदस्यता, राजनीतिक दल की सदस्या, व्यापार संघ की सदस्यता पप. अनिवार्य या अनैच्छिक समूह–जैसे परिवार, जाति, प्रजाति।

2. समनर का वर्गीकरण– हम की भावना के आधार पर दो प्रकार बताये हैं– i- अन्तः समूह

ii- वाह्यसमूह– इसे वे समूह (They Group) तथा दूसरे समूह (Other Group) भी कहते हैं। **नोट**– समनर ने अपनी पुस्तक "Folkways" में केवल अन्तः समूह अवधारण दी है किन्तु वाह्यसमूह को भी समनर से जोड़ते हैं।

3. **फिक्टर का वर्गीकरण**–आवश्यकता के आधार पर 6 प्रकार के समूह बताये हैं– परिवार समूह, शैक्षिणिक समूह, आर्थिक समूह, राजनीतिक समूह, धार्मिक समूह एवं मनोरंजात्मक समूह।

4. **मिलर का वर्गीकरण**– व्यक्तियों की सामाजिक प्रस्थिति के आधार पर दो प्रकार के समूह बताये–विषम स्थतरीय या उदर्ग समूह (Vertical Group)– जाति व्यवस्था तथा क्षैतिज या समस्तरीय समूह (Horizental Group) – मजदूर संगठन, शिक्षक संघ आदि। पेशे के आधार पर बने सभी समूहों को क्षैतिज समूहों के अन्तर्गत लाते हैं

5– सोरोकिन का वर्गीकरण सम्बन्धों के आधार पर दो प्रकार के समूह बतायें हैं–एकल बन्धन समूह या एकल प्रकार्यात्मक समूह (Unbounded /UniFunctional Group) सभी लोग एक ही आधार पर एक दूसरे से जुड़े होते हैं। इसके दो भाग भी होते हैं– जैव सामाजिक एकल प्राकार्यात्मक समूह (Bio Social Unbounded Group) आयु, लिंग, प्रजाति आदि समूह सामाजिक सांस्कृतिक एकल प्राकार्यात्मक समूह (Social CultureUnbounded Group)– क्लब, अस्पताल, महाविद्यालय। तथा दूसरा बहु बन्धन समूह या प्राकार्यात्मक (Multi Bonded/Multi Functional Group) परिवार, जाति, वर्ग, जनजाति एवं राष्ट्र।

वर्तमान समय में समूह शब्द का प्रयोग इतने वृहद अर्थ में नहीं होता है। सोरोकिन की तरह अन्य विद्वान जाति, प्रजाति या राष्ट्र को सामाजिक समूह नहीं मानते हैं। यानि जाति प्रजाति एवं राष्ट्र समुच्चय है न की समूह।

6. राबर्टबीरस्टीड का वर्गीकरण– इनकी पुस्तक सोशल आर्डर (1970) है। इन्होंने समूह की तीन विशेषतायें बतायी हैं–सामानता की चेतना, सामाजिक अन्तःक्रिया तथा सामाजिक संगठन।

इन विशेषताओं के आधार पर चार समूहों का उल्लेख किया है।

1. सांख्यिकीय समूह (Statistical Group)– इसमें उपर्युक्ततीनों विशेषतायें अनुपस्थित है। उदाहरण– आयु समूह, लिंग समूह शिक्षित या अशिक्षित समूह।

2. सामाजीय समूह (Societal Group)– इसमें सदस्यों में समानता की चेतना ही केवल पाई जाती है। उदाहरण– निर्जाति समूह, भाषिय समूह, वर्तमान में समाजशास्त्र में यह समूह नहीं है।

3. सामाजिक समूह (Social Group)– इसमें समता की चेतना एवं सामाजिक अन्तःक्रिया पाई जाती हैं किन्तु औपचारिक संगठन का आभाव होता है। उदाहरण– सहकर्मियों का समूह, परिवार, बच्चों की मित्रमण्डली, भीड़, श्रोतागण।

4 सहचारी या समिति मूलक समूह (Associational group)– इसमें तीनों विशेषतायें पाई जाती हैं–ट्रेड यूनियन, क्रिकेट क्लब एवं राजनीतिक दल।

बीरस्टीड ने चारों समूहों के बीच के अन्तर को निम्न सारणी द्वारा प्रस्तुत किया है–

	समानता की चेतना	सामाजिक अन्तःक्रिया	सामाजिक संगठन
सांख्किीय समूह	नहीं	नहीं	नहीं
समाजीय समूह	हां	नहीं	नहीं
सामाजिक समूह	हां	हां	नहीं
सहचारी समिति	हां	हां	हां

नोट– बीरस्टीड ने समूह के कुछ अंग और भी प्रकार बतायें हैं। वृहद समूह, लघु समूह, बहुसंख्यक समूह, अल्पसंख्यक समूह, दीर्घकालीन समूह, अल्पकालीन समूह, धुला समूह, बन्द समूह, स्वतन्त्र समूह आदि।
समूह, आश्रित समूह, संगठित समूह, असंगठित

7. आर.के. मर्टन का वर्गीकरण सदस्यता के आधार पर समूह के दो भाग बतायें हैं–

1. सदस्यता समूह (Membership Group)– परिवार, धर्म, गांव, जाति, शहर, राष्ट्र आदि। जन्म तथा विवाह के आधार पर सदस्यता पाई जाती है। ऐसे समूहों के सदस्य हम जन्म से ही होते हैं।

2. गैर सदस्यता समूह (Non-membership Group)– उदाहरण– शिक्षा, पोशाक, प्रवास व्यवसाय आदि इसका सदस्य व्यक्ति बनना चाहता है और कभी नहीं भी बनना चाहता।

नोट– सदस्यता समूह एवं असदस्यता समूह का वर्गीकरण मर्टन ने सन्दर्भ के अध्ययन के समय किया था।

8. मैकाइवर एवं पेज का वर्गीकरण– इन्होंने तीन प्रकार के समूह बताये हैं–

1. क्षेत्रीय एकता वाले समूह नगर, गांव, समुदाय, पड़ोस, राष्ट्र। सिक्ख समूह, बंगाली समूह, मद्रासी समूह आदि।

2. हितों के प्रति जागरुक लेकिन अनिश्चित संगठन वाले समूह – उदाहरण भीड़, जाति, अभिजात वर्ग, प्रजाति समूह।

3. हितों के प्रति जागरुक समूह– चर्च, राज्य, परिवार, मजदूर संघ, मित्र मण्डलीख क्लब। मैकाइवर एवं पेज के समूहों को सारणीबद्ध किया जा सकता है।

समूह	प्रमुख आधार	उदाहरण
1. क्षेत्रीय वाले एकता समूह	1. सामान्य हित 2. क्षेत्रीय व्यावसायिक समानता।	समुदाय, जनजाति, राष्ट्र, नगर, गांव
2. हितों के लिए जागरुक लेकिन अनिश्चित संगठन वाले	1. समूह के सदस्यों की मनोवृत्ति 2. अनिश्चित सामाजिक संगठन 3. पद प्रतिष्ठा और जीवन के अवसरों में अन्तर 4. अस्थायी स्वार्थ एवं समूह की सदस्यता	सामाजिक वर्ग, जाति अभिजात वर्ग, प्रजातीय समूह, शरणार्थी समूह, भीड़।
3. हितों के प्रति जागरुक समूह जिसमें निश्चित संगठन पाया जाता है।	1. निश्चित स्वार्थ 2. निश्चित सामाजिक संगठन 3. स्वार्थों की समानता 4. सदस्यों के बीच वैयक्तिक सम्बन्ध	सामाजिक समूह (परिवार, पड़ोस, मित्र मण्डली)

9. मेनडीटानूनेज का वर्गीकरण– इन्होंने समूह के चार प्रकार बतायें हैं–

1. संरचित समूह (Structural group) स्वतः धीरे–धीरे विकसित होते हैं जैसे– परिवार, गोत्र, वंश, तथा जाति।

2. संरचित अर्द्ध समूह– समुदाय, राष्ट्र तथा वर्ग।

3. आस्मिक अर्द्ध समूह भीड़ तथा जनसमूह।

4. कृत्रिम समूह विचार विमर्श करके इनका निर्माण किया जाता है, जैसे– नौकरशाही, धार्मिक समूह, राजनीतिक समूह, आर्थिक समूह, खेलकूद समूह।

10. सी. एच. कूले का वर्गीकरण– इनकी पुस्तक "Social Organization"(1909) में इन्होंने दो प्रकार के समूह बताये हैं–

प्राथमिक समूह (Primary Group) परिवार जेल के साथियों का समूह तथा पड़ोस। एवं द्वितीयक या अवशिष्ट समूह (Secondry or Residuary Group)

11. गिलिन एवं गिलिन का वर्गीकरण– इन्होंने प्रकार्यात्मक आधार पर वर्गीकरण किया। इन्होंने चार प्रकार के समूह बताये– 1. रक्त सम्बन्ध या जून का रिश्ता समूह, 2. शारीरिक विशेषतायें, 3. भौतिक समियता एवं 4. सांस्कृतिक रुप से विउत्पन्न हितों के आधार पर समूह।

12. ह्वाइट सैन्डरसन का वर्गीकरण– इन्होंने तीन प्रकार बताये हैं। वर्गीकरण का आधार संरचना है– i अनैच्छिक समूह, ii ऐच्छिक समूह, एवं iii प्रतिनिधिक समूह।

13. पार्क एवं वर्गेस का वर्गीकरण– इन्होंने दो प्रकार बताये हैं– i प्रादेशिक समूह– राज्य, प्रदेश तथा ii गैर प्रादेशिक समूह – जाति, प्रजाति।

14. ल्योपाल्ड वानवीज तथा हावर्ड वेकर का वर्गीकरण– इन्होंने तीन प्रकार बताये हैं– भीड़, स्मूह तथा अमूर्त संग्रह।

15. चार्ल्स एडबुड का वर्गीकरण– इन्होंने तीन प्रकार बताये हैं–ऐच्छिक एवं अनैच्छिक समूह, संस्थागत एवं असंस्थागत समूह तथा स्थाई एवं अस्थाई समूह।

16. **जार्ज हासन का वर्गीकरण**– इन्होंने समूहों का वर्गीकरण दूसरे समूहों के साथ सम्बन्धों के आधार पर किया है–असामाजिक समूह, आभासी सामाजिक समूह, समाज विरोधी समूह तथा समाज पक्षीय समूह।

17. **सिमेल का वर्गीकरण**– सदस्य संख्या एवं आकार के आधार पर मुख्य रुप से तीन वर्गों में समूह को विभाजित किया– 1. एकल समूह– सिमेल एक व्यक्ति को भी समूह मानते हैं।, 2. द्वैत समूह, 3. त्रैत समूह।

18. एफ.एच. गिडिंग्स का वर्गीकरण – इन्होंने दो प्रकार के समूह बताये हैं– 1. जननिक समूह तथा इकट्ठे समूह।

19. टानीज का वर्गीकरण – इन्होंने दो प्रकार बताये हैं– समुदाय (Community) तथा समिति (Association)।

समूह निर्माण के आधार– समाज में समूह के निर्माण के कई कारण या आधार है जिसे फिक्टर ने चार खण्डों में विभक्त किया है–

1. सामान्य कुल (Common Ancestry) परिवार जैसे समूह का मुख्य आधार सामान्य कुल परम्परा है।

2. सामान्य क्षेत्र – उदाहरण– पड़ोस, ग्रामीण, समुदाय नागरिक क्लब तथा क्षेत्रीय समूह।

3. सामान्य शारीरिक विशेषतायें– युवा क्लब, महिला मण्डली, नृजाती समूह।

4. सामान्य हित या स्वार्थ– पाकेट मारों का समूह, संगीतकार समूह, व्यापारी समूह, चोर समूह।

समूह में सदस्यता के प्रकार– समूह का निर्माण कई प्रकार के सदस्यों के द्वारा होता है। इन सदस्यों के बारे में चर्चा मर्टन ने की है। मर्टन ने निम्न प्रकार के सदस्य बताये हैं।

1. नाममात्री सदस्य (Nominal Group Member) – इसके अन्तर्गत व्यक्ति समूह को छोड़ देता है। फिर भी उसे नाममात्र का सदस्य समझा जाता है। जैसे– एक विद्यार्थी उसे भी उसी कक्षा का सदस्य समझते हैं।

2. सीमा स्थित सदस्य (Peripheral Group Member) – एक क्लब का सदस्य अपनी व्यस्तता के कारण यदि क्लब जाना अत्यधिक कम कर देता है तो इसे सीमा स्थित सदस्य कहेगें। ऐसे समूह सदस्य पर क्लब जैसा समूह अपना प्रभाव न के बराबर रखता है।

3. सदस्यता समर्थ सदस्य (Potential Group Member) – सदस्यता समर्थ सदस्य वह व्यक्ति है जो कि समूह के सदस्य होने की सभी आवश्यकताओं की पूर्ती करता है किन्तु वास्तविक रुप में वह सदस्य बना नहीं है। जैसे एक विद्यार्थी स्नातक परीक्षा पास करने के पश्चात् किसी भी स्नातक उत्तीर्ण सर्विस पाने के योग्य है इसी विद्यार्थी को सदस्यता समर्थ सदस्य माना जायेगा।

4. स्व समूह द्रोही (Renegade) – जब व्यक्ति अपने समूह को छोड़ करके दूसरे शत्रु समूह की सदस्यता स्वीकार कर लेता है तब वह रस समूह द्रोही सदस्य माना जायेगा।

उप समूह– मर्टन ने उपसगूह की अवधारणा का उल्लेख किया है। उपसमूह के सदस्य समूह के वे सदस्य हैं जो कि आपस में ऐसे विशिष्ट सम्बन्धों का निर्माण करते हैं जिनमें समूह के अन्य सदस्य सहभागी नहीं रहते हैं। जैसे– एक कक्षा में कई–कई छोटे–छोटे मित्र समूहों का होना जिसका आधार यह हो कि वे एक गांव के रहने वाले हैं अथवा इससे पूर्व वे एक स्कूल से पढ़कर आये हैं अथवा एक जाति के हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि समूह में जाति सम्बन्धी भावना पायी जाती है।

समूह निर्माण के आधार समूह के प्रकारों को निश्चित करने के आधार को मर्टन ने सबसे विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। मर्टन ने 20 आधार बताये है जिन्हें उन्होंने समूह की विशेषताएं कहा है।

मर्टन ने समूह में प्रवेश का तरीका, सामाजिक नियंत्रण की विधि, सदस्यता की परिभाषा, समूह भाग लेने की गति आदि कारकों को महत्वपूर्ण माना है। समूह की अवधारणा के प्रतिपादन का श्रेय समनर, गिडिंग्स लींवा तथा स्गाल को है। प्रथम बार इस आवधारणा को किसने दिया अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है। सामाजिक समूह की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता हम की भावना है।

आर.एम. विलियम्स – समूह के लिए आवश्यक तत्व

1. सामाजिक व्यवहार या पारस्परिक क्रियायें

2. मनुष्यों का संग्रह

3. सम्बन्धित भूमिकायें– विलियम्स ऐसे समाजशास्त्री हैं जिन्होंने समूह के लिए भूमिका की बात कही है।

टी.वी. बाटोमोर– संघर्षवादी समाजशास्त्री

1. इनकी पहली पुस्तक "Elite and Society" है।

2. "Politcal Sociology" है।

3. "Markist Sociology" है।

4."Sociology: Them and perspective" है।

आवश्यक तत्व–

1. व्यक्तियों का संग्रह

2. व्यक्तियों के बीच परिभाषित सामाजिक सम्बन्ध

3. समूह के सदस्य के बारे में सचेत रहते हैं और समूह के प्रतीक के बारे में जानते हैं।

जॉनसन ने कहा है कि छोटे समूह ही आरम्भ से समाज के आधार रहे हैं।

जार्ज होमांस– इनकी पुस्तक "The Human Group" है। इस पुस्तक में इन्होंने छोटे समूहों का अध्ययन किया है। उन्होंने पांच छोटे समूहों का विश्लेषण किया है और सामाजिक व्यवहार के प्रतिमान, संस्कृति और सामाजिक नियंत्रण के सन्दर्भ में उनका अध्ययन किया है। छोटे समूह हर युग में समाज में रहे है तथा अपने को इन्होंने जीवित भी रखा है। छोटे समूह समाज की मूलभूत इकाई रहे हैं। छोटे समूहों में निम्न तीन बाते पायी जाती हैं– 1. सक्रियता 2. अन्तःक्रिया 3. भावना प्रधान।

डी.एन. मजूमदार एवं मदान– इनकी पुस्तक "An introduction to Social Anthropology" है। ये लखनऊ विश्वविद्यालय में मानवशास्त्री रहे हैं। इन्होंने मिर्जापुर की कोरण जनजाति का अध्ययन किया। गठन के आधार पर 1937 में सामाजिक समूहों को दो वर्गों में विभाजित किया है–1. यौन समूह (Sex Group) परिवार। मजूमदार ने ही सर्वप्रथम यौन समूह का प्रयोग किया। 2. रक्त समूह (Blood Group)– वंश।

स्माल– इनकी परिभाषा कुछ हट कर है।

समूह के आवश्यक तत्व

1.व्यक्तियों की छोटी या बड़ी इकाई।

2. जिनके मध्य सम्बन्ध हो

3. सम्बन्ध ऐसा होना चाहिये कि उन्हें सम्बद्ध इकाई के रुप में देखा जा सके।

सोरोकिन, जीमरमैन एवं गाल्फिन ने 14 आधारों पर समूहों का वर्गीकरण किया है।

गुरविच ने 15 आधारों पर समूहों का वर्गीकरण किया है।

कूले, एंजेल तथा कारक वर्गीकरण– इनकी पुस्तक "Introductory Sociology" है। बढ़ते आकार और घटती आत्मीयता के कम में सामाजिक समूहों को चार वर्गों में विभक्त किया है–

1. आत्मीय युगल– उदाहरण– माँ और उसकी सन्तान, पति एवं पत्नी, प्रेमी और प्रेमिका। उन्होंने इन्हें उप प्राथमिक समूहों की संज्ञा दी है।

2. प्राथमिक समूह उदाहरण परिवार मित्र मण्डली पड़ोस।

3. अर्द्ध प्राथमिक समूह– हमेशा मिलने जुलने वाले लोगों के संगठित समूह होते हैं जैसे– बालकों का समूह, महाविद्यालय के छात्र संघ, क्रिकेट क्लब, इन समूहों में द्वितीयक समूहों के कुछ लक्षण भी पाये जाते हैं।

4. द्वितीयक समूह – संघीय आत्मीयता का पूर्ण अभाव होता है। उदाहरण निगम एवं व्यापारिक संघ आदि।

इन्होंने कहा है कि प्राथमिक समूह के सदस्यों के बीच व्यक्तिगत सम्बन्ध होते है और द्वितीयक समूह के सदस्यों के बीच प्रस्थिति पर आधारित सम्बन्ध होते हैं।

कूले जिसे प्राथमिक और द्वितीयक समूह कहते हैं उसे टानीज जेमिनशाफट एवं गैसेलशाफट, दुर्जिम उसे यांत्रिक और सावयव एकता, सोरोफिन उसे रुपवादी सम्बन्ध तथा अनुबन्धात्मक सम्बन्ध कहते हैं।

थियोडर मिल्स– इनकी पुस्तक "The Sociology of Small Group" है।

जॉनसन ने कहा है कि समूह के निर्माण के लिए व्यक्तियों में आपसी सहयोग आवश्यक है। गिलिन एवं गिलिन ने कहा है कि समूह की आधारभूत विशेषता दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना है।

1. मैकाइवर एवं पेज ने पारस्परिकता एवं जागरुकता को समूह के आवश्यक तत्व बताये हैं।

2. मैकाइवर एवं पेज ने चार प्राथमिक समूह के अंग बताये हैं– अधिकार, परिगणना (मतदान), समझौता एवं समन्वय।

कूले– 1. प्राथमिक समूह व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति तथा आदर्शों का निर्माण करने में मौलिक हैं। 2. पशु प्रवत्तियों की मानवीकरण ही सबसे बडी सेवा है जो प्राथमिक समूह करते हैं।

स्टीवर्ट एवं ग्लिन– 1. प्राथमिक समूह एक बालक के मानवीय अन्तःक्रियाओं को सिखाने का स्कूल है। 2. समूह में व्यक्तियों के हितों के प्रति हमारी निष्ठा होनी चाहिये।

सन्दर्भ समूह

(Reference Group)

सन्दर्भ समूह– सन्दर्भ समूह का वर्णन के आधार पर किया गया है। मर्टन में इस आधार पर अपनी पुस्तक "Social Theory and Social Structure" (1919) मे सन्दर्भ समूह की चर्चा की है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत संदर्भ समूह को प्रसिद्धि दिलाने का श्रेय मर्टन को जाता है।

सन्दर्भ समूह का विवेचन सरल विचार से प्रारम्भ होता है जिसे जेम्स में प्रस्तुत किया। किन्तु एच.एच. हाईमैन ने विकसित किया है। इसलिए हाईमैन को सन्दर्भ समूह का प्रथम प्रस्तुतकर्ता माना जाता है। हाईमैन ने सन 1942 में अपने लेख "The Psychology of status" में सर्वप्रथम सन्दर्भ समूह का उल्लेख किया। यह लेख अमेरिकन समाजशास्त्री पत्रिका The Archives of Psychology में अप्रैल 1949 के अंक में 269 लेख के रुप में था। हाईमैन सन्दर्भ समूह का प्रयोग सदस्य समूह की तुलना करने के लिए किया था। सदस्य समूह ऐसे समूह से सम्बन्धित है, जिससे व्यक्ति सम्बन्ध रखता है, जबकि सन्दर्भ समूह ऐसे समूह से सम्बन्धित है जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। इनमें स्कूली बच्चों का अध्ययन किया तथा पाया कि लोअर, मिडिल क्लास के बच्चे मिडिल क्लास के बच्चों के समान व्यवहार करते थे। हाइमैन ने ही सर्वप्रथम सन्दर्भ व्यक्ति की अवधारणा दी है।

सन् 1948 में शैरिक एवं शैरिक ने अपनी पुस्तक 'An outline of Social Psychology' में सन्दर्भ समूह का प्रयोग किया।

एस.ए. स्टाफर एवं राचमेन ने अपनी पुस्तक The American Soldiore (1940) में अमरीकी सिपाहियों की आकांक्षाओ, व्यवहार तथा कुंठाओ का अध्ययन किया और उन्हें सन्दर्भ समूह के साथ जोड़ने की प्रयत्न किया। यह पुस्तक दो भागों में विभाजित है।

सन्दर्भ समूह की अवधारणा का समाजशास्त्री विवेचन स्टाउफर व उनके साथियों ने किया है। उन्होंने पूरी किताब में सन्दर्भ समूह शब्द की चर्चा न की है अपितु सापेक्षिक वचन या सापेक्षिक हीनता या सापेक्षिक अमानबोध का उल्लेख किया है। हरबर्ट हाइमैन ने सापेक्षिक अभाव बोध को सन्दर्भ समूह का चचेरा भाई माना है।

मर्टन तथा रोस्सी ने द अमेरिकन सोल्जर (1060) में सन्दर्भ समूह का सर्वप्रथम उल्लेख किया है। इस पुस्तक में अमेरिकन सैनिकों का अध्ययन किया गया है।

मर्टन के अनुसार व्यक्ति का सन्दर्भ समूह उसका अन्तः समूह अर्थात् वह समूह हो सकता है जिसका वह सदस्य है। व्यक्ति का सन्दर्भ समूह कोई बाह्यसमूह भी हो सकता है जिसका वह सदस्य नहीं है।

मर्टन ने अपनी पुस्तक Social theory and Social Structure (1949) में भी सर्वप्रथम सन्दर्भ समूह का उल्लेख किया है। यह समूह आकांक्षाओं के आधार पर बनता है। मर्टन के अनुसार सन्दर्ग समूह वह समूह जिसका वह सदस्य नहीं है किन्तु वह उसका सदस्य बनना चाहता है। मर्टन ने लिखा है कि सन्दर्भ समूह सापेक्षिक हीनता के कारण बनता है।

सापेक्षिक हीनता का अर्थ यह है कि व्यक्ति सन्दर्भ समूह को अपने समूह से ऊँचा समझता तथा उसके मन में अपने प्रति हीनता का भाव होता है। उदाहरणार्थ– एक क्लर्क जो अपने पद पर हीनता का अनुभव करता है, वह अधिकारी बनना चाहता है। इसलिए वह अधिकारी से अपनी तुलना करता है तो स्वयं को नीचा समझाता है। अतः हीनता भाव के कारण अपना सन्दर्भ समूह अधिकारी समूह को बना लेता है। यानि कहा जा सकता है कि सन्दर्भ समूह का निर्माण सापेक्षिक हीनता के कारण ही होता है किन्तु सन्दर्भ समूह हमेशा हीनता के भाव के कारण ही नहीं बनाया जाता है। किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के कारण भी सन्दर्भ समूह बनते हैं। जैसे– एक प्रोफेसर सुधार लाने के उद्देश्य से एम.एल.ए. बनता है।

मर्टन का विचार यह अवश्य है कि सन्दर्भ समूह हमेशा सापेक्षिक हीनता के कारण होता है। स्टाउफर एवं अन्य की पुस्तक The American Soldre (1949) में उपलब्ध सामग्री के आधार पर मर्टन ने मध्य अभिसीमा का सिद्धान्त (Middle Range theory) सन्दर्भ समूह का सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की।

साधारणतः सामाजिक प्रस्थिति में लम्बवत् परिवर्तन की इच्छा सन्दर्भ समूह को होती है। अतः व्यक्ति सन्दर्भ समूह के मूल्यों और जीवन के तरीकों को आत्मसात् करने का प्रयास करता है इसके लिए उसे पूर्वाभ्यासी समाजीकरण की आवश्यकता पड़ती है।

सापेक्षिक हीनता या सापेक्षिक वंचन का विवेचन सरल विचार से प्रारम्भ होता है। जिसे बाल्डबिन ने प्रस्तुत किया तथा स्टाउफर ने विकसित किया। सटाउफर को ही सापेक्षिक वंचना के सिद्धान्त का प्रथम प्रस्तुतकर्ता माना जाता है। इसके पश्चात् मर्टन ने इसका उल्लेख किया है। मुजाफिर शेरिफ (पति) कोशेलिन शेरिफ (पत्नी) का मत है कि सन्दर्भ समूह वे समूह हैं जिनमें व्यक्ति अपने को समूह के सदस्य के रूप में सम्बन्धित करता है अथवा मनोवैज्ञानिक रुप से सम्बन्धित होने की आकांक्षा रखता है।

बेल्गिंटन गर्ल्स कालेज का अध्ययन– यहां की लडकियां कालेज तथा उसी शहर में रहना चाहती हैं क्योंकि वे लोग दोनों को पसन्द करती हैं। वे छुट्टियों में भी अपने घर एवं परिवार में नहीं जाना चाहती हैं।

1. सकारात्मक सन्दर्भ समूह – उदाहरण– बेल्गिंटन शहर एवं कालेज।

2. नकारात्मक सन्दर्भ समूह – उदाहरण– उनका परिवार तथा शहर।

सबसे पहले न्यूकाम्ब ने ही कहा कि अपना ही समूह किसी व्यक्ति के लिए सन्दर्भ समूह हो सकता है।

मर्टन एवं लेजर्स फेल्ट–

लेजर्स फेल्ट की पुस्तक 'Recent trends in sociology' है। दोनों समाजशास्त्री दि अमेरिकन सोल्जर नामक पुस्तक से इतना प्रभावित हुये कि दोनों ने मिलकर एक पुस्तक लिख डाली। वह पुस्तक 'Continuties in the research and studies in the scope of method of American solder' है। इसी पुस्तक में मर्टन एवं एलिस एल्किट ने मिलकर एक निबन्ध लिखा है। निबन्ध का नाम 'Contrybution to the theory of reference group of behaviour' है। **इसी पुस्तक में मर्टन ने दो बातें भी कही है–**

1. मर्टन ने मनोवैज्ञानिक धारणा को समाजशास्त्री धारणा में बदल दिया।

2. मर्टन ने सामाजिक गतिशीलता की व्याख्या के लिए सन्दर्भ समूह की अवधारणा दी तथा सन्दर्भ समूह के द्वारा आंशिक रूप से सामाजिक गतिशीलता की व्याख्या की।

• **फैन्च करिपेन**– इन्होंने Reference Power (सन्दर्भ शक्ति) (1958) नामक एक अवधारणा दी तथा कहा कि सन्दर्भ समूह के द्वारा शक्ति प्राप्त हो सकती है आगे चलके इन्होंने शक्ति सन्दर्भ समूह (Power Reference Group) नामक अवधारणा दी।

नार्मन कैपलिन– कैपलिन ने Political Voting नामक अवधारणा के माध्यम से Reference Group theory and voting behaviour नामक सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

वाशिंगटन कालेज की महिला मानवशास्त्री कमला चौधरी (भारतीय मूल की) तथा थियोडर न्यूकाम्ब ने मिलकर 1952 में सन्दर्भ समूह की चर्चा की।

शिबूवानी– (जापानी मूल का अमेरिकन समाजशास्त्री) इनकी पुस्तक 'The Reference Group as Perspective' है। इन्होंने मन की बात को ही सिद्ध करने का प्रयास किया और कहा कि सन्दर्भ समूह से सामाजिक गतिशीलता होती है।

फलेचर– इनकी पुस्तक 'Sociology andutopia' है। फलेचर का मत है कि समझदार व्यक्ति कभी भी भीड़ में शामिल नहीं होता है।

आर.एच.टर्नर का मत है कि सन्दर्भ समूह का आशय है कि उसी समूह को सन्दर्भ समूह माना जायेगा, जिस तक व्यक्ति पंहुच सके।

ऐसा समूह अथवा ऐसा व्यक्ति जैसा बनना सामान्य अवस्थाओं में सम्भव नहीं है तो उसे सन्दर्भ व्यक्ति या सन्दर्भ समूह नहीं कहेगें, जैसे रीतिक रोशन या माधुरी दीक्षित बनने की चाहत नहीं। आई.ए.एस. बनने की चाहत – हाँ

नोट– इससे स्पष्ट है कि सन्दर्भ समूह पूरा करने के योग्य या उपलब्ध के लायक होना चाहिये अन्यथा वह सन्दर्भ समूह नहीं रहेगा।

अमेरिका को प्रजातियों का कडाहा कहा गया है।

व्यक्ति का किसी समूह के प्रति तीन प्रकार का अभिमुखन या उन्मूखन हो सकता है।

1. सकारात्मक अभिमुखन (Possitive Orientation)– सकारात्मक अभिमुखन उसे कहते हैं जब व्यक्ति किसी समूह के प्रति आकर्षित है तथा उसका सदस्य बनना चाहता है।

2. नकारात्मक अभिमुखन (Negative orientation)– यह एक वह अभिमुखन है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति किसी समूह विशेष की न केवल आलोचना करता है बल्कि उसका सदस्य बनने की इच्छा भी नहीं रखता है।

3. तटस्थ या उदासीन अभिमुखन (Indifferent orientation)– इसके अनुसार व्यक्ति किसी समूह के प्रति तटस्थ होता है अर्थात् वह न तो किसी समूह विशेष का सदस्य बनना चाहता है और न वह उस समूह के सदस्य के प्रति घृणा का भाव रखता है। वह उस समूह के प्रति उदासीन रहता है यद्यपि ऐसा समूह उस व्यक्ति का सन्दर्भ समूह नहीं होता है किन्तु उस समूह में उस व्यक्ति के नकारात्मक व सकारात्मक सन्दर्भ समूह होने की सम्भावनायें छिपी होती है।

परिवर्तित सन्दर्भ समूह (Shifting reference group)– एक समूह विशेष एक लम्बे काल तक कुछ व्यक्तियों के लिए सन्दर्भ समूह रहता है लेकिन कालान्तर में किसी नये समूह के निर्माण से अथवा किसी विद्यमान समूह में वांछनी परिवर्तन के कारण वह स्थाई रूप से चले आ रहे सन्दर्भ समूह का स्थान ले लेता है।

उदाहरण– एक विद्यालय जो कि विद्यार्थियों के लिए सन्दर्भ समूह के रुप में महत्वपूर्ण रहता आया है, किन्तु एक नये व अच्छे मानदण्ड स्थापित करने वाले विद्यालय के खुल जाने से सन्दर्भ समूह की स्थिति को खो देता है। अतः नया विद्यालय अब छात्रों का सन्दर्भ समूह बन जाता है।

शीघ्र गामी सामाजिक परिवर्तन की स्थित में परिवर्तित सन्दर्भ समूह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

सन्दर्भ व्यक्ति की अवधारणा (The concept of reference individual) इस अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग हरबर्ट हाइमैन ने किया किन्तु सन्दर्भ समूह के समान ही मर्टन ने सन्दर्भ व्यक्ति की अवधारणा को स्पष्ट किया है। सन्दर्भ व्यक्ति वह व्यक्ति होता है जिसके अनुरुप बनने की हमारी इच्छा होती हैं जैसे एक विद्यार्थी अपने समाजशास्त्र के प्रोफेसर की तरह बनना चाहता है तो इस इस स्थिति में वे प्रोफेसर उस विद्यार्थी के सन्दर्भ व्यक्ति होगें। जिनका अनुसरण किया जाता है। ऐसे व्यक्ति या समूह को मर्टन ने भूमिका प्रारूप या भूमिका आदर्श कहा है।

मर्टन ने सिर्फ सन्दर्भ व्यक्ति की चर्चा की है किन्तु सन्दर्भ समूह की तरह सन्दर्भ व्यक्ति भी दो प्रकार के हो सकते हैं–1. सकारात्मक सन्दर्भ व्यक्ति, 2. नकारात्मक सन्दर्भ व्यक्ति।

आंशिक सन्दर्भ समूह (Partial Reference Group) प्रायः हम किसी भी व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र एवं उसके व्यक्तित्व के सभी पक्षों से प्रभावित नहीं होते हैं कुछ पक्षों से ही प्रभावित हो सकते हैं। यानि किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के किसी विशिष्ट भाग से प्रभावित यदि हुआ जाए तो उस व्यक्ति को आंशिक सन्दर्भ व्यक्ति कहा जायेगा। जैसे– अध्यापक के ज्ञान व विद्वता से प्रभावित हो जाना किन्तु उस अध्यापक की वेशभूषा, उच्चारण अथवा खान–पान से अप्रभावित रहना। यह अध्यापक आंशिक सन्दर्भ व्यक्ति है न कि सन्दर्भ व्यक्ति।

मर्टन– मर्टन ने दो प्रकार के सन्दर्भ समूह बताये हैं–

1. आदर्श प्रकार (Normative Type)– व्यक्ति अपने आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करने वाले समूह की सदस्यता प्राप्त करना चाहता है यानि वह नकल करना चाहता है।

2. तुलनात्मक प्रकार (Comprative type) व्यक्ति अपनी व अपने समूह की तुलना से करता है फिर वह दूसरे समूह का सदस्य होने की इच्छा रखता है किन्तु उस समूह में जाना नहीं चाहता जैसे– कर्नाटका की ओग्गालिका जनजाति ब्राहमणों का नकल तो करती है पर ब्राहमणों के नहीं चाहती है यानि ब्राहमण नहीं बनना चाहती है।

समूह में जाना सन्दर्भ व्यक्ति एवं सन्दर्भ आंकाक्षी (Reference Group and Reference Individual) जो व्यक्ति लोगों के व्यवहार को प्रभावित करता है उन्हें सन्दर्भ व्यक्ति कहते हैं। वे व्यक्ति जो सन्दर्भ व्यक्तियों से प्रभावित होते हैं उन्हें सन्दर्भ आंकाक्षी करते हैं।

उदाहरण– यदि एक कक्षा के विद्यार्थी विवेकानन्द का अनुसरण करते हैं तो विवेकानंद सन्दर्भ व्यक्ति हैं तथा कक्षा के विद्यार्थी सन्दर्भ आकांक्षी हैं।

सन्दर्भ समूह व्यवहार के परिणाम–

1– उद्देश्यों की प्राप्ति मे सहायक
2– व्यक्तियों को परिवर्तन के लिए तैयार करता है।

3– व्यक्ति के अग्रिम समाजीकरण में सहायक

4– प्रतिस्पर्धा की भावना की ओर प्रेरित करना।

5– व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने में सहायक।

सन्दर्भ समूह व्यवहार के अप्रकार्य–

1– सीमान्त व्यक्ति बनना।

2– व्यक्ति का विघटन होना।

सन्दर्भ समूह के उल्लेखकर्ता– हाइमैन, मर्टन, शेरिफ एवं शेरिफ, केण्ट्रिल, न्यूकाम्ब, किट्ट, जहोदा तथा टर्नर।

3– आंशिक संकट

आटोक्लाइन वर्ग– जिस समूह के व्यवहारों एवं मनोवृत्तियों के ढांचे को अपने पर लागू किया जाए तो उस ढांचे को सन्दर्भ समूह कहते हैं। सन्दर्भ समूह से व्यक्ति मनोवैज्ञानिक तौर पर जुड़ जाता है।

आंकाक्षा के आधार पर समूह का वर्गीकरण हाइमैन, स्टाउफर, शेरिफ एवं शेरिफ, मर्टन तथा आटोक्लाइन वर्ग ने किया है। सन्दर्भ समूह स्थिति, समय, स्थान आदि से सम्बन्धित सापेक्ष समूह है। मर्टन ने सिमान्त मानव या हासिये का मानव (Marginal man) का विस्तृत उल्लेख किया है किन्तु मर्टन से पूर्व सर्वप्रथम इस अवधारणा का उल्लेख स्टोनइक्वीस्ट ने किया था। मर्टन ने सिमान्त समुदाय (Marginal Community) नामक अवधारणा का भी उल्लेख किया।

सन्दर्भ समूह के कुछ अन्य प्रकार–

1– बहुल सन्दर्भ समूह (Multiple reference group) इस अवधारणा को देने का श्रेय हरबर्ट हाइमैन को है किन्तु इसका विस्तार से उल्लेख करने का श्रेय मर्टन को जाता है। जब एक समूह एक ही समय में अनेक समूहों की नकल करता है तो वे तमाम समूह उस समूह के लिए बहुल सन्दर्भ समूह होगा। इसी तरह बहुल सन्दर्भ व्यक्ति (Multiple reference individual) भी हो सकता है।

मर्टन ने बहुल सन्दर्भ समूह के दो प्रकारों का उल्लेख किया है–

परस्पर विरोधी सन्दर्भ समूह (Conflicting Reference Group)– दो या दो से अधिक परस्पर विरोधी सन्दर्भ समूह होते हैं। इनमें से किसी एक को चुनने की समस्या का सामना करना पड़ता है।

परस्पर एक दूसरे को शक्ति प्रदान करने वाले समूह (Mutual Sustaining Reference Group)–समान आयु समूह, समान वैवाहिक स्थिति समूह तथा समान शैक्षिक स्तर वाले समूहों को व्यक्ति अपना सन्दर्भ समूह बनाता है।

2. सदस्यता एवं गैर सदस्यता या असदस्यता सन्दर्भ समूह (Membership and nonmembership reference group)– ये दोनों प्रकार मर्टन ने ही दिया है तथा मर्टन ने कहा है कि सन्दर्भ समूह में सामान्यतः अन्तःक्रिया नहीं हुआ करती है।

डब्ल्यू. जी. रन्सीमेन– इनकी पुस्तक 'Relative deprivation and social Justice' (सापेक्षिक वंचन एवं सामाजिक न्याय) है। एन्सीमेन ने दो प्रकार के सन्दर्ग समूह बताये हैं 1– सीमित सन्दर्भ समूह (Resticted reference group)– जिसमें बहुत अधिक योग्यता की आवश्यकता होती है। जैसे– वैज्ञानिक बनना, आई.ए.एस. बनना।

2. सामान्य सन्दर्भ समूह (General reference group)– कम योग्यता की आवश्यकता इसमें है। जैसे– एक स्कूल व परिवार को सन्दर्भ समूह मानना ।

मार्टिन पैशेन– पूर्वी अफ्रीका में अम्बा जनजाति का अध्ययन किया तथा इन्होंने आंशिक सन्दर्भ समूह (Partial reference group) को प्रस्तुत किया। जब किसी समूह को श्रेष्ठ माना जाए और उसकी कुछ ही बातों की नकल की जाए न की सभी चीजों का यह कहा जा सकता है कि बाकी चीजों का विरोध किया जाए तो इसे आंशिक सन्दर्भ समूह कहते हैं।

केरल की नायर जनजाति बहुत ही शक्तिशाली जाति है। इसकी नकल इडोवा (पासी– ताडी निकालने का काम) लोग करते हैं। इड़ोवा जाति के लोग सामान्य तौर पर नायरों से ईर्ष्या करते हैं किन्तु नायरों की कुछ बातों का अनुसरण भी करते हैं जैसे–लाढी एवं तलवार चलाने की नकल आदि ।

सन्दर्भ समूह से सम्बन्धित कुछ और भी अवधारणायें मर्टन ने प्रस्तुत किया है– 1– दूसरे विशिष्ट (Significat others) – व्यक्ति जिन लोगों को प्रतिष्ठित मानकर जिनके अनुरूप स्वयं को बनाने का प्रयत्न करता है तो वे दूसरे विशिष्ट होते हैं। वह इन्हें अपना आदर्श मानकर ऊपर उठने हेतु प्रयास करता है।

सन्दर्भ समूह (Confermity and non conformity of reference group)

2– अनुरुपता एवं प्रतिरुपता (गैर अनुरुपता)

3– सन्दर्भ व्यक्ति या सन्दर्भ समूह का चुनाव (Selection of reference individual and reference group)

4– सन्दर्भ समूह को चुनाव को प्रभावित करने वाले तथ्य (Facts influencing the selection of reference group)– मर्टन ने उन तथ्यों की एक सूची दी है जो व्यक्ति के लिए अपने समूह या किसी दूसरे समूह को सन्दर्भ समूह के रुप में चुनाव को प्रभावित करती है जैसे– समूह की एकता, समूह की खुली या बन्द प्रकृति, आर्दशात्मक नियंत्रणों की व्यवस्था आदि।

सन्दर्भ समूह के बारे में कुछ अध्ययन

1. एफ. जी. बेली – उडीसा के गांव बिसपाडा का अध्ययन किया। बिसपाडा कोराकुट जिले में हैं।

2. डी. एन. मजुमदार – इन्होंने रमापुर (कानपुर) का अध्ययन किया। यहां पर नाई लोग ठाकुरों को अपना सन्दर्भ समूह मानते हैं। नाई लोग 1931–32 के दौरान सिंगापुर चले गये। वहां पर बहुत पैसा कमाया और 1850–51 में अपने गांव वापस आ गये तथा ठाकुरों के समान व्यवहार करने लगे ।

3. टो.एम. लिंच – इनकी पुस्तक 'The Politics of Untouchable Ability' है। इन्होंने आगरा में जाटव (SC) परिवार का अध्ययन किया। जाटव जाटों को अपना सन्दर्भ समूह मानते थे। लिंच ने भारत में सन्दर्भ समूह की अवधारणा का प्रयोग किया।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार– मनुष्य तीन तरीके से अपने स्वार्थों या आवश्यकताओं की पूर्ती कर सकता है–

1. व्यक्ति स्वयं ही अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ती कर सकता है किन्तु यह व्यवहारिक नहीं है।

2. व्यक्ति समाज के अन्य एवं सदस्यों से संघर्ष के माध्यम से अपने लक्ष्यों की पूर्ति कर सकता है, किन्तु यह समाज में विघटन पैदा करेगी।

3. व्यक्ति कुछ लोगों के साथ सहयोग के आधार पर अपने लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है। मैकाइवर एवं पेज के अनुसार तीसरा तरीका उचित है तथा इसी से समूहों का तथा समितियों का निर्माण होता है।

सन्दर्भ समूह के कुछ भारतीय सन्दर्भ–

1. ब्राह्मणीकरण एवं संस्कृतिकरण तथा इस्लामीकरण ये सन्दर्भ समूह समान ही हैं।

2. जब कोई हिन्दू निम्न जाति या समूह या जनजाति स्थानीय उच्च जाति के व्यवहारों को अपना लेता है तो इसे संस्कृतिकरण कहते हैं। इसी प्रक्रिया को मुसलमानों में इम्तियाज अहमद ने इस्लामीकरण कहा है किन्तु जरीना अहमद जिन्होंनें किदवई जनजाति का अध्ययन किया ने मुसलमानों में इस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण कहा है।

3. सुरजीत सिन्हा– इन्होंने मध्यप्रदेश की गोंड जनजाति का अध्ययन किया। धनी गोंड जनजाति के लोग अपनी लड़कियों का विवाह गरीब राजपूतों से करना चाहते हैं। इस प्रक्रिया को सुरजित सिन्हा ने राजपूतीकरण कहा है।

इस प्रकार राजपूतीकरण की अवधारणा के द्वारा यह कहा जा सकता है कि गरीब राजपूत धनी गोंड के लिए सन्दर्भ समूह हैं।

समाजशास्त्र के कुछ तथ्य–

1. विश्व समाजशास्त्र के पिता– आगस्तकाम्ट

2. भारतीय समाजशास्त्र के पिता–पैट्रिक गिड्स

3. भारत के समाजशास्त्र के पिता – जी. एस. धूरिये

4. विश्व मानवशास्त्र के पिता – ई.बी. टायलर

5. भारतीय मानवशास्त्र के पिता– शरतचन्द्र राय

6. मानवशास्त्र शब्द के दाता– मैनुअल काण्ट

भारत में आरक्षण की व्यवस्था 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत हुई, किन्तु सबसे पहले मैसूर के राजा विकमा पिल्लई ने इसे 1876 में ही शुरु कर दिया था।

1935 में ही प्रथम बार अनुसूचित जाति एवं जनजाति शब्द का प्रयोग हुआ।

एफ.जी. बेली– इनकी पुस्तक The Political Frontiers of the caste system (1960) है। इसी पुस्तक में बेली ने जनजाति, जाति सातत्व (Tribe Caste Continum) की अवधारणा दी है। यह अवधारणा यह बताती है कि जनजातियां किसी उच्च वर्ग में प्रवेश करना चाहती है।

इसी सातत्व की अवधारणा को सुरजीत सिन्हा ने आगे बढाया। बेली ने दो जगहों का अध्ययन किया– 1. बिसिपारा (उडीसा) एवं 2. कोडमल (उडीसा) ।

गोंड जनजाति के लोग जाति व्यवस्था में प्रवेश करने का प्रयास कर रहे हैं।

शक्तिकरण की प्रक्रिया (The Process of Empowerment) इस अवधारणा का उल्लेख जनजातियों के अध्ययन के समय बेली ने किया इसके अन्तर्गत कमजोर और पिछडी जनजातियां, ऊंची जातियों में प्रवेश करने का प्रयास करती हैं। इसे ही बेली ने शक्तिकरण की प्रक्रिया कहा है।

सम्भावित समूह या सम्भाव्य समूह (Potential Group)– सम्भाव्य समूह में उन लोगों का संग्रह होता है जिनमें कुछ सामान्य विशेषतायें होती हैं। परन्तु उसकी कोई स्वीकारणीय संरचना या संगठन नहीं होता है।

सम्भावित समूह के प्रतिपादक मर्टन एवं टर्नर हैं। यह ऐसा समूह होता है जो अभी शक्तिशाली नहीं है किन्तु भविष्य में शक्तिशाली होने की आशा रहती है। सम्भाव्य समूह वास्तविक समूह बन सकता है यदि यह संगठित हो जाये तथा इसका कोई संगठन बन जाये। जब तक विद्यार्थियों की यूनियन नहीं बनती वे सम्भावित समूह के रुप में रहते हैं परन्तु यूनियन का निर्माण होते ही वे सामाजिक समूह बन जाते हैं।

अर्द्धसमूह या आभासी समूह (Quassi group) अर्द्धसमूह की सर्वप्रथम अवधारणा इग्लैण्ड के प्रथम समाजशास्त्री शिक्षक मोरिस गिन्सवर्ग ने 1928 में अपनी पुस्तक 'Sociology' में दिया था। बाटोमोर ने भी स्थायित्व के आधार पर स्थाई एवं अस्थाई समूहों के बीच अर्द्धसमूह का उल्लेख किया है।

आभासी समूह व्यक्तियों का एक ऐसा योग है जिसमें संरचना अथवा संगठन का अभाव होता है जिसके सदस्य समूह के अस्तित्व के प्रति अनभिज्ञ अथवा कम जागरुक हो सकते हैं।

सामाजिक वर्ग, प्रस्थिति समूह, आयु समूह, लिंग समूह, अर्द्ध समूहों उदाहरण हैं। ये अर्द्ध समूह कभी भी संगठित सामाजिक समूहों में परिवर्तित हो सकते हैं जैसे कोई भी सामाजिक वर्ग कभी भी राजनीतिक दल के रुप में संगठित हो सकता है। अन्तः समूह एवं वाह्य समूह समनर ने दिया है।

समूह	विशेषतायें	उदाहरण
अन्तःसमूह	1. हम की भावना 2. समूह कल्याण के सामने व्यक्तिगत हित	गांव, जाति, धार्मिक सम्प्रदाय, परिवार, कबीला

	गौण होते हैं। 3. तुलनात्मक रुप से छोटाआकार 4. सामान्य हित 5. समूह के प्रति पक्षपात पूर्णभावना 6. व्यक्ति का इस समूह से सम्बन्ध होता है। 7. सहयोग की भावना	तथा कालेज।
वाह्य समूह	1. विरोध पूर्ण भावनायें 2. सन्देह, घृणा, भेदभाव 3. तुलनात्मक रुप से बड़ाआकार 4. हितों में संघर्ष 5. सामाजिक दूरी 6. व्यक्ति का सम्बन्ध नहीं 7. असहयोग की भावना	शत्रु सेना, विभिन्न अन्य,धार्मिक समूह, विदेशी समूह,प्रतिस्पर्धा करने वाले वर्ग

स्थानीय समूह (Spatial group) स्थानीय समूह वे समूह होते हैं। जिनका संगठन सदस्यों की स्थानीय समियता के कारण किया जाता है। गोत्र, वन्य जाति, खानाबदोशी दल तथा खानाबदोशी झुण्ड है। ये सभी स्थानीय समूह हैं– 1. गोत्र (Clan or Sib) गोत्र ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो स्वयं को किसी वास्तविक अथवा पौराणिक पूर्वज की सामान्य सन्तान मानते हैं।

मजुमदार एवं मदान का मत है कि एक गोत्र बहुधा कुछ वंश समूहों का योग होता है जो अपनी उत्पत्ति एक कल्पित पूर्वज से मानते है जो मानव के समान पशु, पेड़–पौधों या निर्जीव वस्तु हो सकता है।

गोत्र कभी भी माता–पिता दोनों के वंशजों को मिलाकर नहीं बनता। यह सदैव एक पक्षीय (Unilateral) होता है।

गोत्र की विशेषतायें–

1. बर्हिविवाह समूह
2. एक ही पूर्वज में विश्वास (कल्पित अथवा वास्तविक)
3. एक पक्षीय समूह
4. गोत्र ऋषियों के नाम पर होते हैं जैसे– वशिष्ठ, भारद्वाज।
5. गोत्र टोटम के नाम पर भी होता है जैसे– कुन्जम तथा नागासोदी।
6. गोत्र उपनाम के आधार पर भी होता है जैसे– कुमार, जगत आदि।
7. गोत्र भू–भाग के आधार पर भी होता है जैसे– जयपुरिया।
8. गोत्र में हम भावना।

2. खानाबदोशी दल (Bond)– यह घुमक्कड़ लोगों का समूह है ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। खानाबदोशी दल दो प्रकार के होते हैं– 1. शिकारी दल 2. पशुपालक जत्थे खानाबदोशी दल में थोड़े से लोग होते हैं इसलिये इनमें दृढ सामुदायिक भावना पाई जाती है। बोगार्ड्स ने खानाबदोशी झुण्ड में बदल जाता को आधुनिक राज्य का उद्‌गम माना है। जब सदस्यों की संख्या बढ़ जातीहै तो खानाबदोश दल खानाबदोशी झुण्ड में बदल जाता है।

प्राथमिक समूह (Primary Group) एवं द्वितीयक समूह (Secondry Group)– प्राथमिक समूह की अवधारणा का उल्लेख सर्व प्रथम अमेरिकन समाजशास्त्री सी. एच. कूले ने अपनी पुस्तक Social organization (1909) में किया। कूले ने प्राथमिक समूह की अवधारणा को अवश्य दिया है किन्तु उन्होंने द्वितीयक समूह की बात कभी नहीं की है। प्राथमिक समूह की अवधारणा के आधार पर अन्य विद्वानों ने एक प्रतिकूल सामाजिक समूह की बात कही और तब से द्वितीयक समूह की चर्चा की जाती रही है तथा द्वितीयक समूह को भी कूले के साथ जोड दिया गया। कूले की प्राथमिक समूह की अवधारणा समनर की अन्तः समूह की अवधारणा से मिलती–जुलती है। कूले ने सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर समूहों का वर्गीकरण दिया है।

परिभाषा–

कूले के अनुसार– प्राथमिक समूहों से हमारा तात्पर्य उन समूहों से है जिनमें सदस्यों के बीच आमने–सामने के घनिष्ठ सम्बन्ध एवं पारस्परिक सहयोग की विशेषता होती है। ऐसे समूह अनेक अर्थों में प्राथमिक होता है लेकिन विशेष रूप से इस अर्थ में की ये व्यक्ति के सामाजिक स्वभाव और विचार के निर्माण में योगदान देते हैं।

प्राथमिक समूह ही व्यक्तित्व के विकास में प्राथमिक भूमिका निभाते है। प्राथमिक समूह के अन्तर्गत 1. परिवार 2. कीडा समूह 3 पडोस आते हैं।

मैकाइवर एवं पेज ने परिवार, कीडा समूह, मित्रमण्डली, गपशप समूह, साझेदारी, स्थानीय भाई–चारा, अध्ययन समूह, गैंग, जनजाति, परिषद आदि को प्राथमिक समूह माना है। प्रोफेसर किंग्सले डेविस ने परिवार, कीडा समूह, पडोस, गांव तथा कार्य करने वाले समूह को प्राथमिक समूह कहा है।

डेविस तथा होमांस दोनों ने प्राथमिक समूह के विपरीत द्वितीयक समूह बताते हैं।

एच.पी.फेयरचाइल्डः– इनकी पुस्तक 'General Sociology' है।

प्राथमिक समूह के आवश्यक तत्व – 1. कम संख्या (दो से लेकर पचास या साठ लोग) 2. घनिष्ठ एवं स्थिर सम्बन्ध, 3. आमने–सामने के सम्बन्ध।

किम्बालयंग– प्राथमिक समूह के आवश्यक तत्व

1– आमने सामने के सम्बन्ध
2– यहां व्यक्तित्व का विकास होता है
3– किम्चालयंग का मत है कि प्राथमिक

अलेक्स इंकसल– आवश्यक तत्व

समूह मानव संघों का प्रतिनिधि है।

1– सम्बन्ध प्राथमिक होते हैं
2– आमने–सामने के सम्बन्ध
3– सहयोग एवं सहवास की भावना
4– अहम् की भावना हम की भावना में बदल जाती है।

कूले से पहले जर्मन समाजशास्त्री टॉनीज ने प्राथमिक एवं द्वितीयक समूहों के समान विशेषतायें प्रदर्शित करने वाले समूहों को जैमिन शाफट एवं जैसेल शाफट नाम से सम्बोधित किया था। जैमिनशाफट वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें सम्बन्ध व्यक्तिगत अथवा परम्परागत अथवा दोनों ही होते हैं। जैसेलशाफट के अन्तर्गत परम्परावादी समाज औपचारिक वैधानिक समाज में परिवर्तित हो जाता है।

जैमिनशाफट	जैसेलशाफट
1. व्यक्तिगत	1. अवैयक्तिक
2. अनौपचारिक	2. औपचारिक एवं वैधानिक
3. परम्परागत	3. उपयोगितावादी
4. भावनापरक	4. व्यावहारिक
5. सामान्य	5. विशिष्ट

लुण्डवर्ग– आवश्यक तत्व

1– दो या दो से अधिक व्यक्ति

2– जो घनिष्ठ, सहभागी और वैयक्तिक ढंग से एक दूसरे से व्यवहार करते हैं। इनकी पुस्तक 'Sociology' है ।

जीसबर्ग– आवश्यक तत्व

1– व्यक्तिगत सम्बन्ध

2– तुरन्त एक दूसरे के साथ व्यवहार।

मैकाइवर एवं पेज– आवश्यक तत्व

1. थोड़े से लोग
2. सहयोग एवं सहायता
3. आमने–सामने का मिलन
4. नीति पर विचार–विमर्श एवं क्रियान्वयन
5. सभी समाजों में ये केन्द्र के रूप में होतें हैं
6. सार्वभौमिक है
7. सामाजिक संरचना की इकाई कोशिका है
8. इनसे महत्वपूर्ण बातें सीखी जाती है
9. रीति रिवाजों का प्रजनन स्थल
10. यहां पर सामाजिक संतुष्टियों की पूर्ति होती है। कोचर एवं रोजनबर्ग का मत है कि कुछ विशेषतायें तो संयोगवश होती हैं जब कि कुछ आधारभूत विशेषतायें होती हैं।

उदाहरणार्थ– एक टेबिल के चार टांगें होना एक संयोगवश विशेषता है अन्यथा तीन या पांच टांगों की भी टेबिल हो सकती है किन्तु टेबिल के ऊपर लिखने के लिए आधार (लकड़ी का पट्टा) होना आधारभूत विशेषता है। ठीक यही बात प्राथमिक समूहों लिए लागू हो सकती है। जैसे आमने–सामने के सम्बन्ध होना, लघु आकार होना आदि संयोगवश विशेषताएं है किन्तु सामाजिक सम्बन्धों का घनिष्ठ होना एक आधारभूत विशेषता है जिसके बिना प्राथमिक समूह बन ही नहीं सकते।

प्राथमिक समूह की विशेषताएं–

1– लघु आकार

2– आमने–सामने के सम्बन्ध – प्राथमिक समूह के सदस्यों के बीच भौतिक तथा आंशिक समियता पायी जाती है।

डेविस ने अपनी पुस्तक 'Human Society' में कहा है कि आमने–सामने का सम्बन्ध प्राथमिक समूह का आधार नहीं हो सकता है क्योंकि आमने–सामने का सम्बन्ध रखते हुये भी कभी भी दो व्यक्तियों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं पनपता है एवं इसके विपरीत लम्बे समय तक आमने–सामने का सम्बन्ध नहीं रहते हुये भी घनिष्ठ सम्बन्ध पनप सकता है।

उदाहरण–

1– एक कार्यालय के कर्मचारी आमने–सामने मिलते हुये भी प्राथमिक समूह का निर्माण नहीं करते है।

2– पिता–पुत्र बहुत दूर–दूर रहते हुये भी तथा आमने–सामने के सम्बन्ध के सम्बन्ध के न होते हुये भी प्राथमिक समूह का निर्माण करते हैं।

किंग्स्ले डेविस ने प्राथमिक समूह के निर्माण के तीन आवश्यक भौतिक दशाओं का उल्लेख किया है–

1. शारीरिक समियता
2. समूह का लघु आकार
3. सम्बन्धों की अवधि।.

डेविस प्राथमिक समूहों में मैं के स्थान पर हम की भावना को प्रस्तुत करते हैं तथा डेविस द्वितीयक समूह का भी उल्लेख किया है।

ई.फेरिस (Ellsworth Faris) ने आमने–सामने के सम्बन्ध को प्राथमिक समूह के लिए आवश्यक नहीं माना है क्योंकि नातेदारी समूह में आमने–सामने न रहते हुये भी घनिष्ठता पायी जाती है तथा इसी तरह न्यायालय में न्यायाधीश, जूरी, वकील, अपराधी, गवाह आदि आमने–सामने होते हैं किन्तु प्राथमिक समूह का निर्माण नहीं करते हैं।

वरिस्टीड ने कूले के विचारों का अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन प्रदान करते हुये कहा है कि कूले के द्वारा उल्लेखित आमने–सामने शब्द को शाब्दिक रूप से नहीं लेना बल्कि प्रतीकात्मक रुप से लेना है इस शब्द के द्वारा कूले ने मात्र सम्बन्धों की घनिष्ठता का बोध करना चाहते हैं।

3– तुलनात्मक स्थिरता

4–लक्ष्यों की समानता – प्राथमिक समूह में मैं की भावना की जगह हम भावना पायी जाती है। डेविस ने इसे बताने के लिए एक लडकी और उसकी मां का उदाहरण दिया है। लड़की जब मंच पर कार्यक्रम प्रस्तुत कर रही है तब मां उस कार्यक्रम को देख रही है किन्तु पूछने पर कि कार्यक्रम कैसा है मां ने कहा कि वह तो कार्यक्रम देख ही नहीं पायी क्योंकि वह अपनी पुत्री के कार्यक्रम के खराब होने के डर से परेशान थी ऐसी ही परेशानी उसकी पुत्री को भी थी। कहा जा सकता है कि दोनों के कार्यकलाप तथा लक्ष्य समान है।

5– सामान्य चरित्र

6– सम्बन्ध स्वयं में साध्य होते हैं– डेविस का मत है कि ये सम्बन्ध समझौते, आर्थिक लाभ अथवा राजनैतिक उद्देश्यों से प्रभावित नहीं होते बल्कि व्यक्तिगत आत्मिक भावनात्मक तथा अपने आप में पूर्ण होते हैं।

7– स्वतः विकसित समूह (Spontaneous development) – दो चार व्यक्तियों में जब आपसी घनिष्ठता काफी बढ़ जाती है तो प्राथमिक समूह का स्वरुप स्वतः तैयार हो जाता है।

8– वैयक्तिक सम्बन्ध (Personal Relation) डेविस का मत है कि नाविन वैयक्तिक सम्बन्धत स्थापित किया जा सकता है एक पुराना वैयक्तिक सम्बन्ध समाप्त किया जा सकता है सम्भवतः वह चालक शक्ति जिसने सम्बन्ध प्रारम्भ कराया था दूसरों को प्रेरणा दे सकती है। लेकिन एक ही सम्बन्ध में एक व्यक्ति के स्थान पर दूसरे की प्रतिस्थापन नही की जा सकती है।

9– सम्बन्धों में घनिष्ठता एवं पूर्णतः

10– समाजीकरण के अधिकरण के रूप में

11– आत्मीक सम्बन्ध

12– प्राथमिक नियंत्रण

13– अनौवचारिक सम्बन्ध

14– सर्व व्यापकता

15– पृष्ठभूमि की समानता– मैकाइवर एवं पेज का मत है कि एक ऐसा स्तर होता है जिस पर एक समूह को रहना चाहिए और जो व्यक्ति उससे बहुत ऊपर या नीचे होगा । वह समूह भागिता की प्रक्रिया में बाधा डाल देगा।

16– सादृश्य हित–सादृश्य हित प्रथम नम्बर पर आता है तथा सामान्य हित दूसरे नम्बर पर आता है।

सदस्यों की संस्था के आधार पर कुछ लोगों ने समूह का वर्गीकरण किया है तथा इन लोगों ने छोटे समूह को समाज का आधार मानते हैं, ये निम्न है–

1. जार्ज सिमेल
2. जानसन
3. होमांस
4. मैकाइवर एवं पेज

ए.सी. मेअर का वर्गीकरण– उन्हो ने समूह के दो प्रकार बताये हैं–

1. अर्द्ध समूह एवं 2. अन्तः क्रियात्मक समूह।

प्राथमिक समूहों का महत्व–

कूले का मत का है कि प्राथमिक सम्बन्ध हमारे चारो ओर के संसार में मानव स्वभाव की परिचारिका है और ऐसा कोई भी कारण नहीं मिलता जिसके आधार पर कही भी अथवा कभी भी इसके विपरीत कुछ हो रहा है।

किम्बाल यंग का मत है कि प्राथमिक समूह मौलिक संघो का मानव संघो के प्रतिनिधि है ये उतने ही प्राचीन है जितना कि मनुष्य का जीवन।

पारसन्स की पुस्तक Family socialication and other मेंले है पारसन्स का मत है कि हमारी मानवीयकरण की प्रक्रिया Process of humanization प्राथमिक समूहों में ही होती है।

ब्रूम तथा सेल्जनिक का मत है कि प्राथमिक समूह व्यक्ति और समूह के बीच सबसे महत्वपूर्ण कडी है। प्राथमिक समूहों की सहायता से व्यक्ति को भावात्मक सुरक्षा प्राप्त होती है और इन्ही के माध्यम से व्यक्ति अपने उच्चतर लक्ष्यों को प्राप्त कर पाता है।

कूले का मत है कि प्राथमिक समूह समाज के पालन पर है अर्थात समूह विचलन रोकने में सहायक है। कूले का मत है कि पाश्विक प्रेरणाओं का मानवीकरण ही प्राथमिक समूहो द्वारा की जाने वाली सम्भवतः सबसे वडी सेवा है।

कूले ने प्राथमिक समूहो को मानवीकरण करने वाला एक शक्तिशाली अभिकर्ता कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि जैवकीय रुप से प्रत्येक मनुष्य में लालसा, लालच, प्रभुत्व और प्रतिशोध जैसी प्रवृत्तिया पायी जाती है। जिनका दमन करके ही मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी बनाया जा सकता है। प्राथमिक समूह इन प्रवृत्तियों का मानवीकरण करते है।

एफ.ई. मेरिल ने प्राथमिक समूहो के महत्व को इनके द्वारा किये जाने वाले कुछ प्रमुख कार्यों के आधार पर स्पष्ट किया गया है–

1. मनोरंजात्मक कार्य
2. सुरक्षात्मक कार्य
3. व्यक्तित्व का विकास
4. विचारों का संवहन

प्राथमिक समूह के चार प्रमुख अंग है जो कि प्राथमिक समूह मे एकता लाने के लिए प्रयुक्त होते है। मैकाइवर एवं पेज के अनुसार ये चार निम्न है –

1. अधिकार
2. समझौता
3. परिगणना या चुनाव
4. सम–वय

प्राथमिक समूह के महत्व को निम्न बिन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है–

1. गुणो का विकास – ऐसे चिनाय का मत है कि व्यक्तित्व के मूल तत्व परिवार के पक्ष स्थल में प्राप्त किये जाते है।

2. मनोवैज्ञानिक सुरक्षा

3. मनोरंजन प्रदान करना

4. व्यक्तित्व व समाज के बीच की कडी

5. सामाजिक प्रतिमानो के पालन एवं नियंत्रण में योगदान

6. व्यक्ति के कार्य क्षमता में वृद्धि – शिल्स का मत है कि बड़े व्यापारिक समूहों में जब प्राथमिक समूह बन जाता है तो ये व्यक्ति के कार्य करने की क्षमता की सकारात्मक रूप से प्रभावित करतेहैं।

7. व्यक्तित्व निर्माण में योग

8. पशु प्रवृत्तियों का मानवीकरण

9. आन्तरिक संन्तोष प्रदान करना

10. सांस्कृतिक संचार

शिल्स की पुस्तक 'The Study of Primary Group' है।

स्टीवर्ट एवं ग्लिन की पुस्तक 'Introduction to Sociology' है।

स्टीवर्ट एवं ग्लिन का मत है कि प्राथमिक समूह वास्तव में भावात्मक मानसिक सुरक्षा के स्रोत हैं, वे एक बालक के लिए मानवीय अन्तःक्रिया को सिखाने का स्कूल तथा कार्यों के आदान–प्रदान व साथ–साथ खेलने का स्थल है।

नोट– स्टीवर्ट एवं ग्लिन ने तीन प्रमुख बातें और भी कही है

1– बडे या द्वितीयक समूह के अस्तित्व के लिए प्राथमिक समूह का होना अनिवार्य है।

2– प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह को इन्होंने आदर्श प्रारुप माना है।

3– प्राथमिक समूहों का निर्माण द्वितीयक समूह से होता है।

कूले ने कहा है कि प्राथमिक समूह दो अर्थों में महत्वपूर्ण है–

1. ये समूह व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति एवं आदर्शों का निर्माण करने में आधारभूत हैं।

2. ये सामाजिक नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

प्राथमिक समूह के अप्रकार्य– प्राथमिक समूह के कुछ अप्रकार्य या दोष भी है। कोजर एवं रोजनवर्ग ने बताया है कि ये समूह भाई–भतीजावाद, पक्षपात, एवं धन के एकत्रीकरण के लिए उत्तरदायी है। मित्र, नातेदार जैसे भाव भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है अयोग्य व्यक्तियों को उच्च पद प्राप्त होते हैं।

कूले के प्राथमिक समूह की अवधारणा के तीन आलोचक हैं–एल्स वर्थ फेरिस, 2. पी.एच. लैंडिस 3. बर्जेल।

रॉल्फ डेहरेन डॉर्फ– इनकी पुस्तक 'Class and Class Confeict (1958) है। इस पुस्तक में मार्क्स के विचारों की समीक्षा की गयी है तथा यह मार्क्स के वर्ग संघ की नयी व्याख्या करती

हित समूह (Intrest group) हितसमूह की अवधारणा सर्वप्रथम राबर्ट मिचेल्स ने (1911) में अपनी पुस्तक 'Social Democreatic party' में दी थी। मिचेल्स ने ही अल्पतंत्र का लौह सिद्धान्त भी प्रस्तुत किया।

हित समूह वह समूह होता है जो अपने सदस्यों के हितों के प्रति सदैव सचेत रहता है जैसे व्यापार संघ, बैंककर्मी संघ आदि ।

अर्द्ध या आभासी प्राथमिक समूह– इस समूह का उल्लेख कूले ने किया है। ये प्राथमिक समूह नहीं होते लेकिन इनमें प्राथमिक समूह की विशेषताओं के होने का आभास मिलता है इसलिए इन्हें अर्द्ध प्राथमिक समूह कहा जाता है।

सदस्यों की संख्या एवं सम्बन्धों की घनिष्ठता के आधार पर ये प्राथमिक समूहों के बिलकुल समान है। जब कि संगठन एवं उद्देश्यों के आधार पर ये प्राथमिक समूहों से बिल्कुल भिन्न प्रतीत होते हैं। इनका निर्माण जान बूझकर किया जाता है तथ आमने–सामने के सम्बन्ध भी होते हैं। कूले का मत है कि प्राथमिक समूह घनिष्ठ आमने–सामने के सम्बन्धों द्वारा संगठित वे समूह हैं जो अपनी संगठन सम्बन्धित विशेषताओं और उद्देश्य के कारण सीमित आकार के होते हैं। उदाहरण– जाति संघ, सामाजिक वर्ग, वर्तमान क्लब, स्काउट ग्रुप एवं ग्रामीण मनोरंजन केन्द्र।

आभासी प्राथमिक समूह एवं प्राथमिक समूह में अन्तर

प्राथमिक समूह	अर्द्धप्राथमिक समूह
1– सभी क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।	कुछ विशेष प्रकार के कार्य किये जाते हैं।
2– एकीकरण की भावना	निश्चित समय एवं स्थान में सहयोग।
3– अपेक्षाकृत छोटे	प्राथमिक समूहों एवं द्वितीयक समूह के मध्य के होते हैं।
4– स्वतः विकास	आवश्यकतानुसार निर्माण
5– अधिक स्थायी	कम स्थायी

अन्तः क्रियात्मक समूह– इसका उल्लेख टर्नर ने किया है। मर्टन के प्रकार्यात्मक समूह के वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुये टर्नर ने इसकी चर्चा की है ये वे समूह हैं जो सम्पूर्ण सामाजिक पर्यावरण के भाग मात्र हैं। इनके साथ में व्यक्ति सामाजिक सम्बन्ध मात्र रखता है। अन्तःक्रियात्मक समूह वह समूह है जो न तो तुलनात्मक है तथा न ही आदर्शात्मक। जैसे– फिल्म अभिनेता, अभिनेत्री किसी राजनेता के साथ अन्तःक्रिया करता है।

राबर्ट वीर स्टीड– अन्तःसमूह के दो महत्वपूर्ण तथ्य इन्होंने बताया है–

1– अन्तः समूह वाह्य समूह को दकियानूस और पिछड़ा समझता है।

2– वाह्य समूह के काल्पनिक एवं वास्तविक खतरों में अन्तः समूह की एकता और सुदृढ़ता बढ़ती है।

वाई.वी. दामले– इन्होंने जातिय गतिशीलता को सन्दर्भ समूह सिद्धान्त के आधार पर समझाने का प्रयास किया है।

भारत में सन्दर्भ समूह की अवधारणा का प्रयोग करने वालों में वाई. वी. दामले और ओविन लिंच प्रमुख हैं।

दबाव समूह या प्रभावी समूह (Pressure Group)– इस अवधारणा का प्रयोग पीटर आडगार्ड ने किया है। आडगार्ड के अनुसार दबाव समूह एक ऐसा औपचारिक संगठन है जिसमें एक अथवा अधिक सामान्य उद्देश्य अथवा हित होते हैं और वे शासन को इसलिए प्रभावित करने का

प्रयास करते हैं कि वे अपने हितों की रक्षा का प्रयास करते हैं कि वे अपने हितों की रक्षा या वृद्धि कर सके। ये समूह प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते हैं।

फाइनर का मत है कि दबाव समूह एक अज्ञात सम्राट है।

सेलिन का मत है कि दबाव समूह एक अनौपचारिक सरकार है ।

किन का मत है कि दबाव समूह न दिखाई देने वाली सरकार है।

चार प्रकार के दबाव समूह निम्न है

1– **विशेष हित समूह**– महिला संगठन, श्रमिक संगठन

2– **धार्मिक या साम्प्रदायिक समूह**– सिक्ख संगठन, इसाई संगठन तथा मुस्लिम संगठन।

3– **व्यावसायिक हित समूह**– सरकारी कर्मचारी संघ, डाक्टर्स संघ, शिक्षक संघ तथा वकील समूह।

4– **जति या प्रजाति पर आधारित संगठन**– विभिन्न जातियों के संगठन।

रजनी कोठारी ने भारत के सन्दर्भ में जाति को दबाव समूह की संज्ञा दी है।

राबर्ट डॉल ने सन्दर्भ समूह का बहुलवादी सिद्धान्त दिया।

होमांस ने अपने अध्ययन के समय दो प्रकार के दबाव समूह की चर्चा भी की है–

1– लघु समूह – यह परिवर्तनशील है तथा सापेक्ष समूह है।

2– वृहद समूह।

समूह गतिकी– लघु समूहों में नेतृत्व या सम्बन्धों की परिवर्तनशीलता के अध्ययन व विश्लेषण को समूह गतिकी कहते हैं।

वृहद समूह अधिकत द्वितीयक समूह होते हैं।

चार्ल्स कूले ने परिवार को समाज का आधार और कीडा समूह को भावी नागरिक का सर्वोत्तम विद्यालय माना है।

द्वितीयक समूह– कूले ने प्राथमिक समूह की अवधारणा का उल्लेख किया है न कि द्वितीयक समूह की प्राथमिक समूह जब लोकप्रिय हो गया तो विद्वानों ने इसके प्रतिकूल सामाजिक व्यवस्था की बात कही जो द्वितीयक समूह के रुप में प्रचलित हुआ जो समूह प्राथमिक नहीं है, द्वितीयक समूह का नाम दिया।

किंग्सले डेविस एवं वीर स्टीड ने द्वितीयक समूह की परिभाषा को सकारात्मक रूप से स्पष्ट करने की अपेक्षा नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया है इसलिए वे कहते हैं कि द्वितीयक समूह वे सभी समूह है जो प्राथमिक नहीं हैं।

वीर स्टीड ने कहा है कि 'वे सभी समूह द्वितीयक है जो प्राथमिक नहीं हैं।'

किंग्सले डेविस ने कहा है कि– द्वितीयक समूह उस सबका विरोधी रुप है, जो प्राथमिक समूहों के बारे में कहा गया है।

द्वितीयक समूह में स्तरीकरण की एक सुस्पष्ट परिभाषा होती है जिसके अनुसार प्रस्थितियां उच्च व निम्न सोपानों के क्रम में विभाजित होती हैं।

गौण समूह का आधुनिक समाज में विशिष्ट महत्व है इस समूह का आकार बडा होता है जैसेनगर, राष्ट्र, राजनीतिक दल, निगम, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी संघ, श्रमिक संघ, स्कूल, कालेज, मजदूर यूनियन, आदि।

डेविस एवं होमांस ने विस्तृत रुप से द्वितीयक समूह को व्याख्यायित किया है।

परिभाषायें–

1– **फेयर चाइल्ड के अनुसार** समूह का वह रुप जो अपने सामाजिक सम्पर्क और औपचारिक संगठन की मात्रा में प्राथमिक समूहों की घनिष्ठता से भिन्न हो, द्वितीयक समूह कहलाता है।

2– **आगबर्न एवं निमकाफ के अनुसार**– द्वितीयक समूह उन्हें कहते हैं जिनमें प्राप्त अनुभवों में घनिष्ठता का अभाव होता है। आकस्मिक सम्पर्क ही द्वितीयक समूह का सार तत्व है।

3– **लुण्डवर्ग के अनुसार**– वे समूह द्वितीयक समूह हैं जिनमें सदस्यों के सम्बन्ध अवैयक्तिक हितप्रधान एवं व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित होते हैं।

4– **मजुमदार एवं मदान के अनुसार**– जब सदस्यों के सम्बन्धों में सम्मुखी सम्पर्क नहीं होते तो गौण समूह होता है।

5– **कूले के अनुसार**– ये वे समूह हैं जिनमें घनिष्ठता प्राथमिक तथा अर्द्ध प्राथमिक विशेषताओं का पूर्ण अभाव रहता है। द्वितीयक समूहों में घनिष्ठता का अभाव और औपचारिकता होने के कारण ही एच.एच. लैंडिस ने इन्हें शीत जगत कहा है।

ऐरिक फाम ने अपनी पुस्तक में व्यक्ति की घुटन, तनावों एवं कुण्ठाओं का चित्रण किया है। द्वितीयक समूह वे समूह हैं जिनमें सदस्यों के बीच अवैयक्तिक सम्बन्ध पाये जाते हैं व्यक्तिगत रुप में सदस्यों को जानना यहां आवश्यक नहीं है। ऐसे समूहों में शारीरिक निकटता भी अनिवार्य नहीं है। ये सम्बन्ध अनौपचारिक प्रकार के जीवन के किसी एक पक्ष से सम्बन्धित अस्थाई प्रकार के, विशेष हितों पर आधारित और हस्तान्तरित होते हैं। यहां पर एक व्यक्ति के स्थान पर दूसरे को हस्तान्तरण सुगमता से किया जा सकता है।

स्टीवन कोल– द्वितीयक समूह वे समूह है जो बड़े होते है तथा जिनमें अन्तःक्रिया व्यक्तिगत रूप से नहीं होती है।

एन्थानी गिडेन्स– इन्होंने ने लिखा है कि द्वितीयक समूह व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसके अन्तर्गत लोग नियमित रूप से मिलते हैं लेकिन उनके सम्बन्ध मुख्य रुप से अवैयक्तिक होते हैं। व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध गाढे नहीं होते हैं लोग सामान्यतः एक दूसरे के निकट तभी आते हैं जब उनके सामने कोई निश्चित व्यावहारिक उद्देश्य होता है।

द्वितीयक समूहों की विशेषताएं–

1. योजनाबद्ध रुप से निर्माण
2. औपचारिक सम्बन्ध (Formal Relation)
3. अवैयक्तिक सम्बन्ध (Impersonal Relation)
4. बड़ा आकार (Large Size)
5. ऐच्छिक सदस्यता
6. क्रियाशील एवं निष्कीय दोनों प्रकार के सदस्य
7. परोक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध (Indirect Relation)
8. प्रतिस्पर्द्धा की भावना
9. स्थायित्व की कमी
10. औपचारिक संगठन
11. सदस्यता की सीमित अवधि
12. सीमित स्वार्थों की पूर्ति
13. व्यक्ति की प्रस्थिति उसकी भूमिका पर निर्भर करती है।
14. धेप या लक्ष्य अभिमुखी
15. शारीरिक निकटता का अभाव
16. व्यक्ति के जीवन में किसी पहलू विशेष से सम्बन्धित
17. सदस्यों के सीमित उत्तरदायित्व
18. संविदात्मक सम्बन्ध
19. व्यक्ति के बजाए प्रस्थिति का महत्व
20. सम्बन्धों की घनिष्ठता का अभाव
21. छुओं और जाओ के सम्बन्ध
22. विशिष्ट आवश्यकताओं के आधारों पर निर्माण
23. सीमित उत्तरदायित्व।

पारसन्स के व्यवहार प्रतिमान (Pattern Variables of Parsons)– पारसन्स ने सामाजिक व्यवहार व कार्य के सम्बन्ध में पांच व्यवहार प्रतिमान प्रस्तुत किये हैं। प्राथमिक व द्वितीयक समूहों के सदस्यों के सम्बन्धों का विश्लेषण इनमें से दो व्यवहार प्रतिमानों के आधार पर किया जा सकता है। ये निम्न है–

1– स्नेहपूर्ण – स्नेह तटस्थ (Affectivity Affectivity neutrolity)

2– एक पक्षीय –बहु पक्षीय (Specificity&Diffusiveness)

बृहद समाज (Mass Society)– वृहद समाज नगरों के विकास व तकनीकि साधनों की वृद्धि के कारण महानगरों में देखने को मिलता है। वृहद समाज द्वितीयक समूहों के योग से बनते है जब यन्त्रीकरण की अधिकता व जनसंख्या में वृद्धि हो जाती है तो वृहद समाज का रुप स्पष्ट होने लगता है।

वृहद समाज में सम्बन्ध औपचारिक होते हैं तथा व्यक्तियों के बीच अपरिचय बोध (Anonymity) बढ़ता चला जाता है। उसके बीच पृथककरण हो जाता है जिससे व्यक्ति समाज से दूर होता चला जाता है तथा विचारों एवं कुण्ठाओं की अधिकता से अनेक बार तो वह स्वयं से परायापन अनुभव करने लगता है।

डेविड रीजमैन ने अपनी पुस्तक (Lonelty croud) में ऐसी ही विराम स्थिति की चर्चा की है।

द्वितीयक समूहों का महत्व–

1. विशेषीकरण को प्रोत्साहन
2. दक्षता
3. अवसर के माध्यम
4. विस्तृत दृष्टिकोण
5. सामाजिक परिवर्तन द्वारा प्रगति
6. जागरुकता में वृद्धि
7. आवश्यकताओं की पूर्ति
8. श्रम को प्रोत्साहन
9. सामाजिक नियन्त्रण।

कूले जिन्हें प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह के नाम से सम्बोधित किया है। सोरोकिन ने उन्हें क्रमशः सुपरचित (Formilistic) और संविदात्मक (Contractual) समूह कहा है।

प्राथमिक समूह एवं द्वितीयक समूह में अन्तर

1– आकार छोटा होता है।
2– कम सदस्या संख्या
3– शारीरिक समियता
4– स्थायी सम्बन्ध
5– सम्बन्धों में निरन्तरता
6– सभी लोगों के उद्देश्य एक ही होते हैं
7– सम्बन्ध स्वयं में साध्य होते हैं।
8– सम्बन्धों में घनिष्ठता एवं आत्मीयता पायी जाती है।
9– ये सरल ग्रामीण एवं आदिम समाजों में अधिक पाये जाते हैं।
10– इनकी सदस्यता अनिवार्य है।
11– सम्बन्ध अनौपचारिक होते हैं।
12– सम्बन्ध स्वतः निर्मित होते हैं
13– सम्बन्ध सर्वागींण होते है
14– सम्बन्ध वैयक्तिक होते है
15– नियन्त्रण प्राथमिक एवं अनौपचारिक साधनों द्वारा होता है।
16– हम की भावना
17– आन्तरिक सम्बन्ध होते हैं, दिखावे के नहीं
18– इनका मानव के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
19– ये व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करते हैं
20– आमने–सामने के सम्बन्ध होते हैं
21 – इनका आधार नैतिकता तथा परम्परागत नियम है
22– ये सार्वभौमिक है
23 – इन समूहों में व्यक्ति सरलता से अनुकूलन कर लेता है

24– एक व्यक्ति बाल्यकाल में ही इनके सम्बन्ध में आ जाता है और ये उसके समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं
25– इनकी संख्या बहुत कम होती है
26– प्राथमिक समूह में कोई द्वितीयक समूह नहीं होता है
27– सदस्यों के बीच समानता के आधार पर सम्बन्ध पाये जाते है
28– ये सामूहिकता को जन्म देते हैं
29– प्राथमिक समूह अतिप्राचीन है
30– इनमें व्यक्ति अपना व्यक्तित्व समूह के साथ घुला–मिला देता है।
31– इनका कार्य क्षेत्र सीमित होता है
32– उदाहरण– परिवार, पडोस, मित्रमण्डली, कीडा समूह, गपशप समूह, गैंग, जनजाति, लघु समुदाय।
33– उद्देश्य दूरगामी होते हैं।

द्वितीयक समूह

1. आकार बड़ा होता है
2. अधिक सदस्य संख्या
3. शारीरिक समीयता आवश्यक नहीं
4. अस्थायी सम्बन्ध
5. निरन्तरता नही पायी जाती है
6. सभी अपने–अपने हितों में रुचि रखते हैं
7. सम्बन्ध स्वयं साध्य नहीं होते हैं
8. इनमें घनिष्ठता एवं आत्मीयता का अभाव होता है
9. ये जटिल, नगरीय एवं आधुनिक समाजों की विशेषता है
10. इनकी सदस्यता अनिवार्य नहीं हैं
11. औपचारिक होते हैं
12. सम्बन्ध जानबूझकर बनाये जाते है
13. सम्बन्ध विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर बनाये जाते हैं
14. सम्बन्ध अवैयक्तिक होते हैं
15. नियंत्रण के द्वितीयक एवं औपचारिक साधन काम में लिये जाते है
16. हम की भावना का अभाव
17. सम्बन्ध वाहय एवं दिखावे के होते हैं
18. व्यक्तित्व निर्माण में इनकी भूमिका अपेक्षतया कम महत्वपूर्ण है
19. ये व्यक्ति को सम्पूर्ण जीवन की अपेक्षा एक पक्ष विशेष को ही प्रभावित करते हैं
20. अप्रत्यक्ष सम्बन्ध
21. इनका आधार कानून एवं संविधान है
22. ये सार्वभौमिक नहीं है
23. इनमें अनुकूलन करने में व्यक्ति को कठिनाई महसूस होती है
24. इनके सम्पर्क में व्यक्ति बाल्यकाल के बाद आता है और समाजीकरण में इनकी भूमिका अपेक्षतया कम महत्वपूर्ण होती है
25. इनकी संख्या अधिक होती है
26. एक द्वितीयक समूह में कई प्राथमिक समूह हो सकते हैं

27. सम्बन्ध असमान होते हैं क्योंकि सदस्यों के पद व भूमिका में अन्तर पाया जाता है
28. ये व्यक्तिवाद को जन्म देते हैं।
29. ये आधुनिक औद्योगिक युग की देन है
30. इनमें कार्यक्षेत्र असीमित होता है
31. उदाहरण– सेना, राजनीतिक दल, बडे व्यापारिक संगठन, मजदूर संघ, विश्वविद्यालय, कालेज, राष्ट्र आदि।
32. अपेक्षाकृत शीघ्र हासिल करने वाले उद्देश्य।
स्टीवर्ट एवं ग्लिन ने प्राथमिक एवं द्वितीयक समूहों के भेद के बारे में दो महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है–
1– प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह केवल आदर्श प्रारुप (प्कमंस ज्लचमे) है जिनका उद्देश्य अध्ययन और विश्लेषण को सुगम बनाना है। वास्तविक जीवन में अधिकांश सम्बन्ध न तो प्राथमिक होते हैं और न द्वितीयक ही। वरन् उनमें दोनों की ही विशेषताओं का समावेश होता है।

2– प्राथमिक समूहों का निर्माण द्वितीयक समूहों में होता है सेना, विश्वविद्यालय, फैक्ट्री एवं उद्योग द्वितीयक समूह हैं, जिनमें अनेक छोटे–छोटे प्राथमिक समूह, मित्र मण्डली, व गपशप समूहों के रुप में देखा जा सकता है।

आगबर्न एवं निमकाफ का मत है कि आकस्मिक सम्पर्क द्वितीय समूह का सार तत्व है। प्राथमिक समूह सम्बन्ध उन्मुख होते हैं, द्वितीयक समूह उद्देश्य उन्मुख होते है।

कूले का मत है कि जिन समाजों में द्वितीयक समूह अधिक होते हैं उन समाजों में विचलन शीघ्रता से होता है। प्राथमिक समूह समाज के पालना धर हैं अर्थात् समूह विचलन को रोकने में सहायक है।

कूले का मत है कि आधुनिक समाज में औपचारिकता में वृद्धि होती है क्योंकि द्वितीयक समूहों में वृद्धो होती है।

कूले ने द्वितीयक समूह की वृद्धि को औपचारिकतावाद की संज्ञा दी है।

फेरिस का मत है कि समाजीकरण की प्रक्रिया बिना द्वितीयक समूह के पूरी नहीं हो सकती है।

लैंडिस का मत है कि प्राथमिक समूह एवं द्वितीयक समूह में भिन्नता के बाद भी यह दोनों एक दूसरे के पूरक है।

बर्जेल ने द्वितीयक समूह की जगह गैर प्राथमिक समूह कहा है।

गिडिंग्स ने कहा है कि द्वितीयक समूह की तमाम गतिविधियां नियमों पर आधारित होती है। छोटे समूह से विशाल संघ में परिवर्तन से प्रस्थिति से अनुबन्ध की ओर प्रगति होती है। प्रस्थिति से अनुबन्ध की ओर जाने का प्रयोग हेनरी मेन ने अपनी पुस्तक Ancient law में किया था।

बैंक वायरिंग ग्रुप – यह चार व्यक्तियों का एक समूह है जो वेस्टर्न इलेक्ट्रीट कम्पनी शिकागो के हार्थोन प्लाण्ट के एक कमरे में केन्द्रिय कार्यालय के टेलीफोन उपकरणों के स्विचों को जोड़ने के कार्य में लगाया गया था। यह एक लघु समूह है जिसका अध्ययन एक दल ने किया था।

इस कार्य को तीन भागों में विभाजित किया गया था–

1– छोरों (Terminal) के बैंकों में तारों का जोडना
2– जुडे हुए तारों में टांके लगाना
3– यह जांच करना कि तार जोडने और टांके लगाने का कार्य ठीक ढंग से हुआ या नहीं
सारा समूह चार–चार लोगों की तीन टोलियों में बांटा गया। प्रत्येक में तीन तार जोडने वाले और एक टांके लगाने वाला रखा गया। दो निरीक्षक भी थे। कुल चौदह आदमी थे। प्रत्येक निरीक्षक के जिम्मे एक–एक टोली थी और तीसरी टोली का दोनों मिलकर काम देखते थे।
चौदह सदस्यों के समूह में एक दूसरे से उलझें हुए तीन उप समूह भी थे। ये सदस्य एक दूसरे के साथ कई तरह से अन्तः क्रियारत होते थे। वायरमैन कुछ समय के लिए सोल्डर का कार्य करने लगते थे और सोल्डर वायरमेन का कार्य।

मण्डली अधिकतर बिंगिग नाम का खेल खेलते थे जिसमें एक आदमी दूसरे की मांसपेशियों में मुक्के मारता और दूसरा भी मुक्के मारता।

समूह में जो भी व्यक्ति निश्चित दर से काम करता तो उसे चिखलई कहते थे। वह जो निश्चित काम की दर से अधिक काम करता था उसे रेट बस्टर कहा जाता था। वह जो प्रबन्धकों के प्रतिनिधि से किसी की चुगली करता था तो उसे कहा जाता था।

सामाजिक परिवर्तन
(Social Change)

फिचर के अनुसार– परिवर्तन पहले की अवस्था या अस्तित्व के प्रकार में अन्तर है। परिवर्तन का सम्बन्ध प्रमुख रूप से तीन चीजों से है– 1. वस्तु, 2. समय, 3. मिन्नता।

परिवर्तन उद्विकास एवं प्रगति से भिन्न अर्थ वाला है। पहली बार सन् 1522 में आगबर्न ने अपनी पुस्तक सामाजिक परिवर्तन में परिवर्तन, उद्विकास एवं प्रगति में अन्तर स्पष्ट किया है।

परिवर्तन से सम्बन्धी कुछ विचारकों के विचार–

1– कवि लार्ड टेनिसन– प्राचीन कम में नए को स्थान देने के लिए होता है।

2– ग्रीन–सामाजिक परिवर्तन इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक समाज अन्तुचन के गुजर रहा है। कुछ व्यक्ति एक सम्पूर्ण सन्तुलन की इच्छा रख सकते है कुछ प्रयास भी करते हैं।

3. मैकाइवर–समाज परिवर्तनशील एवं वात्यात्मक है।

4– हेरेक्लिकटस–सभी वस्तुयें परिवर्तन के बहाव में है।

प्रत्येक व्यक्ति के समाज में निश्चित रूप से एक अपना पद होता है कि जाता है तथा उस पद के अनुरूप कार्य के क्रियान्वयन को उसकी भूमिका कहते है की संरचना एवं संगठन का निर्माण विभिन्न व्यक्तियों द्वारा धारण की गई भूमिकाओं के व्यवस्थित संयोग से होता हैं।

जांनसन के अनुसार सामाजिक पद के दो तत्व होते हैं– अधिकार (Right) एवं कर्तव्यवध्यता (Obligation)।

यानी सामाजिक पद व्यक्तियों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का एक जटिल समग्र है। जानमन के अनुसार प्रत्येक सामाजिक पद एक सामाजिक प्रस्थिति भूमिका है।

राल्प लिंटन ने अपनी पुस्तक The Study of Man 1508 में प्रस्थिति और पद दोनों को पर्यायावाची माना है।

रावर्ट वीर स्टीड के अनुसार समाज समाजिक प्रस्थितियों का जाल इसी तरह प्रस्थिति के अनुरुप भूमिका के निर्वाहन की स्थिति को प्रस्थिति एवं भूमिका संतुलन कहते है। राल्फ लिटन ऐसे पटले समाजशास्त्री है जिन्होंने प्रस्थिति एवं भूमिगत की विस्तृत व्याख्या की है।

अरस्तू अपनी पुस्तक Politics में इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया है।

परिभाषाएं–

राल्फलिंटन "सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को एक समय विशेष में जो स्थान प्राप्त होता है उसी को उस व्यक्ति की प्रस्थिति कहा जाता है।''

इलियट एवं मेरिट,''प्रस्थिति व्यक्ति का वह पद है जिसे व्यक्ति किसी समूह में अपने लिंग, आयु, परिवार, वर्ग, व्यवसाय, विवाह, अथवा प्रयत्नो आदि के कारण प्राप्त करता है।' अगवर्न एवं निमकाफ प्रस्थिति की सबसे सरल परिभाषा यह है कि यह संग्रह व्यक्ति के पद का प्रतिनिधित्व करती है।''

वीरस्टीड "सानान्यतः एक प्रस्थिति समाज अथवा एक समूह में एक पद है।''

डेविस, ''प्रस्थिति किसी भी सामान्य संस्थापक व्यवस्था में किसी पद की सूचना है ऐसा पद जो समाज द्वारा स्वीकृत है और जिसका निर्धारण स्वतः ही हुआ है तथा जो जन रीतियों तथा रूढ़ियों से सम्बद्ध है।''

जानलेवी, ''किसी सामाजिक संरचना में व्यक्ति अथवा ही प्रस्थिति है।''

प्रस्थिति व्यक्ति की समूह अथवा समाज में पद की सूचक है यह पद व्यक्ति को समाज द्वारा स्वतः ही प्रदान किया जा सकता है या व्यक्ति अपने गुणो एवं योग्यता के आधार पर प्राप्त कर सकता है।

प्रस्थितियों का संगठन

समाज में कोई भी प्रस्थिति अकेली नहीं हो सकती वरन वह अन्य प्रस्थितियों से सम्बन्धित एवं प्रभावित होती है समाज में व्यक्ति का मूल्यांकन उसके द्वारा विभिन्न प्रस्थितियों को धारण करने एवं उसके द्वारा निभायी जाने वाली भूमिकाओं के आधार पर किया जाता है। प्रस्थिति के संगठन को समझने के लिए किग्सले डेविस ने कुछ अवधारणाओं का उल्लेख किया है– 1. पदानुशण, 2. प्रस्थिति शंकुल, 3. स्तर या स्तृत

1. पदानुक्रमण– डेविस के अनुसार सामाजिक प्रस्थितियों का सम्बन्ध जनरीतियों एवं रूढ़ियों से होता है। दूसरी ओर इन प्रस्थितियों का सम्बन्ध विशिष्ट सामाजिक संस्थाओ समितियों एवं संगठनों से भी होता है जिनका दायरा सीमित होता है ऐसी प्रस्थितियों के लिए आफिस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

आफिस ऐसी प्रस्थिति है जो प्रदत्त न होकर अर्जित होती है बैक आफ बडौदा का मैनेजर भारत का महालेखा परीक्षक तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय का कुलपति आदि सभी पद आफिस है।

इस प्रकार आफिस किसी औपचारिक संगठन में जान बूझकर बनाया गया पद है जिस पर सीमित या विशेष नियमों का अधिकार तथा नियंत्रण होता है और जो सामान्यतः अर्जित किया. जाता है। सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचे में एक आफिस एक विशेष प्रस्थिति का सूचक है, जबकि प्रस्थिति सामान्य स्थिति का सूचक है। एक आफिस पर होने से एक व्यक्ति को एक प्रस्थिति भी प्राप्त होती है किन्तु प्रत्येक प्रस्थिति आफिस प्रदान नहीं करती है। यानी प्रत्येक प्रस्थिति आफिस नही हो सकती है किन्तु प्रत्येक आफिस प्रस्थिति आवश्य होती है।

प्रस्थिति से तात्पर्य उस पद से है जो कि सामान्य संस्थात्मक व्यवस्था में समूचे समाज द्वारा स्वीकृत व समर्पित है तथा जिसका जन्म स्वतः ही हुआ है न कि प्रयास पूर्वक बनाया गया है। इसके विपरीत पदानुशण का तात्पर्य उस पद से है जो सीमित नियतो के द्वारा किसी सीमित समूह के लिए ही लागू होता हो तथा जिस पद को सामान्यतः अर्जित करके पाया जाता हो न कि जन्म के द्वारा ये पद विशेष नियमों के द्वारा संचालित होते है एक पद प्रस्थिति एवं आफिस दोनो ही हो सकता है। जैसे– इलाहाबाद, वि.वि. के समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष का पद आफिस एवं प्रस्थिति दोनो ही है।

प्रस्थिति की अवधारण किसी विशिष्ट पद के लिए प्रयोग का संकेत न देकर सामान्य पद में आता है जैसे प्राध्यापक, एक प्रस्थिति है किन्तु इला.वि.वि. में समाजशास्त्र के प्रोफेसर पदानुशण है।

एक विशेष प्रकार की प्रस्थिति ही एक पदानुशंग प्राप्त करने में सहायक हो सकती है इसी तरह एक विशेष पद उसकी प्रस्थिति की निर्धारित करने में सहायता करता है।

2. प्रस्थितिशंकुल– डेविस के अनुसार एक व्यक्ति केवल एक नहीं अपितु अनेक प्रस्थितियां एवं आफिस के योग को प्रस्थिति शंकुल कहते है। इस प्रकार प्रस्थिति शंकुल अनेक प्रस्थितियों एवं आफिस का एक गुच्छा है। जिस पर किसी व्यक्ति का अधिकार होता है। जैसे– रामत्रप्रस्थापक् व्यवसायिक मकान मालिक क्लब का सदस्य कोचिग डारेक्टर सामाजिक कार्यकर्ता। उपर्युक्त प्रस्थितियों के मिले जुले योग को ैजंजपवद कहते है। इस प्रकार स्टेशन विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त प्रस्थितियां एवं पदानुशंगों का योग है।

3. स्तर या स्तृत स्तर का सम्बन्ध एक ही प्रकार के प्रस्थिति संकुल को प्राप्त करने वाले विभिन्न लोगो से है। स्तर या स्टेशन का तात्पर्य एक समाज में सामान्य प्रस्थिति संकुल अर्थात सामान्य प्रस्थितियों तथा पदो की सहायता वाले व्यक्तियों के जन समूह से है। दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि एक प्रकार की प्रस्थिति संकुल को धारण करने वाले सभी व्यक्ति मिलकर एक स्तर का निर्माण करते है।

समी क्लर्क अध्यापक ब्राम्हण क्षत्रिय हरिजन प्रजापति एवं श्रमिक आदि मिलकर अलग–अलग स्तरो का निर्माण करते है। यह समाज में स्तरीकरण को जन्म देता है एक स्तर के लोग दूसरे स्तर के लोगों से अपनी रक्षा के लिए नियम संगठन बनाते है उनमें एकता पायी जाती है जिसे प्रस्थिति समूह दृढ़ता ैजंजपवद ैवसपकपजल कहते है।

डेविस के अनुसार जो लोग सामान्यतः एक ही स्टेशन के सदस्य है वे सभी एक ही स्तर को निर्माण कहते है। इस प्रकार प्रायः प्रत्येक समाज कुछ स्तरो में विभाजित होता है। एक स्तर केहैं।

लोग के एक से स्वार्थ एक सी समस्याएं होती है भारत में विभिन्न जातियां अलग–अलग स्तरो के निर्माण के आधार रही है।

प्रस्थिति और भूमिका के आवश्यक तत्व–

i. प्रत्येक समाज में एक ही प्रस्थिति और उससे सम्बन्धित भूमिका का निर्धारण उस समाज के सांस्कृतिक कारणों एवं मूल्यों द्वारा होता है।

ii. प्रस्थिति एवं भूमिका की अवधारणा को दूसरे व्यक्तियों के संन्दर्भ में ही समझा जा सकता है एक व्यक्ति की प्रस्थिति एवं भूमिका का सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों की प्रस्थितियां एवं भूमिकाओं से होता है। जो उनसे प्रभावित भी होते है। जैसे– प्राचार्य की प्रस्थिति एवं भूमिका को प्राध्यापकों एवं छात्रों की प्रस्थितियां एवं भूमिकाओं के संन्दर्भ में ही समझा जा सकता है।

iii. एक ही प्रस्थिति एवं भूमिका का निर्वाह प्रथक–प्रथक व्यक्तियों द्वारा अपने–अपने ढंग से किया जाता है। प्रधानमंत्री के रूप में पं० जवाहरलाल नेहरू शास्त्री एवं मोरारी जी तथा इन्दिरा गांधी द्वारा अलग–अलग ढंग से भूमिकाओ का निर्वाहन किया गया।

iv. प्रत्येक प्रस्थिति एवं भूमिका व्यक्ति के सम्पूर्ण सामाजिक पद का केवल एक भाग ही होता है। व्यक्ति समाज में एक साथ अनेक प्रस्थितियां प्राप्त करता है और विभिन्न अवसरों पर अनेक अनुरूप ही अपनी भूमिका निभाता है जैसे– एक व्यक्ति डाक्टर पिता, पति एवं पुत्र के रूप में विभिन्न प्रस्थितियां धारण करता है और उसका निर्वाह अवसर आने पर उन्ही के अनुरूप करता है।

v. प्रस्थिति एवं भूमिका के आधार पर सम्पूर्ण समाज विभिन्न प्रस्थिति समूहों में विभाजित होता है इन प्रस्थिति समूहो के आधार पर हम किसी समाज की विशेषताओं स्वार्थ आदि होते है। अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए कभी–कभी एक ही प्रस्थिति समूह में संगठन भी पाया जाता है। उदाहरण – पूजीपति एवं श्रमिक प्रस्थिति में अपने–अपने संगठन पाये जाते है।

vi. समाज में कुछ प्रस्थितियां प्रदत्त होती है जो कि एक व्यक्ति को समाज में स्वयं प्रदान करता है और दूसरी ओर कुछ प्रस्थितियां व्यक्ति अपनी योग्यता एवं प्रयत्नों के द्वारा अर्जित करता है।

vii. समाज में उच्च एवं निम्न प्रस्थितियों के कारण ही सामाजिक संस्तरण तथा विभेदीकरण पैदा होता है जो उदग्र या क्षैतिज रुप में हो सकता है।

viii. एक व्यक्ति एक ही समय में कई प्रस्थितियों को धारण करता है किन्तु वह सभी का निर्वाह सामान्य योग्यता एवं कुशलता के साथ नही कर पाता है। एक व्यक्ति अच्छा खिलाडी हो सकता है किन्तु वह एक असफल व्यापारी और लापरवाह पत्ते भी हो सकता है। एक व्यक्ति समाज की प्रत्यासाओं के अनुसार जितने उचित ढंग से अपनी भूमिकाएं निभाता है उसकी समाज में उतने ही अनुपात में प्रतिष्ठा होती है।

ix. प्रत्येक प्रस्थिति के साथ एक विशेष मूल्य एवं प्रतिष्ठा जुडी होती है जो संस्कृति द्वारा निर्धारित होती है जैस–पश्चिमी देशो में भारत की अपेक्षा स्त्री की प्रतिष्ठा ऊँची है।

सत्ता प्रधिकार एवं शक्ति–

शक्ति का अर्थ एक व्यक्ति द्वारा अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए दूसरो के व्यवहार पर नियंत्रण रखने की क्षमता से है। शक्ति का सम्बन्ध किसी प्रस्थिति या आफिस से न हो कर व्यक्ति से होता है। शक्ति को जब संस्थात्मक स्वीकृत प्राप्त हो जाती है अर्थात जब शक्ति को कानून का जामा पहना दिया जाता है तो वह सत्ता कहलाती है। थानेदार की चोर डाकुओ का प्रताडित करने की शक्ति सत्ता है क्योकि यह सत्ता उसे कानून द्वारा प्राप्त होती है। शक्ति अन्य व्यक्तियों पर प्रभाव डालने का वह व्यक्तिगत गुण है जो कि किसी नियम अथवा कानून के आधार पर प्राप्त नही होता है। प्रायः सत्ता का सम्बन्ध प्रतिष्ठा व शक्ति का सम्बन्ध सम्मान से लगाया जा सकता है।

प्रस्थिति अपेक्षा – एक प्रस्थिति के साथ कुछ मान्य अपेक्षाएं भी जुडी होती है। **जैसे**– एक पति अपनी पत्नी से यौन सम्बन्ध की अपेक्षा करता है जबकि अन्य पुरुष इस प्रकार की अपेक्षा उस स्त्री से नही कर सकता है। इसी तरह एक तरफ बच्चा अपनी माँ से अपेक्षा करता है। कि वह उसे अपना दूध पिलाएगी किन्तु दूसरा कोई बच्चा किसी दूसरी महिला से ऐसी अपेक्षा नहीं करता है। प्रस्थिति प्रतीक कई बार कुछ प्रस्थितियों का अनेक प्रतीको के आधार पर पहुचाया जा सकता है। जैसे– स्त्री व पुरुष की पोशाक अलग–अलग होती है। पुलिस को मिलिट्री के अधिकारियों की पोशाक और उनके बैच उनके पद के प्रतीक है। इसी तरह छात्रों की पहचान उनकी ड्रेस एवं बैग से की जाती है। इसी तरह एक विवाहित स्त्री प्रायः अपनी मांग पर सिंदूर लगाती है, जबकि एक अविवाहित लडकी ऐसा नहीं करती है।

मुख्य प्रस्थिति– मुख्य प्रस्थिति की अवधारणा ई.टी हिलर नामक समाजशास्त्री द्वारा दी गई है। व्यक्ति अपने जीवन में अनेक प्रस्थितियां धारण करता है। किन्तु उन सभी प्रस्थितियों में किसी प्रस्थिति एक प्रस्थिति का ही विशेष महत्व होता है इसी विशेष महत्व वाली प्रस्थिति को ही मुख्य कहा जाता है।

रावर्ट वीर स्टीड के अनुसार मुख्य प्रस्थिति वह है जो दूसरी प्रस्थितियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण एवं अग्रणी होती है।

आदिम समाजो में आयु, लिंग एवं नातेदारी मुख्य प्रस्थिति को निर्धारित करते है। भारत में जाति एवं रूस में व्यक्ति की राजनीतिक स्थिति मुख्य प्रस्थिति के निर्धारण में प्रमुख है। प्रस्थिति सम्बन्ध – वीर स्टीड ने कुछ प्रस्थिति सम्बन्धो का उल्लेख किया है और कहा है कि कई प्रस्थितियां जोड़े के रूप में होती है। जैसे– माता–पिता, पति–पत्नि दुकानदार – ग्राहक, अध्यापक – छात्र, डाक्टर मरीज एवं भाई–बहिन आदि।

प्रस्थिति संघर्ष एवं प्रस्थिति विपर्यय (उलटाव) – जब एक ही व्यक्ति दो इस प्रकार की प्रस्थितियां धारण किये हुए होता है जिसके मानदण्ड एक दूसरे से भिडे होते है और एक के मानदण्डो का पालन करने पर दूसरी के मानदण्डो की अवज्ञा होती है तो यह स्थिति प्रस्थिति संघर्ष कहलाती है।

उदाहरण–

एक थानेदार अपने पुत्र को डकैती के मुकदमे में फसें होने के कारण गिरफ्तार करता है जबकि वह ऐसा नहीं करना चाहता है क्योकि वह उसी का बेटा है इसी तरह भारत में एक राज्य कर्मचारी किसी भी राजनीतिक दल का चुनाव गति विधियों में भाग नहीं ले सकता है, किन्तु दूसरी ओर उसे देश का नागरिक होने के नाते ऐसा करने का अधिकार है। इसी प्रकार एक प्रस्थिति से सम्बन्धित विशेषाधिकारी एवं कर्त्तव्यों में कभी–कभी विवर्यय पाया जाता है।

उदाहरण– राष्ट्रपति देश में सर्वोच्य राजनीतिक पद पर है और केन्द्रिय कर्मचारियों के लिए कई आदेश देता है किन्तु कई बार उसे स्वयं की सुरक्षा की दृष्टि से गुप्तचर विभाग की आज्ञा माननी पडती है। अथवा कई बार एक व्यक्ति की भिन्न प्रस्थितियों को धारण करने पर विपरीत सम्बन्धों को निभाना पडता है।

प्रस्थिति प्रतिमान एवं प्रस्थिति श्रृंखला – एक समय में एक व्यक्ति कई प्रस्थितियां धारण करता है उसे मर्टन ने प्रस्थिति प्रतिमान कहा है। एक व्यक्ति इंजीनियर, पिता पुत्र भाई भतीजा दादा चाचा नाना आदि सभी प्रस्थितियों को एक साथ धारण करता है। ये सभी मिलकर उसके प्रस्थिति प्रतिमान को बनाते है। इसी तरह एक व्यक्ति अपने जीवन काल में एक के बाद एक कई प्रस्थितियां प्राप्त करता है। इसे प्रस्थितिकता या श्रंखला तथा इसी तरह अधिकारी विधायक मंत्री बनता है तो ये सभी पद उसे एक के बाद एक प्राप्त होते जाते है ये ही उस व्यक्ति का प्रस्थिति कम बनाते है।

सामाजिक प्रस्थिति के प्रकार – सन् 1936 में राल्फ लिंटन ने अपनी पुस्तक The Tirds of Man में समाज में पायी जाने वाली प्रस्थितियों को प्रमुख्य रुप से दो भागो में बांटा है

i- प्रदत्त प्रस्थिति पप. अर्जित प्रस्थिति

1. प्रदत्त प्रस्थिति– प्रदत्त प्रस्थिति वह प्रस्थिति है जो व्यक्ति के गुणो पर ध्यान दिये बिना ही व्यक्ति को स्वतः ही प्राप्त हो जाती है ये प्रस्थितियां व्यक्ति को किसी परिवार विशेष में जन्म लेने व परम्परा आदि का कारण प्राप्त होती है। समाज में प्रदत्त प्रस्थितियां पहले से ही मौजूद रहती है जो नवीन जन्म लेने वाले प्राणी को प्रदान कर दी जाती है। प्रदत्त प्रस्थिति पर व्यक्ति का अपना कोई नियंत्रण नही होता है। जैसे– स्त्री या पुरुष होना, बालक, या युवा होना, सुन्दर या कुरुप होना तथा लम्बा या छोटा होना व्यक्ति के नियंत्रण से परे है। आधुनिक समाजो की तुलना में आदिम एवं परम्परागत समाजो में प्रदत्त प्रस्थितियां अधिक पायी जाती है।

प्रदत्त प्रस्थिति के आधार

i – लिंग भेद
ii– आयु भेद
iii– नातेदारी
iv– जन्म
v– शारीरिक विशेषताएं
vi– जाति एवं प्रजाति
vii– जन्म की वैधता एवं अवैधता
viii– परिवार की परम्पराएं

1. अर्जित प्रस्थिति –अर्जित प्रस्थिति वह प्रस्थिति है जिसे व्यक्ति अपने गुण योग्यता एवं क्षमता के आधार पर प्राप्त करता है। हर्टन एवं हब्स के अनुसार एक सामाजिक पद जिसे व्यक्ति अपनी इच्छा एवं प्रतिस्पर्द्धा के द्वारा प्राप्त करता है। अर्जित प्रस्थितियों के लिए समाज में प्रतिस्पर्द्धा पायी जाती है। और योग्य एवं सक्षम व्यक्ति इन प्रस्थितियों को प्राप्त कर लेते है। शिक्षा, व्यवसाय, विवाह, सम्पत्ति, संचय श्रम विभाजन आदि का सम्बन्ध अर्जित प्रस्थिति से ही है।

अर्जित प्रस्थिति के आधार–

i– सम्पत्ति
ii– व्यवसाय
iii– शिक्षा
iv– विवाह पति या पत्नी तो अर्जित प्रस्थितियां है किन्तु वाली प्रस्थितियां प्राप्त होती है।
v– राजनीतिक सत्ता उपलब्धियां
vii– सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था
viii– सामाजिक परिवर्तन

फिचर का मत है कि प्रदत्त प्रस्थिति और उससे सम्बन्धित भूमिका में सामान्यजस्य होना आवश्यक नहीं है जबकि अर्जित प्रस्थितियों में अधिकाशतः दोनों में सामान्यजस्य पाया जाता है।

आगवर्न एवं निमकाफ–समाज व्यक्ति की अपेक्षा उसकी प्रस्पिद में अधिक रूचि रखता है।

सेकार्ड वकमैन ने स्थति के तीन आधार प्रस्तुत किये है– उच्च प्रस्थिति प्राप्त व्यक्तियों द्वारा पुरस्कार मूल्य से निर्धारण, प्राप्त पुरस्कार एवं खर्च लागत तथा निवेश।

सामाजिक भूमिका–

भूमिका की अवधारणा का प्रयोग मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार एवं मनोविश्लेषण के सन्दर्भ में भीड न्यूकाम्ब मेरीनो एवं सरबिन आदि मनोवैज्ञानिक द्वारा किया गया समाज शास्त्र में भूमिका को प्रस्थिति का गतिशील या व्यवहारिक पहलू माना जाता है। प्रस्थितियां धारण की जाती है जबकि भूमिकाओं का निर्वाह किया जाता है।

एक प्रस्थिति धारण करने के कारण समाज जिस प्रकार के कार्यों की व्यक्ति से अपेक्षा करता है वही भूमिका कहलाती है। भूमिका प्रस्थिति का व्यवहारात्मक एवं गव्यात्मक पहलू है भूमिका की अवधारणा मानवशास्त्री राल्फलिंटन ने 1936 में अपनी पुस्तक जीम`जनकल व िउंद में दिया था। इस शब्द का प्रयोग उन्होने व्यक्तियों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न कार्यों के लिए किया था। व्यक्तियो के प्रत्येक प्रकार के कार्यों को भूमिका नही कहा जा सकता चोरी डकैती करना एक प्रकार का कार्य है भूमिका नही भोजन करना भी भूमिका नही है यह एक सामान्य कार्य है हम उसी कार्य को भूमिका मानते है जो कोइ व्यक्ति सामाजिक नियम कानूनों एवं आदर्शों की अपेक्षा को ध्यान में रख सकता है माता–पिता के द्वारा बच्चे को प्यार करना एक सामाजिक भूमिका है। लेकिन माता–पिता का अपमान करना भूमिका नही है। दूसरी तरफ अपने सामाजिक मान्यताएं अनुमति देती है कि हमे अपने हक के लिए विरोध या संघर्ष करना चाहिए।

भूमिका निर्माण के दो तत्व होते हैं– व्यक्तिओं की आशाएं तथा इन आशाओं के अनुरूप की जाने वाली वाहा क्रियाएं।

ओलन–''सामाजिक भूमिका कुछ प्रत्याशाओं और क्रियाओं की वह परस्पर सम्बन्धित व्यवस्था है जिसे सामाजिक संगठन का सबसे आन्तरिक अंग कहा जा सकता है।''

भूमिका को दो रूपों में समझा जा सकता है– आदर्श भूमिका तथा वास्तविक भूमिका।

आदर्श भूमिका–आदर्श भूमिका वह है जो समाज के द्वारा किसी व्यक्ति से आपेक्षित है जैसे– समाज यह अपेक्षा करता है कि लोग अपने माता–पिता के साथ अच्छा व्यवहार करता है।

वास्तविक भूमिका– वास्तविक भूमिका वह है जो किसी विशेष परिस्थिति बस व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुसार व्यवहार करता है वास्तविक भूमिका का सम्बन्ध सामाजिक वातावरण एवं कर्ता के व्यक्तित्व से है। जिस व्यक्ति का जैसे वैयक्तिक होगा वह वैसा ही व्यवहार करेगा जैसे छुआ–छूत, की भावना से हटकर व्यवहार करना आदर्श भूमिका है वही पर आपसी व्यवहार में छुआ–छुत वर्तना या जातिवादी होना वास्तविक भूमिका है। भूमिका एक तुलनात्मक अवधारणा है किसी व्यक्ति की भूमिका कभी भी अपने आप में सम्पूर्ण नही होती है। भूमिका को तुलनात्मक ढंग से दो स्तरो में समझा जाता है।

न्यूकाम्ब ने व्यवहार के दो प्रकार बताएं हैं– आपेक्षित व्यवहार तथा वास्तविक व्यवहार।

बैटन भूमिकाओं का सम्बन्ध मानदण्ड और आपेक्षाओं के अनुरुप माना है।

परिभाषा

किग्सले डेविस–''भूमिका वह ढंग है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी स्थिति सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।''

फेयर चाइल्ड–''भूमिका किसी भी व्यक्ति का समूह में वह आपेक्षित कार्य या व्यवहार है जो समूह का सांस्कृति के द्वारा परिभाषित किया गया है।''

इलियट एवं मेरिट– ''भूमिका वह कार्य है जिसे प्रत्येक व्यक्ति प्रस्थिति के अनुरूप निभाता है।''

आगवर्न एवं निमकाफ भूमिका एक समूहों को एक विशिष्ट पद से सम्बन्धित सामाजिक प्रयासाओं एवं व्यवहार प्रतिमानो का एक योग है जिसमे कर्त्तव्यों एवं सुविधाओं दोनो का समावेश होता है।''

लिंटन–"कोई भी भूमिका प्रस्थिति का गव्यात्मक पक्ष है।''

डेविस– ''भूमिका किसी भी व्यक्ति द्वारा अपने पद की आवश्यकताओं के अनुसार की जाती है।''

भूमिका पालन– जब कोई व्यक्ति अपनी भूमिका समाज द्वारा आपेक्षित प्रतिमानो के आधार पर निभाता है तो उसे भूमिका पालन करना कहा जाता है, पिता पुत्र तथा अध्यापक आदि अपनी–अपनी भूमिका का पालन करते है।

भूमिका ग्रहण या वर्णन इसके अन्तर्गत विशिष्ट भूमिकाएं सीखी जाती है। जैसे– एक व्यक्ति अध्यापक होने पर अध्यापक की भूमिका निभाना सीखता है।

अभिनय की भूमिका– इस प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति अभिनय के माध्यम से किसी अन्य पात्र की भूमिका निभाता है किसी व्यक्ति द्वारा राम कृष्ण तथा शिवाजी जैसे पात्र का अभिनय करना इसके अन्तर्गत सामाहित है।

भूमिका बाघा या भूमिका विकलांगता (त्वसम ींदकपबंच)– भूमिका वेचन के अर्न्तगत उन तत्वों का उल्लेख किया जाता है। जो कि किसी भी भूमिका सम्पन्न करने में व्यवधान वर्दी टार्च लाठी व अन्य हथियार डालते हैं रात्री में गस्त लगाने वाले सिपाहियों के सर्दी में गर्मी उनकी भूमिका निर्वाह में सहायक होते हैं। यदि ये साधन ना होते तो तो भूमिका निर्वाह में बाधा पैदा हो सकती हैं।

भूमिका वंचन (त्वसम कपेचवेपजपवद)– भूमिका वंचन की अवधारणा को सामाजीकरण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में समझा जा सकता हैं। विद्यार्थी से अपने आप को प्राध्यापक के रूप में बदलना ही भूमिका वंचन हैं। इसके अन्तर्गत विद्यार्थी के हाव–भाव बदलकर प्राध्यापक के हावभाव या पहनावा स्वीकार करना पड़ता हैं एक प्रस्थिति को छोडकर दूसरी प्रस्थिति धारण की जाती हैं तो पहली प्रस्थिति की भूमिका त्यागनी पडती हैं इसे ही भूमिका वंचन कहते हैं। भूमिका वंचन जब व्यक्ति भूमिका को पूर्णरूपेण विर्सजित दूसरी भूमिका ग्रहण करता हैं।

उसी बीच की स्थिति को भूमिका सेक्रमण की स्थिति कहा जाता है इस स्थिति में भूमिका तनाव कि सम्भावनाए बनी रहती हैं।

भूमिका स्वावृति (त्वसम कपेचवेपजपवद)– जब व्यक्ति को किसी विशेष के निर्वाह में अधिक रूचि प्रतीत होती हैं उसे भूमिका स्वावृत्ति कहते हैं।

भूमिका का वर्गीकरण

लिंटन ने दो प्रकार की भूमिकाएं बताई हैं– प्रदत्त या आरोपित भूमिका एवं अर्जित भूमिका।

एस.एफ. नोडल ने भूमिका को दो भागों में विभाजित किया है– सम्बन्धनात्मक भूमिका (माता, पिता, पति, पत्नी) तथा गैर सम्बन्धनात्मक भूमिका (फकीर, कवि, साधू, एवं विद्वान)।

बैंटेन ने भूमिका के तीन भाग बताए हैं–बुनियादी भूमिका (ठेंपब तवसम), सामान्य भूमिका (ळमदमतंस तवसम), स्वतंन्त्र भूमिका (म्दकपचमदकपदज तवसम)।

बैंटेन ने भूमिकाओं को एक अविछिन्नक (निरंतर) पैमाना (बवदजपदननउ ेवबंसम) से मापने को कहा है सन्थाल ैंदजींस) ने भूमिका के वर्गीकरण का आधार जीवन के विभिन्न कार्य क्षेत्र को माना है जीवन को विभिन्न कार्य क्षेत्रो को ध्यान में रखकर सन्थाल ने पांच के भूमिका क्षेत्र की चर्चा की है–बन्धुता (नातेदारी), आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा मनोरंजनात्मक।

ओल्सेन– ''सामाजिक भूमिका न केवल व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण होती है बल्कि सामाजिक संगठन को बनाये रखने में भी इसका स्थान महत्वपूर्ण है।''

रावर्ट मर्टन ने भूमिका एवं प्रस्थिति से सम्बन्धित तीन अवधारणाएं दी हैं– भूमिका प्रतिमान, प्रस्थिति प्रतिमान एवं प्रस्थिति श्रृंखला।

भूमिका प्रतिमान– एक व्यक्ति अपनी प्रस्थिति से सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियों के साथ अलग–अलग की जो भूमिका निभाता है उसकी सम्पूर्णता को ही भूमिका प्रतिमान कहते है। उदाहरण – एक डाक्टर दूसरे डाक्टरो, नर्सों मरीजो और चिकित्सा अधिकारी से भिन्न–भिन्न प्रकार की भूमिका निभाता है उसे ही भूमिका प्रतिमान कहते है।

भूमिका दूरी – इर्विन गाफ मैन ने 1911 में भूमिका दूरी के पैमाने को दिया उन्होने कहा कि आधुनिक समाज में लोगो को एक से अधिक भूमिकाओं को निभाना पड़ता है। जब कभी भी कोई व्यक्ति अपनी किसी भूमिका से ऊब जाता है तो उससे वह दूर होने की चेष्टा करता है यदि कोई सफल वैज्ञानिक या राजनीतिक जब अपने पैरो से काफी ऊब जाता है तो कुछ दिनो के लिए वह उस काम से विश्राम ले लेता है। और अपना समय परिवार के साथ मनोरंजन में बिताता है इसी को गांफ मैन ने भूमिका दूरी कहा है। भूमिका दूरी की अवधारणा के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी किसी भूमिका एवं स्थिति से स्थायी तौर पर अलग नही होता है। केवल भूमिका निभाने की प्रक्रिया में फेर बदल ही किया जाता है। भूमिका दूरी के माध्यम से व्यक्ति आधुनिक समाज में तनावपूर्ण जीवन से दूर भागने की कोशिश करता है भूमिका दूरी से प्रतिदिन की दूरी जीवन से निरन्तर में कमी आती है।

वीर स्टीड– ''प्रस्थिति संस्थागत भूमिका है।''

अपराध एक सास्वत प्रघटन है अपराध प्रत्येक समाज में हर एक समय पर विद्यमान रहता है इसका पूर्णरूपेण उन्मूलन नही किया जा सकता है।

अपराध समाज के बनाये और माने हुए रास्ते के तोडने का नाम है अपराध वह कार्य है तो किन्ही सास्वत सामूहिक भावनाओ पर आघात करता है दुर्खीम का विचार है कि अपराध सभी प्रकार के सभी समाजो में व्याप्त है दुर्खीम का कहना है कि सन्त समाज भी अपराध विहीन समाज नही हो सकता।

टेनेवान ने कहा है कि अपराध एक सास्वत प्रघटना है। अपराध एक सापेक्षित पद है जिसका सम्बन्ध काल और देश के अनुसार हुआ करता है।

रमसेक्लार्क ने अपनी पुस्तक बतपउम पद उंतपबं 1970 में कहा है कि ष्अपराध वह दर्पण है जिसमें लोगो का चरित्र प्रतिबिम्बित होता है अपराध मानव व्यवहार है और मानव ही अपराध करता है।

रेंक्लस ने अपनी पुस्तक ब्तपउपदंस ठमींअपवत में कम अपराध होन वाले समाजो तथा अधिक अपराध होनं वाले समाजो की विशेषताएं प्रकट की है।

समाजशास्त्र के अन्तर्गत वे व्यक्ति भी अपराधी है जिन्होने अपराधिक व्यवहार किया है किन्तु किन्ही कारणो से पकडे नही जा सके या फिर साक्ष्यो के अभाव में जिन्हें न्यायालयों ने दोष मुक्त कर दिया है।

विवाह

(डंततपंहम)

विवाह (डंततपंहम) – विवाह एक संस्था है जो नर एवं नारी को पारिवारिक जीवन में प्रवेश दिलाती है लैंगिक सम्बन्ध की अनुमति मिल जाती है तथा पुरूष एवं स्त्री को बच्चे उत्पन्न करने की सामाजिक आज्ञा मिल जाती है। विवाह का शाब्दिक अर्थ है– उद्वह अर्थात वधु को वर के घर ले जाना।

परिभाषायें

(1) लूसी में पर – ''विवाह स्त्री पुरुष का ऐसा योग है, जिसमें स्त्री से जन्मा बच्चा माता पिता की वैध सन्तान माना जाए।''

(2) एडवर्ड वेस्टरमार्क– नर एवं नारी के मध्य न्यूनाधिक स्थाई सम्बन्ध जो प्रजनन की क्रिया से परेय बच्चों के जन्म के उपरान्त भी बनना रहता है। इनकी पुस्तक ष्जीम भ्पेजवतल व िभ्नउंद उंततपंहमश है।

(3) एडवर्ड वेस्टरमार्क – ''विवाह एक या अधिक पुरूषों वाला यह सम्बन्ध है, जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें उस संगठन में जाने वाले दोनों पक्षों और उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार एवं कर्तप्यों का समावेश होता है।''

(4) रिर्वस – ''जिन साधनों द्वारा मानव समाज यौन सम्बन्धों का नियमन करता है, उन्हें विवाह की संज्ञा दी जा सकती है।'' इनकी पुस्तक श्ैवबपंस व्तहंदप्रंजपवदश है।

(5) बोगार्डस –''विवाह स्त्री और पुरुष के पारीवारिक जीवन में प्रवेश करने की संस्था है।''

(6) डी.एन. मजमूदार एवं डी.एन. मदान विवाह में कानूनी या धार्मिक आयोजन के रूप में उन सामाजिक स्वीकृतियों का समावेश होता है जो विषम लिंगियों को यौन क्रिया और उससे सम्बन्धित सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों में सम्मलित होने का अधिकार प्रदान करती है।

(7) एच.एन. जानसन – ''विवाह के सम्बन्ध में अनिवार्य एक यह है कि यह स्थाई सम्बन्ध है जिनमें एक पुरुष और एक स्त्री समुदाय में अपनी प्रतिष्ठा को धोये बिना सन्तान उत्पन्न करने की सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करते है।"

(8) हाबल – ''विवाह सामाजिक आदर्श मान दण्डो की वह समग्रता है जो विवाहित व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों को उनके रक्त सम्बन्धों? सन्तानों तथा समाज के साथ सम्बन्धों को परिभाषित और नियंत्रित करती है।''

कुछ समाजो में विवाह को स्वरूप धार्मिक होता है जबकि कुछ संस्कृतियों में विवाह को एक समझौता के रूप में देखा जाता है। विवाह का उद्देश्य यौन संतुष्टि ही नहीं होता है वरन कभी–कभी तो यह केवल सामाजिक सांस्कृतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही किया जाता है। जैसे– सेमा नागाओं में एक पुत्र अपनी सभी माँ को छोड़कर पिता की अन्य विधवा स्त्रियों से विवाह कर लेता है। उसका कारण यौन संतुष्टि नहीं है, वरन स्त्रियों को मिलने वाली सम्पत्ति में उत्तराधिकार को प्राप्त करना है।

(9) मजुमदार एवं मदान ने कहा है कि ''विवाह से वैयक्तिक स्तर पर शारीरिक (यौन) और मनो वैज्ञानिक (संतान प्राप्ति) संतोष प्राप्त होता है, तो व्यापक सामूहिक स्तर पर उससे समूह और संस्कृति के अस्तित्व निर्वाह में योग मिलता है।''

विवाह दो विषम लिंगियों को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की सामाजिक धार्मिक अथवा कानूनी स्वीकृति है। स्त्री, पुरुषों एवं बच्चों को विभिन्न सामाजिक व आर्थिक क्रियाओं में सहमामी बनाना सन्तानोत्पत्ति करना तथा उनका लालन–पालन एवं समाजीकरण करना विवाह के प्रमुख कार्य हैं।

(10) मनु ने कहा है कि जैसे सब पशु वायु के सहारे जीते है वैसे ही सब प्राणी गृहस्थ आश्रम से होकर जीवन धारण करते हे।

व्यास स्मृति में गृस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है कि जितेन्द्रीय गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले को घर में ही कुरक्षेत्र हरिद्वार, केदार–बदरीनाथ आदि का तीर्थ मिल सकता है, जिनकी यात्रा कर वह सब पापों से मुक्त हो सकता है।

विवाह की विशेषताएं

(1) विवाह एक मौलिक एवं सार्वभौमिक संस्था है।

(2) विवाह दो विषम लिंगीयों का सम्बन्ध है।

(3) विवाह में सामाजिक स्वीकृति का होना।

(4) विवाह संस्था के आधार पर लैगिंक या यौन सम्बन्धों को मान्यता है।

(5) वेस्टरमार्क ने विवाह को एक सामाजिक संस्था के अतिरिक्त एक आर्थिक संस्था भी माना है।

(6) विवाह से समाज की निरन्तरता बनी रहती है।

(7) विवाह व्यक्ति की सामाजिक स्थित के निर्धारण में योग देता है।

(8) विभिन्न समाजो में भिन्न–भिन्न वैवाहिक पद्धतिया।

(9) विवाह एक स्थायी सम्बन्ध है।

विवाह के उद्देश्य विवाह का सर्वप्रमुख उद्देश्य स्त्री और पुरुषों के यौन सम्बन्धों को नियमित करने तथा संतानोत्पत्ति के सामाजिक कार्य में योग देना है। इसका उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति तथा बच्चों का लालन–पालन का है।

जी.पी. मर्डाक ने 250 समाजों का अध्ययन किया और पाया की सभी समाजो में विवाह के तीन उद्देश्य प्रचलित होते है– (1) यौन संतुष्टि (2) आर्थिक सहयोग (3) संतानो का समाजिकरण एवं लालन–पालन।

जी.पी. मर्डाक ने अपनी पुस्तक श्क्नत च्तपउपजपअम म्वदजमउचवतंतवमेश में कहा है कि यौन संतुष्टि एक मात्र उद्देश्य नहीं है, किन्तु प्रमुख अवश्य है क्योंकि यौन संतुष्टि विवाह के अलावा भी हो सकती है।

भारत की कूकी जनजाति में विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध हो जाते है होते हैं उसका विवाह नहीं भी हो सकता है। विवाह के कुछ उद्देश्य निम्न प्रकार है–

(1) यौन इच्छाओं की पूर्ति एवं समाज में यौन क्रियाओं का नियमन करना।

(2) परिवार का निमार्ण करना एवं नाते दारी का विस्तार करना।

(3) वैध सन्तानोत्पत्ति करना व समाज के निरन्तरता को बनाये रखना।

(4) सन्तानो का लालन–पालन एवं समाजीकरण करना।

(5) स्त्री–पुरुष में आर्थिक सहयोग उत्पन्न करना।

(6) मांसिक संतोष प्रदान करना।

(7) माता–पिता एवं बच्चों में नवीन अधिकारों एवं दायित्वों को जन्म देना।

(8) संस्कृति का एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरण।

(9) धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक उद्देश्यों तथा जिसमें यौन सम्बन्ध को प्राप्ति करना।

(10) सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।

भारतीय समाज में यौन संतुष्टि को विवाह का सबसे गौण उद्देश्य माना जाता है। हिन्दू जीवन में गृहस्त जीवन को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है, क्योकि व्यक्ति केवल परिवार में रहकर ही विभिन्न व्यक्तियों एवं समूहों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन सबसे अच्छे रूप में कर सकता है। भारत में विवाह के उद्देश्यों को केवल जैवकीय आधार पर ही स्पष्ट किया जाना चाहिए। भारत में विवाह के प्रमुख उद्देश्य के रूप में परिवार का निर्माण करना और परिवार में धार्मिक क्रियाओं की पूर्ति करना है।

बोमैन के अनुसार विवाह के निम्न उद्देश्य हैं– (1) यौन संतुष्टि (2) घर (3) बच्चों की इच्छा (4) सामाजिक स्थिति (5) सम्मान (6) आर्थिक सुरक्षा एवं संरक्षण।

पोपनो के अनुसार विवाह के पाँच उद्देश्य हैं–(1) यौन इच्छा (2) श्रम विभाजन (3) घर एवं बच्चो की इच्छा (4) मित्रता (5) अर्थिक सुरक्षा।

मजमुदार एवं मदान के अनुसार विवाह के निम्न उद्देश्य हैं– (1) यौन संतुष्टि (2) बच्चों के लालन–पालन को विश्वसनीय सामाजिक तरिका (3) संस्कृति का संक्रमण (4) आर्थिक आवश्यकताए (5) सम्पत्ति का अधिकार।

हिन्दू धर्म के अनुसार विवाह के तीन उद्देश्य हैं–(1) धर्म (2) प्रजा ैनइरमबज) (3) रति विवाह का उत्पात्त–विवाह की उत्पति एवं इतिहास परिवार के समान है।

(1) जाति–सिनेमा जगत ने जातिवाद एवं धार्मिक भेदभाव को दूर करने प्रयास किया है। 1936 में अछूत कन्या फिल्म में जातिवादी विखण्डनकारी व्यवस्था व धार्मिक भेदभाव को नकारा गया है।

विवाह के प्रकार

एक विवाह (डंदवहपदह) तथा बहुविवाह (च्ंसल)

(1) बहुपत्नि विवाह (च्मलहलदल) (2) बहुपति विवाह (च्वमलंदकतल) (3) हिन्दू विवाह (ठपहंउल) (4) एक विवाह (ळतमचदपदह) (1) एक विवाह – जब एक समय में एक पुरुष या स्त्री या पुरूष से विवाह करता है तो इसे हम एक विवाह कहते है।

बुकनोविल के अनुसार– उसी विवाह को एक विवाह कहना उचित होगा जिसमें न केवल एक व्यक्ति की एक ही पत्नि या पति है बल्कि इनमें से किसी की मृत्यु हो जाने पर भी दूसरा पद (विदुर, विधवा) दूसरा विवाह न करे। किसी से विवाह न करना ही एक विवाह माना जाता है।

लूसी मेयर के अनुसार एक विवाही और बहुविवाही शब्द विवाह या समाज के लिए प्रयुक्त होते है, व्यक्तियों के लिए नही। निष्ठाहीन पति या कामाचारी व्यक्ति को वह विवाही कहना भाषा के साथ खिलवाड करना है यद्यपि कुछ लोग ऐसा करते हैं।

एक विवाह तीन रूप हो सकते हैं–

(1) एक पक्ष की मृत्यु हो जाने से दूसरे पक्ष द्वारा पुनः विवाह करना।

(2) एक पुरूष एक स्त्री ये विवाह करता है किन्तु रखैल के रूप में कई स्त्रियां रखता है।

(3) तलाक या मृत्यु हो जाने पर दूसरा विवाह भी कर लिया जाता है।

पिडिंग्टन के अनुसार –एक विवाह विवाह का वह स्वरूप है जिस से किसी एक समय कोई पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकता।

कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

(1) वेस्टरमार्क ने एक विवाह को ही विवाह का आदि स्वरूप माना है।

(2) मैलिनोवस्की –एक विवाह ही विवाह का सच्चा स्वरूप रहा है।

(3) हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के द्वारा एक विवाह आवश्यक कर दिया है।

(4) असम की खाणी, बिहार की संपाल और केरल की 1940 में बनी अछूत फिल्म दलितों की विभिन्न समस्याओं को दर्शाती है। कादर जनजातियों में एक विवाह पाया जाता है।

(5) दो जनजाती में अत्यधिक कन्या मूल्य (ठतपकम च्तपबम) के कारण एक विवाह का प्रचलन है।

(6) एक विवाह की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए वेस्टरमार्क ने लिया है कि मनुष्य तो क्या, पशु और पक्षी भी हमेशा से एक विवाह ही रहे है।

(ठ) बहुविवाह (च्वसल हंउल) – जब एकाधिक पुरूष अथवा स्त्रीयां विवाह बन्धन में बघते हैं तो ऐसे विवाह को बहुविवाह कहते है। मजुमदार ने बहुविवाह के लिए (च्वसलहलदंदंजतल) शब्द का प्रयोग किया है।

बहु विवाह के प्रमुख चार रूप निम्नवत है–

(1) बहुपत्नी विवाह (च्वसल ळलदल)– बहुपत्नी विवाह वह विवाह है जसमें एक पुरूष दो या दो से अधिक स्त्रियों से विवाह करता है दूसरे शब्दो में बहुपत्नी विवाह का अर्थ है एक पुरूष द्वारा एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना। अफ्रीका में बहुपत्नी विवाह अधिकांश रूप से पाया जाता है। मुस्लिमों में बहुपत्नी प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित है। ओशानिया में बहुपत्नी प्रथा भी पायी जाती है। मलेशिया में वृद्ध पुरूषों को अधिकार दिया गया है कि वे कई पत्नीयां रख लें। एड्रीस्टेन द्वीप में राजको तथा उन लोगो को बहुपत्नीत्व का अधिकार होता है जिन्होंने युद्ध में शरीर कॉटे हो। युगान्डा की बगन्डा जनजाति में राजा एवं उसके सहायक प्रधानो में एक साथ कई स्त्रियां रखने का रिवाज है।

युगान्डा की बगन्डा लोगो में बहुपत्नीत्व का एक कारण यह भी है कि राजाओं में उत्तराअधिकारी पुत्र के अतिरिक्त अन्य पुत्रों को पैदा होते ही मार दिया जाता है जिससे स्त्रीयों की संख्या बढा दी जाती है।

कुछ प्रमुख तथ्य

(1) आस्ट्रेलिया, न्यूजिलैण्ड एवं भारत में भी बहुपत्नीत्व पाया जाता है।

(2) भारत में नागा, गौड, बैगा, भील, टोडा, लुसाई और मध्य भारत की अधिकांश प्रोटेमास्ट्रेलायड जनजातियों में बहुपत्नी विवाह पाया जाता है।

(3) बंगाल में अनुलोम विवाह एवं कुलिन विवाह की प्रथा के कारण बहुपत्नीत्व प्रचलित है।

(4) दक्षिण में नमबुद्री बाह्मणों में भी यह प्रथा प्रचलित है।

(5) के.एम. कपाड़िया ने अपनी पुस्तक श्डंततपहम ंदक ठिपसल पद प्दकपंश में कहा है कि भारत वर्ष में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन वैदिक युग से वर्तमान समय तक प्रचलित रहा है।

(6) मनु के दस एवं याज्ञवल्क के दो पत्नियां थीं।

(7) मनु कौटिल्य और आवस्ताम्ब ने बहुपत्नीत्व को स्वीकारा है।

बहुपत्नी विवाह के दो रूप

(1) प्रतिबन्धित बहुपत्नी विवाह – प्रतिबन्धित बहुपत्नी विवाह में प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद ही व्यक्ति दूसरा विवाह कर करता है।

(2) अप्रतिबन्धित बहुपत्नी विवाह – इस विवाह में एक स्त्री के जीवित रहते पुरूष मन्य स्त्रियों से विवाह करता है। स्त्री के बूढा होने के स्थिति में अथवा अपनी प्रतिष्ठा बढाने के लिए पुरूष ऐसा करता है।

बहुपत्नी विवाह के दो अन्य रूप और भी है

(1) पत्नी अग्नि विवाह– इसमें एक पुरुष जिस स्त्री से विवाह करता है उसके अन्य बहने भी उसकी पत्नी हो सकती हैं। जब पुरुष प्रथम स्त्री के मृत्यु हो जाने के बाद उसकी शेष बहन से विवाह करता है तो ऐसे विवाह को प्रतिबन्धित भागिनी विवाह कहा जाता है। सरेरे जनजाति लोगों में एक कहावत है कि एक पत्नी का अर्थ है की पत्नी न होना या एक पत्नी का अर्थ है

एक आ होना। इसी तरह जिस स्त्री से पुरूष से विवाह करते है उस स्त्री के जीवित रहते हुए उसकी बहनों से विवाह कर लेता है या वे स्वंय उसकी पत्नियां बन जाती हैं। धोगा जनजाति में एक व्यक्ति अपनी सभी सालियों से विवाह करता है।

(2) गैर पत्नी भगिनी विवाह – एक पुरुष ऐसी लड़कियों से शादी करता है जो आपस में बहने न हो। उदाहरण– नागा, गोंड, वैगा, मील, दक्षिण भारत के नामबूद्रों ब्राह्मण।

वेस्टरमांक ने बहुपत्नीत्व के निम्नांकित कारण बताये है–

(1) जंगली जनजातियों में गर्भवती एवं दुग्धपान कराने वाली स्त्री के साथ सहवास नही किया जाता है। इस बाधित बह्मचर्य के कारण उनमें बहुपत्नीत्व की प्रथा चल पड़ी।

(2) जंगली जनजातियों में पुरुषों की तुलना में स्त्रीयां जल्दी वृद्ध हो जाती हैं। अतः पुरूष दूसरा विवाह कर लेता है।

(3) विविधता की इच्छा के कारण भी बहुपत्नीत्व पाया जाता है भोरतको के एक मुसलमान से जब यह प्रश्न किया गया तुम एक विवाह से संतुष्ट क्यों नहीं हो इसका उसने उत्तर दिया कि हमेशा मछली खाकर नहीं रहा जा सकता है।

(4) जीवन यापन की कठिनाई के कारण परिवार में कई संतानो के होना आवश्यक माना जाता है जिसे कई स्त्रीयों से विवाह करके ही पूरा किया जा सकता है।

(2) बहुपति विवाह– बहुपति विवाह वह विवाह है जिसमें पत्नी के साथ दो या दो से अधिक पुरूषों का विवाह होता है। बहुपति विवाह का प्रचलन बहुपत्नी प्रथा से बहुत कम लोवी का कथन है कि उन समाजो को जहा की बहुपति विवाह वास्तव में पाया जाता है। केवल हाथ की उगलियों में गिना जा सकता है। इस प्रकार का विवाह से समुदायों में तथा पूर्वी अफ्रीका की बहुमा जनजाति में भी प्रचलित है।

दाणरर्णन का कहना है कि एक स्त्री के साथ कई पतियों का विवाह सम्बन्ध बहुपति विवाह कहलता है।

मैकलेनन ही पहला विद्वान था जिसने मानव शास्त्र सिद्धान्तो मे बहुपति विवाह प्रथा का उल्लेख किया। बान्दु जनजाति, पशुपालना, पोटोनेशिय के मार्केद्विय, स्ट्रेणे और सीजर, अरबो, कनारी द्विप समूह, गासी, उत्तरी अमरीका की अलस्कान, एस्किमो अमेकिन इंडियन मेडागास्कर, मलाया, जलडमरूमध्य, अमरिका की शोशोनिक तथा श्रीलंका के रतनपुरा जिला की सिंहली जनजाति में बहुपति विवाह की प्रथा प्रचलित है।

तिब्बत, भारत मे देहराइन के जौन सारबाबर परगना तथा शिमला की पहाडियों, टिहरी गड़वाल में रहने वाले खास राजपूतों, निलगिरि की पहाडियों में बसने वाले टोड़ा, कातय लोगो, लद्दाखी बोटो तथा मद्रास के तियान एवं इरावा तथा मालाबार के नायर, हरांवान तथा कम्पाला, कम्बेल, कुर्ग, संथाल एवं भारत की उराव जनजाति आदि लोगों में भी बहुपति प्रथा प्रचलित है। इसी तरह इंडो आर्यन एवं मंगोलायड लोगों में भी प्रचलन पाया जाता है। मिचेल के अनुसार एक स्त्री द्वारा एक पति के जीवित होते हुए अन्य पुरूषो से भी विवाह करना या एक समय पर ही दो या दो से अधिक पुरूषो से विवाह करना बहुपति विवाह है।

सी.के. मीक ने उत्तरी नाइजेरिया की ग्लारी जनजाति में पाये जाने वाले बहुपति विवाह का उदाहरण दिया और कहा कि एक स्त्री के कई पति और पटिदार विभिन्न शहरों में होते थे और वह स्त्री अपनी इच्छा अनुसार पतियों के यहां जाती हैं।

के.एम. कापड़िया के अनुसार – बहुपति विवाह एक प्रकार का सम्बन्ध है जिसमें स्त्री के एक समय में एक से अधिक पति होते है या अनेक भाई एक स्त्री का पत्नी के रूप में एक सम्मलित रूप से उपभोग करते है।

भारत के खस, तोडा, काटा, कुसम्ब और कम्मल जनजातियों में बहुपति विवाह पाया जाता है।

वैदिक साहित्य में बहुपति प्रथा की मनाही थे किन्तु महाभारत काल में ऐसे विवाह के कुछ उदाहरण पाये जाते है। द्रोपती का विवाह पाँच पांडव भाइयों से हुआ था। द्रविड संस्कृति के मालावाही जनजाति में बहुपति, विवाह का प्रचलन है।

मूलतः 30 से 60 के बीच के दशक के दशक ने भारतीय फिल्मों में महिलाओं की दयनीय स्थिति का भावपूर्ण चित्रण करते हुए बदलाव की स्थिति प्रस्तुत की। औरत, बैंडिट क्वीन, बवंडर, चांदनी बार, जुबेदार अपनी जैसी शिक्षाप्रद महिला एम्बन्धित फिल्में इनमें महिलाए की समस्याओं की निस्पण उसे दूर करने के उपाय की और इंगित किया गया।

बहुपति विवाह दो प्रकार का होता है–

(1) भ्रातृक बहुपति विवाह (थ्तंसमतउंस च्ंसलंदकतल वत ।कमसचीपब च्वसलंदकतल)– दो या अधिक भाई एक स्त्री के पति होते है। उदाहरण– (पांडव या वंशी) रोडा एवं कोटा पंजा के पहाड़ी भागो लद्दाख कांगड़ा जिला के स्पीती और लाहोल परगनो में भी भ्रतृक बहुपति विवाह पाया जाताहै।

खास लोगों में सबसे बड़ा भाई भी विवाह करके स्त्री लाता है और शेष भाई स्वतः ही उस स्त्री के पति बन जाते है।

3. द्विविवाह (ठपहंउल) जब एक स्त्री या पुरुष एक समय में केवल दो पुरुष या केवल दो स्त्रियों से विवाह करते हैं तो ऐसे विवाह को द्विविवाह कहते हैं। उदाहरण अरिगन्न एवं एस्किमो।

4. समूह विवाह (ळतवनच डंततपंहम) – समूह विवाह में पुरूषों का एक समूह स्त्रीयों के एक समूह से विवाह करता है और समूह का प्रत्येक पुरूष समूह की प्रत्येक स्त्री का पति होता है। यह प्रथा आस्ट्रेलिया की जनजातियों में पायी जाती है। जहाँ एक कुल की सभी पुत्रीयाँ दूसरे कुल की भावी पत्नीयाँ समझी जाती हैं। बेस्टरमार्क के अनुसार– ऐसे विवाह तिब्बत भारत एवं लंका के बहुपतित्व वाले समाजों में पाये जाते हैं।

टोडा लोगों में बहुपतित्व उन बहुपत्नीत्व का मिश्रण हो रहा है क्योंकि उन्होंने बालका बध की प्रथा त्याग दो है। मलेशिया समुदाय की समस्त युवा स्त्रीयों कुछ पुरूषों द्वारा हथिया ली जाती हैं। विवाह सम्बन्धी निषेध– प्रत्येक समाज में कुछ नियम होते हैं जो विशिष्ट समूह या नातेदारों में विवाह करने पर प्रतिबन्ध लगाते है इन्हे विवाह सम्बन्धी निषेध कहते है ये निम्न है– 1. निसिद्ध निकाटाभिगमन या अगम्य गमन 2. बहिर्विवाह 3. अन्तर्विवाह 4. अनुलोम विवाह एवं प्रतिलोम विवाह।

निसिद्ध या अगम्यगमन– प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में अति निकट के सम्बन्धियों से विवाह सम्बन्ध या यौन सम्बन्ध स्थापित करना निसिद्ध होता है। इस नियम को ही निकटाभिगमन निषेध कहते है। सामान्यतः पिता और पुत्री में माता एंव पुत्र में तथा सगे भाई और बहिनों में विवाह प्रायः सभी समजों में निसिद्ध है। लेकिन पेरू के इनका जनजाति प्राचीन मिश्र देशवासी तथा हवाई प्रायद्विप के अनेक घरानों के लोग अपने को कुलीन बनाये रखने के लिये भाई–बहिन में भी विवाह सम्बन्ध स्थापित करते है। मिस्र में शाही परिवार के लोग अपनी पुत्रियों से विवाह कर लिया करते थे। अडिवस नामक राजा ने अनजाने में अपनी माँ के साथ यौन व्यवहार की क्रिया की तो इतना उद्विपन हो गया कि उसने अपनी आँखें फोड ली।

मर्डाक के अनुसार यदि इसके विषम लिंगिप यौन क्रियाओं को सहभागी एक दूसरे के वास्तविक काल्पनिक या कृत्रिम नातेदारी के बन्धनों से इस प्रकार से बधे हुये है कि उनमें यौन सम्बन्ध सांस्कृतिक रूप से मना है तो यक निकटाभिगमन की श्रेणी में आता है। रेडक्लीप ब्राउन के अनुसार ष्सही शब्दो में कहे तो निकटा निगमन यौन सम्बन्धि पाप या अपराध है जो परिवार के निकट सम्बन्धियों जैसे– पिता–पुत्री, माँ – पुत्र, भई बहिन के यौन सम्बन्धों के कारण पनपता है।

निकाटामिगमन उन इन साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका तथा बेवस्टर शब्दकोश के अनुसार लोगो के साथ यौन व्यवहार है जो कि विवाह या वैवाहिकता से इस प्रकार से सम्बन्धित है कि उनमें कानूनी विवाह नही हो सकता।

रेड क्लीप ब्राउन पिता–पुत्री, भाई बहिन का ही यौन व्यावहार को ही निकाटागिगगन मानते है क्योंकि इसका विस्तार परिवार से भी अधिक मानते है और उन सभी सम्बन्धियों से यौन व्यवहार को भी आगम्यगमन की संज्ञा देते है। जिनके साथ उस समाज की संस्कृति यौन व्यवहार की स्वीकृत नहीं देती।

यदि कोई संस्कृति परिवार के सम्बन्धियों में ही यौन व्यवहार की स्वीकृत देती है तो वह निकटाभिगमन नहीं है। जैसे असम के नागा एवं टिंव में एक व्यक्ति सम्पत्ति प्राप्ति के लिए अपनी विधवा शौतेली माताओं से भी विवाह कर लेता है। उत्तरी खाना की टैलेंसी जनजाति में भाई बहन में यौन सम्बन्ध की बात सोचनी ही पाप है। वेस्टर मार्क का विचार है कि जिन लोगों का पोषण एक साथ होता है वे एक दूसरे से इतने परिचित हो जाते है कि व्यस्क हो जाने पर उनके बीच यौन आकर्षण होता ही नहीं। मौलिनोवस्की के अनुसार परिवार ही वह संस्था है जिनके द्वारा समाज की संस्कृति परम्परओं पीढ़ी दर पीढ़ी स्तान्तरित की जाती है। जिसे समाजीकरण के नाम से जाना जाता है। निकट रभिगमन निषेध सामाजिक एकता, संगठन तथा प्रगति के लिए आवश्यक है। फ्रायड़ का मत है कि निकटामिगमन का कार्य कष्ट प्रदान घनी तथा अज्ञात पूर्ण रहा है। कई बार व्यक्ति स्वंय निकटाभिगमन करने से डरते है क्योंकि वे सोचते है कि उससे पागलपन एवं अपंगता पनपती है। मिस्त्र के राज घराने के लोग इसी लिए नष्ट हो गये। भारत में टोडा जनजाति की संख्या समूह में अन्तः विवाह के कारण ही घटती जा रही है। फोर्टेन का मत है कि भाई–बहनों में विवाह इसलिए नहीं किया जाता है कि अन्य समूहो से वैवाहिक मैत्री स्थापित करने का अवसर मिलता है जिससे सुरक्षा एवं आर्थिक सहकारिता पनपती है।

मैलिनोवस्की के अनुसार निकटाभिगमन और बहिर्विवाह एक दूसरे के पूरक है। व्हाइट के अनुसार एक साथ घनिष्ठ रूप से रहने से यौन सम्बन्धी आकर्षण घटने की बजाए बढ़ भी सकता है।

छिरका हुआ अपाचे जनजाति के लोगों में दूर के चचेरे तथा ममेरे भाई बहनों में विवाह सम्बन्धी निषेध उतने ही कठोर है जितने की सगे भाई–बहनों में।

नवाहा (छंअीव) जनजाति में निकटाभिमगमन निषेध क्लूयौन के अनसार कुछ जनजातियों में एक गोत्र के दो युवक–युवति के लिए एक दूसरे से लिपटकर नाचना तक भी निसिद्ध है। निषेधो का उद्भव प्राणीशास्त्री, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक सभी कारणों से हुआ है।

मैलिनोवस्की ने कहा है कि यदि कामोन्तेजनाओं को परिवार के सीमा क्षेत्र पर अधिकार जमाने दिया जाए जो उसका परिणाम केवल परिवार में ईर्ष्याओं का फैलना प्रतियोगिताओं का बढ़ना और अन्त में परिवारिक विघटना होना ही नही होगा बल्कि यह उन आधार भूत बन्धनों को भी तोड़ फोड़ डालेगा जो की सामाजिक संगठन, एकता तथा प्रगति के लिए आवश्यक है।

(2) बहिर्विवाह– बहिर्विवाह से तात्पर्य है एक व्यक्ति जिस समूह का सदस्य है उससे बाहर विवाह करे यह समूह उस व्यक्ति की जाति जनजाति गोत्र या टोटम समूह हो सकता है जिसके बाहर विवाह करने को कहा जाता है। जन–जातियों में प्रायः अपने गोत्र और टोटम समूह के अन्दर विवाह नहीं होता है।

लुसाई एवं कूकी जनजाति गोत्र बहिर्विवाह के नियमों का पालन करती है तथा घासी जनजाति इस नियम को ताड़ सर्वनाश के समान मानती है। टोटम बहिर्विवाह का नियम भारतीय जनजातियो में प्रायः विस्तृत रूप से प्रचलित है और इसका उल्लंघन अधम्य अपराध है।

पी.एच. प्रभु ने अपनी पुस्तक श्भ्पदकप ैवबपंस वतहमदपेंजपवद में कहा है कि अपनी उत्पति के समय से लेकर प्रत्येक युग में गोत्र प्रवर और सपिण्ड की धारणा से सम्बन्धित बहिर्विवाह के नियमों में इतना अधिक परिवर्तन, संशोधन और रूपान्तरण हुआ है कि उनके मौलिक अर्थों को समझा लगभग असम्भव हो गया है।

छोटा नागपुर की मुण्डा अन्य जनजातिया गाँव बहिर्विवाह के नियम को मानती है। पंजाब के कुछ गाँवों में गाव बहिर्विवाह पाया जाता है।

असम की नागा दक्षिण भारत की दूरूला जनजातियों में वर्ग की बहिर्विवाह पाया जाता है। राजस्थान के भील जनजाति कुछ पालो (क्षेत्रीय इकइयों) में बटी हुई है और इसी आधार पर बर्हिविवाह के नियम को लागू करती है।

वेस्टरमार्क के अनुसार बहिर्विवाह का कारण नजदिकी रिस्तेदारों के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित होने को अधिक से अधिक मानना है।

लोठी एवं द्वावहाउस के अनुसार नजदीक के रिस्तेदारों के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित होने से बचने के लिए भावना मूल प्रलत्यात्मक है।

मैकलेनन ने सर्वप्रथम मानव शास्त्र को बहिर्विवाह शब्द दिया। मैकलेनेन तथा ऐडूलेंग ने बहिर्विवाह को अन्तः विवाह के विपरीत माना है किन्तु ये दोनो एक ही समाज में एक साथ प्रचलित हो सकते हैं। बहिर्विवाह संस्था को मैकलेनन ने अपहरण विवाह की परम्परा से सम्बन्धित किया है। डॉ. रिवर्स के अनुसार– बहिर्विवाह एक परम्परा है जिसमें एक व्यक्ति अपने ही अद्धीश या कुल या जनजाति के अन्य घटक समूह के भीतर विवाह करना वर्जित है।

मैकलेनन का विचार है कि जनजातियों में लड़कियों को जन्मते ही मार देने की प्रथा के कारण बहिर्विवाह प्रथा का जन्म हुआ।

हरवर्ट स्पेन्सर का विचार हैं कि बहिर्विवाह लाडाकू जनजातियों की देन है जो कि युद्ध के बाद अपने पड़ोसी समूह से स्त्रीयों का अपहरण करके ले जाते थे।

अफ्रीका के न्यूर लोगों में यह कहावत प्रचलित है कि 'हम उन्ही से विवाह करते है जिससे हम युद्ध करते है।' वधू अपहरण की प्रथा ने ही मैकलेनन को नातेदारी के अध्ययन की ओर आकर्षित किया था। कुछ लोगो द्वारा बहिर्विवाह को सामाजिक जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक माना गया है क्योंकि यह पारस्परिकता के सिद्धान्त पर आधारित है। मोंटाना के लोगों में केवल चचेरे ममेरे तथा फूफेरे भाई या बहन की कहकर पुकारा जाता है। कुछ जनजातियों में एक ही नाम के दो समूहों में विवाह निषिद्ध है जैसे– आस्ट्रेलिया की जनजाति इमु का समूह का एक पुरुष कभी भी दूसरा इमु नाम के किसी भी दूसरे समूह के स्त्री से विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं करता है।

रिजले का मत है कि मनुष्य नवीनता चहता है इसीलिए वह अपने समूह से बाहर की स्त्रियों से विवाह करता है।

आडरे रिचर्ड्स के मतानुसार पहले आखेट करना एवं फल–मूल संग्रह करना जनजातियों के लिए एक समस्या भी इस कारण लड़किया बोझ समझी जाती थी और उन्हें मार डाला जाता था किन्तु इस कमी को पूरा करने के लिए आक्रमण करने यहा की स्त्रियों को पकड़ लाया जाता था। इसी से बहिर्विवाह प्रथा का जन्म हुआ।

ई.वी. टायलर का विचार हैं कि विश्व के इतिहास में समय जनजातियों के मस्तिष्क में अपने समूह के बाहर करने और मारे जाने के मध्य सरल व्यावाहारिक विकल्प था। इसे बहिर्विवाह का बन्धक सिद्धान्त कहा जा सकता है।

राबिन फॉक्स का मत है कि प्रारम्भ में विनिमय लिए स्त्री से अधिक कोई मूल्यवान वस्तु नहीं थी क्यो वे समूह शिकारियों एवं संग्रह कर्ताओं के थे व्यापारियों के नहीं। बहिर्विवाह के कुछ स्वरूप निम्न हैं–

(1) गोत्र बहिर्विवाहः – हिन्दुओं संगोत्र विवाह है। गोत्र क अर्थ उन व्यक्तियों के समूह से है जिन उत्पत्ति एक ही ऋषि पूर्वज से हुई हो। ऋगवेद में गोत्र शब्द के प्रयोग से इसके तीन–चार अर्थ लगाये जाते है जैसे– गौशाला गाय का समूह तथा पर्वत आदि।

के.एम. कापाडिया इनकी पुस्तक श्प्दकन ापदैपश द्वारा दिये गये प्रमाणो से स्पष्ट होता है कि वैदिक में संगोत्र विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

सत्याषा हिरण्यकेशी श्रौत सूत्र के अनुसार विश्वानि जनमदशमी, भारद्वाज, गौतम, अत्री वशिष्ट, कश्यप आगस्त्य नामक आठ ऋषियों की सन्तानों को गोत्र के नाम से पुकारा जाता है। धानदोंग्य उपनिषद में गोत्र शब्द का प्रयोग वर्ग के अर्थ मे हुआ है।

विज्ञानेश्वर के अनुसार वंश परम्परा में जो नाम प्रसारित होता है उसी को गोत्र कहा जाता है उन्होंने कहा ब्राह्मणों का ही वास्तविक गोत्र होते हैं। क्षत्रियों एवं वैश्यों के गोत्र उनके पुरोहितो

के गोत्रो के आधार पर होते है शुद्रों के कोई गोत्र नहीं होतें है। मनु ने संगोत्र विवाह का विरोध किया है।

हिन्दू विवाह र्नियोश्यता निवारण अधिनियम 1949 के अनुसार अब गोत्र एवं प्रवर – विवाह सम्बन्धित बन्धनों को समाप्त कर दिया गया है। (2) प्रवर बहिर्विवाह (च्तंअंतमगंहंउल) : – वैद्धिक इनडेक्स के अनुसार प्रवर कर शाब्दिक अर्थ है आहवान करना (प्दअवबंजपमवत ैनउउंद) इरावती कर्व के अनुसार (पुस्तक –ज्ञपदीपच वतहंदपेंज व िवदकपं) प्रवर का अर्थ है क्षत्रियों में लगभग वंशकार या कुलाकार की तरह ही है। प्रवर का अर्थ है कि महान ब्राह्मण लोग हवन, यज्ञ आदि के समय गोत्र व वंशो के नाम का उच्चारण करते थे इस अर्थ में प्रवर का तात्पर्य श्रेष्ठ से ही है।

पी.एच. प्रभु का विचार है कि प्राचीन समय में अग्नि पूजा और हवन का पुचलन था । हवन करते समय ऋषि पूर्वज का नामोच्चारण करना आवश्यक था। समान पूर्वज और समान ऋषियों के नामों का उच्चारण करने वाले व्यक्ति अपने को एक ही प्रवर से सम्बद्ध माननें लगें।

(3) सपिण्ड बहिर्विवाह– मिताच्छ के अनुसार पिण्ड का अर्थ श्समस्त रक्त कणों से है अर्थात जिन व्यक्तियों में एक सामान्य पूर्वज के रक्त का समावेश है वे सपिण्ड है।

दाये भाग के अनुसार पिण्ड का अर्थ श्चावल के गोले से है जो शोध के समय पितृव्यों को चावल के गोले अर्पित करने वाले व्यक्ति सपिण्ड है। इसीलिए सपिण्ड पुरूषों की सन्तानों के विच विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं किये जा सकते।

पितृपक्ष एवं मातृपक्ष दोनो ही सपिण्ड के अन्तर्गत आते है।

इरावती कर्वे के अनुसार सपिण्ड का आशय मृत व्यक्ति को पिण्डदान देने वाले लोगों से है। हिन्दु विवाह अधिनियम के अनुसार माता की और तीन पीढ़ियों तक तथा पिता की ओर पाँच पीढ़ियों तक के रक्त सम्बन्धि सपिण्ड माने जाते है। यज्ञवल्क्य के अनसार पिता की ओर सात पीढ़ीयों तक तथा माता की ओर पाँच पीढ़ीयों तक रक्तसम्बन्ध सपिण्ड माने जाते है।

(4) ग्राम बहिर्विवाह (टपमसंहम मगंउल)– ए टोरम को मानने वाले भाई–बहन माने जाते है अतः उसमें विवाह सम्बन्ध निसिद्ध है। टोड़ा का टोरम भैंस है।

प्रमुख तथ्य–

(1) ब्लाण्ट ने कहा है कि पिता की ओर से सात तथा माँ की ओर से पाँच पीढ़ीयों को छोड़कर विवाह करने से सम्बन्धियों से विवाह करना वर्जित हो जाता है।

(2) पी.वी. काणे अपनी पुस्तक श्ळवजतं ंदक चतंअंतं पद टंकपंब सपजजतंजनतमश में कहा है कि बहिर्विवाह के द्वारा एक पीढ़ी को आपने दोषो को दूर करने का अवसर मिल जाता है। समनर एवं केलर ने अपनी पुस्तक श्जीम ैबपमदबम वि ैवबपमजलश में लिखा है अन्तर्विवाह कठीवादी है जबकि बहिर्विवाह प्रगतिवादी है।

(3) अन्तरर्विवाह (म्दकवहमउल)– अन्तरर्विवाह के अन्तर्गत एक व्यक्ति अपने समूह गोत्र, जाति प्रजाति, धर्म, क्षेत्र, वंश के अन्तर्गत ही विवाह से अभिप्राय है उस विनिमय का जिससे अपने समूह में से विवाह साथी चुनना अनिवार्य होता है।

टोडा लोगो में दो यूग्म संगठन पाये जाते है– (1) टरथा रोल (2) टिवालियल। ये दोनों अपने–अपने युग्म संगठन में ही विवाह करते है।

राजस्थान में भील दो भागों में विभाजित है – (1) उजले भील (2) मैले भील उज्जले भी को भगत तथा मैले भील को अमगत भी कहते है। ये दोनों अन्तर्विवाही है। केटकर ने व्यंगात्मक शब्दो में लिखा है कि आज कुछ हिन्दू जातिया ऐसी है जो इस परिवारो के बाहर विवाह नहीं कर सकती है।

(4) अनुलोम विवाह तथा प्रतिलोम विवाह (।दनसवउं उंततपहम ंदक सलचवहंउल)

(1) अनुलोम विवाह – जब एक उच्च वंशी जाति उपजाति कुल एवं गोत्र के लड़के का विवाह किसी लड़की से किया जाता है जिसका वर्ण जाति उपजाति एवं कुल लड़के से नीचा हो तो ऐसे विवाह को अनुलोम विवाह कहते है। एक बाह्मण लड़के का विवाह एक क्षत्रीय या वैश्य लड़की से होता है तो यह अनुलोम विवाह होगा।

मनु ने शुद्र कन्या के द्विज लड़के के साथ विवाह को अनुचित बताया है। ऐसे विवाह से उत्पन्न संन्तान को मनु ने एक जीवित शुद्र कहा है तथा उसे सम्पत्ति में कोई भी अधिकार नहीं होता है।

कुलिन विवाह का तात्पर्य है कि एक जाति अथवा उपजाति में विवाह करने पर वधू के लिए वर उच्च कुल या गोत्र से प्राप्त किया जाता है। कुलिन विवाह का सर्वाधिक प्रचलन संगठन में रहा है।

रिजले का मत है कि आरम्भ में अन्तर्वर्ण विवाहो का प्रचलन इण्डी आर्यन प्रजाति में हुआ। रिलने ने बंगाल की पोद जाति में अनुलोम विवाह पाया। नमबुद्धी ब्राह्ममणों में सबसे बड़े लड़के का विवाह अपनी ही जाति में किया जाता है। अन्यं लड़को क्षत्रिय या नायरो से शादी करनी पड़ती है।

(2) प्रतिलोम विवाह– इस विवाह में लड़की उच्च वर्ण, जाति, उपजाति, कुल या वंश की होती है। और लड़का निम्न वर्ण, जाति उपजाति, कुल या वंश का होता है। यदि एक ब्राह्ममण लड़की का विवाह किसी क्षत्रिय, वैश्य, अथवा शुद्र लड़के से होता है तो इसे प्रतिलोम विवाह कहा जाएगा।

ऐसे विवाह से उत्पन्न संन्तान को चांडाल अथवा निषाद कहा जाता था। हिन्दू विवाह अधिनियम 1949 एवं हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 में अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह को वैद्य माना जाता है।

स्मृतिकारों ने प्रतिलोम विवाह की आलोचना की है अधिमान्य विवाहः– जब विवाह साथी चुनाव करते समय एक वर्ग विशेष को ही तुलना में वरीयता या प्राथमिकता दी जाती है तो ऐसे विवाह के अधिमान्य विवाह कहते है।

लूसी मेयर यदि वांशनिय हो कि कोई व्यक्ति एक वर्ग के व्यक्ति से ही विवाह करे तो उसे अधिमाना कहते है। लेवी स्ट्रास का मत है कि अधिमान्य विवाह का मुख्य उद्देश्य जनजाति की आन्तरिक आवश्यकता को सुहर है।

अधिमान्य विवाह के चार प्रमुख प्रकार निम्न है संलिंग सहोदरज विवाह– इसे चचेरे–मौसेरे, भाई–बहनों का विवाह कहते है। ऐसे विवाह में एक ही लिंग के सहदरो की में विवाह होता है जैसे दो बहनों यां दो भाईयों के लड़के लड़किया विवाह करते है ।

मुसलमानों में दोनों की प्रकार के विवाह प्रचलित है। उस की खाना बदोश जनजाति बेडोइन ने दो भाईयों के लड़के–लडकिया परस्पर विवाह करते है, क्योंकि यह जनजाति पालन का कार्य करती है अतः न्यू कार्य के लिए तथा शत्रुओं से रक्षा के लिए समूह में एकता जरूरी है। भारतीय जनजातियों में ऐसे विवाह साधारणतः है।

(2) विलिंग सहोदरज विवाहः – इसे ममेरे, फूफेरे भाई–बहनों का विवाह भी कहते है ऐसे विवाह विलिंग सहदरजो की संतानो में होते है। यह माता–पिता तथा पितृश्रीय दोनों होते है यदि पुरुष अपने मामा की लड़की से विवाह करता है तो उसे भातृपक्षीय विलिंग सहोदरज कहते है। यदि वह अपनी बुआ की लड़की से विवाह करता है तो उसे पितृ पक्षीय विलिंग सहोदरज विवाह कहते है। पश्चिमी आस्ट्रेलिया तथा लेक आयर में प्रत्येक व्यक्ति को अपने मामा की लड़की से विवाह करने का पूरा अधिकार था।

पश्चिमी आस्ट्रेलिया की करीरा या कदियेरा जनजाति में तथा फिजी द्विप में भी इस प्रकार के विवाह प्रचलित थे। गिल्याक, कामचड़ल तथा दुगंस आदि दक्षिणी एशियाई जनजातियों में ममेरी बहन से विवाह की प्रथा है। उतरी बर्मा की पहाडियों में रहने वाली कचिन और पुरूष जनजातियों में पत्नी माँ के कुल से ही प्राप्त की जाती है। भारत में मणिपुर के पुरुष कूकिंयों, गोंड़ जनजाति में तथा घरिया ओसंव कादर असम की मीकिर और गीलो में भी इस प्रकार के विवाह प्रचलित है। मध्य प्रदेश की जनजातियों में यदि कई परिवार इस प्रकार के विवाह के लिए तैयार न हो तो उसे दूसरे पक्ष को हर्जाना देना होता है।

गोंड़ लोग ऐसे विवाह को (दुध लौटाना) कहते है। क्योंकि जिस परिवार से पत्नी के रूप में लड़की ली जाती है उस परिवार को पुनः पत्नी के भाई के पुत्र (भांजा) को पत्नी देकर अर्थात मामा के लड़के को फूफा की लड़की देकर पुनः दुध लौटाया जाता है। श्रीमती इरावती कर्वे ने दक्षिणी भारत में कुछ ब्राह्ममणों एवं जनजातियों में मामा–भांजी विवाह की प्रथा का उल्लेख किया है। एक पुरुष वहा विवाह में अपनी छोटी बहन की लड़की से विवाह नहीं करता है। कर्नाटक विवाहया पति भ्रातत विवाहः अंग्रेजी का स्मअपतंजमश शब्द लैटिन भाषा के स्मअपतंजमश से बना है। जिसका अर्थ है पति का भाई । देवर शब्द का अर्थ है द्विवर अर्थात दूसरा पति। देवर विवाह को दो भागें में बाँटा जा सकता है।

(1) पति के बड़े भाई अर्थात ज्येष्ठ से विवाह (ययाकर)

(2) पति के छोटे भाई से विवाह दूवान्स पिचई ने अफ्रीका की न्यूर जनजाति में प्रेत विवाह का उल्लेख किया है। बच्चे के प्राणीशास्त्रीय पिता को प्रतिपुरूष पिता कहते है। थारू तथा भील जनजातियों में देवर विवाह का प्रचलन है।

खस तथ तोड़ा लोगों में बहुपति प्रथा का प्रचलन होने के कारण बड़े भाई द्वारा विवाह करके लाई गयी पत्नी पर सभी छोटे भाइयों का अधिकार होता है।

टायलर के अनुसार ऐसे विवाह दो परिवारों के कर्तव्य शोध को प्रकट करते है।

(4) साली विवाह या पत्नी भगिनि विवाह ऐसे विवाह में एक पुरूष अपनी पत्नी की बहन या बहनो से विवाह करता है।

यह दो प्रकार के होता है–

(1) सीमित सरनी विवाह– मृत्यु या सन्तान न होने पर ऐसा विवाह होता है।

(2) समकालिन साली विवाहः– इसमें पत्नी की छोटी बहने स्वयम पत्नीया बन जाती है। टायलर एवं फ्रेजर ने कहा कि केवल साली विवाह साथ–साथ प्रचलित है किन्तु कही पर पृथक–पृथक रूप से भी है।

नोट – (1) लोवी के अनुसार अत्यधिक बधु मूला और स्त्रियों की कभी पति भ्राता विवाह का कारण है।

(2) टायलर दोनों विवाहों का कारण दो परिवारों के आपसी कर्तव्य बोध को बताया है।

अन्य विशेष प्रकार के विवाह

(1) संथल में विधुर विधवा परसारे विवाह करते है।

(2) मातृ सत्तात्मक गारो जनजाति में एक दामाद अपनी विधवा सास से विवाह करता है ।

(3) गोंड़ में दादा एवं पोती विवाह होता है।

(4) पेरी के अनुसार लुशाई पर्वत पर रहने वाली साधेर जनजाति एवं सेमा नागाओं में एवं पुत्र अपनी सभी मॉ को छोड़कर अन्य विधवा स्त्रीयों से विवाह करता है।

(5) लाखेर जनजाति में पिता अपने पुत्र की विधवा स्त्री से विवाह कर लेता है।

(6) उत्तर प्रदेश में कही–कही पर दादी एवं पोते में विवाह हो जाता है।

(7) उत्तरी जनजिरिया की पैलविंके तथा बूरा जनजातियों पौते को दादा की पत्नीया उत्तराधिकार में मिलती है।

(8) कमार जनजातियों में भी दादा पोती विवाह पाया जाता है।

(9) विवाह के पूर्व काम सम्बन्धों की अनुमति मुरिया, गोंड, ओराव, भोरियो, कुमार तथा भील रहती है।

(10) माही पर्व के अवसर पर हो मे बासन्दा के अवसर पर घासी में तथा खद्दी त्योहार पर ओरांव में विवाहित स्त्री पुरूषों को दिन भर नाचने–गाने और जाने के बाद शयन के लिये किसी भी साथी का चुनाव की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

(12) धारू महिलायें पर पुरूष के घर जाती हैं।

(13) जौन सवारकर की संजायत कोल्ला तथा पंडित तथा देहरादुन की घस जनजाति में दोहरा मापदण्ड पाया जाता है।

जनजातियों में विवाह साथी चुनने के तरीके

जनजातियों में विवाह साथी चुनने के अनेक तरीके प्रचलित है जो निम्न है–

1. परिवीक्षा विवाह – विवाह से पूर्व साथी रहने के अवसर दिया जाता है तथा यौन सम्बन्धों अनुभवों को प्राप्त करने का अवसर दिया जाता है। दारलुंग एवं कुकी में प्रेमी अपनी प्रेमियों के घर घर जाकर उसे 5 माह तक रहता है।

हाबल के अनुसार इस दौरान लडकी की संतानोत्पति की शक्ति का भी पता चल जाता है और यदि वह गर्भवती हो जाती है वो दोनों का विवाह सम्पन्न करा दिया जाता है।

2 हरण वाह– कन्या का अपहरण करके विवाह किया जाता है किन्तु अब अभिनयात्मक तरीके से अपहरण की प्रथा है बुशमैन में पाया जाता है।

अफ्रीका की बहिमा जनजाति में वह लघु पशों के लोग रस्सा कस्सी करत हैं। आस्ट्रेलिया की मेरीबोरी नामक स्थान के लोग अपने जजमानों के यहाँ उत्सवों में जाते थे और समय उस परिवार की स्त्रियाँ ले आते थे।

अमरिकन इंडिपन्स एवं एस्किमो में अपहरण विवाह पाया जाता है तथा नागा, भील गौंड तथा असम बिहार व मध्य प्रदेश में भी है। ये लोग उस विवाह को अपर टिपी कहते है। उनमें वधु मूल्य की दर अधिक होने के कारण इस प्रथा का प्रचलन है।

गोंड इसे पोलीओपुर कहते हैं। लड़की की माता दिखावती झगड़ा करते है तथा लडकी भी रोने का झूठा प्रदर्शन करने लगती है। इसे संस्कारात्मक हरण कहा जाता है। घरिया, एवं वरिहोर में लढका सार्वजनिक स्थान पर लडकी के ललाट पर तेल मिश्रित सिन्दूर लगा देता है फिर दोनों का विवाह करा दिया जाता है। असम में शारिरिक हरण पाया जाता है।

मैकलेनन के अनुसार विवाह का सर्वप्रथम हरण विवाह ही था।

3. परीक्षा विवाह – पुरुष के साहस और शौर्य की परिक्षा ली जाती है।

गुजरात से भील होली के अवसर पर दोनों घोडों नामक उत्सव मनाया जाता है। असुर के पड पर नारियल व गुड बाँध दिया जाता है।

कोमांचेजन जाति में कोई व्यक्ति अपनी भावी सास को सदैव शिकार भेजता रहता है तो विवाह की संभावना बढ़ जाती है।

अफ्रीकन जनजातियों के अधिकारिक नमण्ड गले में लटकाने वाले व्यक्ति को बहादुर माना जाता है। नागाओं से युद्ध में शरीर काटने वाले के विवाह के अवसर अधिक होते हैं। ब्रिटिश के गुयाना की अरावाक जनजाति में युवक को चलती हुई नाव में खड़े होकर एक निश्चित स्थान पर निशाना लगाना होता है। यह विवाह गुजरात भीलों–असम के घासी तथा उड़ीसा के कन्ध लोगों में पाया जाता है।

4. क्रय विवाह इस विवाह मे वधु मूल्य दिया जाता है।

साईबेरिया की करिगिस के जनजाति में वधु मूल्य ज्यादा है।

न्यूगिनी की बुकार्क जनजाति में वधु मूल्य चुकाने के बाद ही पति को यौन सम्बन्ध का अधिकार होता है।

अफ्रिका की हो जनजाति में लड़की पैदा होने से पहले ही सौदे व सगाई हो जाती है। तिलिगिट जनजाति में तलाक होने पर पर पति को कन्या मूल्य वापस देना होता है।

भारत में नागा गौंड, संथाल, हो, ओराव, घरिया, कुकी, भील में क्धु मूल्य पाया जाता है। लोधी वधु मूल्य का आर्थिक पक्ष के तथा स्त्री की उपयोगिता भी है।

हावहाउस हवीलर एवं गिन्सवर्ग ने 434 जनजातियों का अध्ययन किया जिनमें से 303 में वधु मूल्य प्रचलित है।

मर्डाक ने अपने अध्ययन में 50 प्रतिशत समाजों में इसका प्रचलन पाया है।

दक्षिण अफ्रीका की बाटु एवं थोगा में लावेध वधु मूल्य देने की प्रथा है। लाबोला में ढोर तथा कम्बल दिये जाते है।

लागेला कई परिवारों में आर्थिक सहयोग पैदा करता है।

बांटु में कहावत है कि दोर दो तो संतान हो।

हो (भारत) में फसल तथा आभूषण मुण्डा में मुद्रा ओरांव तथा संथालों में दुधारू पशु तथा भीलों में भाले कमान दिये जाते हैं।

लिंटन– वधु मूल्य वास्तविक रूप से स्त्री से पैदा होने वाले बच्चों पर अधिकार का क्रय है। कैलिफोर्निया के प्रत्येक लोगों में व्यक्ति का सामाजिक पद और प्रतिष्ठा इस बात पर निर्भर है उसकी माँ के विवाह में कितना वधू मूल्य चुकाया था या दिया गया था।

दक्षिणी पश्चिमी साइबेरिया में वधु मूल्य को बढाते जाना ही कुलिनता है।

न्यूगिनि की बुकाई में वधु मूल्य चुकता करने के बाद ही यौन सम्बन्ध कायम हो सकते है तथा बिना चुकता होने पर वह पत्नी अपने माता–पिता के घर ही रहती है।

वधु मूल्य चुकाने के लिये दामाद अपने सास–ससुर की सेवा करता है।

इवान्स विचार्ड ने 241 जनजातियों का अध्ययन किया 130 में सेवा विवाह पाया।

5. सेवा विवाह

चुरची, कोश्पाक, पोकाधिर, बिनेबायो द्विदात्सा, कोगांये किरचाक में यह प्रचलित है।

विनेबागो तथा कोमांचे में दामाद प्रतिदिन अपने ससुराल को शिकार भेंट करता है।

भारत में गोंड बैगा तथा विरहोर में सेवा विवाह होता है।

सेवा करने वाले को (ससुराल में) गौंड लोग लामर्थ और बैगा लोग लामसेन या गहाभिया कहते है।

विरहोर में ससुर दामाद को रूपया उधार देता है। जिससे वह वधु मूल्य चुका सके । नेपाल में गोरखा श्रमिक जौनसार के लोगों के यहा खेती में श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं।

6. विनिमय विवाह बहन को देकर बहन पति की बहन को दिया जाता है।

आस्ट्रेलिया तथा टीरेस स्ट्रेट द्वीप समूह में विनिमय विवाह पाया जाता है तथा शोशोन इंडियन्स में भी पाया जाता है।

शोशोन इंडियन्स में विनिमय विवाह पाया जाता है। असम की घासी में विनिमय विवाह पाया जाता है।

लोवी ऐसे विवाह से किसी भी परिवार की हानी नहीं होती है।

फ्रेंज लोआस दोनों परिवार किसी को भी वधू मूल्य देकर एक दूसरे को वधु मूल्य दे देते हैं।

हाबल– यह बिना खर्च के पत्नी प्राप्त करने का एक साधन है। 7. सहमति या सहपालायन विवाह सन्तान होने पर वे स्वयं लौट आते हैं। सहपलायनों को दोनों पक्षों के लोग गॉव लौटा लाते हैं याधीईनी में भाई बहन का विवाह तय करता है ऐसा न होने पर बहन प्रेमी से विवाह कर सकती है।

फुरमई जनजाति में सहपालायम पाया जाता है।

हो तथा भील में भी सहपलायन पाया जाता है।

हो इसे राजीखुशी विवाह कहते है।

हव विवाह लडकी लडका के यहाँ जबरन रहने लगती है। विरहोर हो ओराव, षमार, मुण्डा में यह प्रचलित है।

हो इसे अनादर, ओराव, निर्वोलोक तथा कमार पैठू कहते है।

दत्तक विवाह दामाद गोद लिया जाता है। बाद में उससे से पुत्री की शादी की जाती है। दत्तक विवाह का दूसरा रूप कल्पित विवाह है।

अफ्रीका की न्यूर जनजाति में एक व्यक्ति जिस व्यक्ति की हत्या करता है तो उसकी विधवा को मूल्य चुकाना पड़ता है तथा मूल्य से विधवा का यौन सम्बन्ध कराया जाता है।

10. विधवा उत्तराधिकार विवाह– सेमानागाओं में पुत्र अपनी सगी मॉ को छोड़कर सभी विधवा माताओं से विवाह करता है।

गारे ये पुत्री के पति को अपनी विधवा सास से विवाह करना होता है (यह विधवा सास से विवाह केवल सम्पति के लिये की जाती है।)

कुछ जनजातियों में विवाह

भील – निवास, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, आन्ध्रपदेश एवं मैसुर ।

अरावली से विंध्याचल एवं सतपुडा तक प्रसार ।

व्यवसाय –कृषि

जातिय संरचना– पूर्व द्रविड भील के लिये संस्कृत में निषाद शब्द का प्रयोग हुआ है। ये लोग अन्तः विवाही होते है।

ये लोग बर्हिविवाह वैध संगठन में विभाजित होते है।

एक वैद्य संगठन के सभी व्यक्ति परस्पर शब्द द्वारा जाने जाते है तथा परस्पर विवाह करते हैं।

प्रत्येक द्वैध संगठन कई बर्हिविवाह है।

वंश का निर्माण पांच या छः पीढ़ियों से मिलकर होता है। जिसमें कई परिवार होता है। परिवार को वासीलु कहते है।

क्रय विवाह तथा द्वव विवाह पलयान विवाह, सेवा विवाह एवं विनिमय विवाह का प्रचलन पाया जाता है। वधु मूल्य पाया जाता है।

दूल्हे के घर जाकर दूल्हन को सर्वप्रथम घर का चूल्हा दिखाया जाता है। एक पुरूष अपने साफे में से कुछ टुकडा फाडकर अपनी को देता है जिसका अर्थ है विवाह सम्बन्धों की समाप्ति ।

खस राजपूत पांडवों की संतान

देहरादून को जौनसार बाबर परगना टिहरी गढवाल और हिमांचल के कुछ भागों में निवास।

मातृक बहुपति प्रथा का पालन किन्तु अब समाप्त होता जा रहा है।

तलाक का अस्तित्व।

टोडा – निलीगिरी पहाड़ों पर निवास तथा बहुपति परिवार ।

पुरसुतपिमी– यह संतान निर्धारण का एक संस्कृति तरिका है। जब स्त्री गर्भवती होती है तो भाईयों में से कोई भी उसे पाचवे महिने में एक धनुष भेट करता है। यह प्रथा पुरसुतपिमी नाम से जानी जाती है उत्पन्न होने वाली संतान का पिता सामाजिक रूप से यही भाई माना जाता है चाहे प्राणीशास्त्रीय रूप से पिता कोई अन्य भी हो सकता है।

डॉ. रिवर्स ने भविष्यवाणी की थी किटोग लोगों में बहुपतित्व की प्रथा बहुपत्नीत्व की प्रथाओं का मिश्रण होने पर एक पतित्व प्रथा का विकास होगा।

कुछ विशेष तथ्य

1. छोटा नागपुर की ओराव जनजाति में प्रत्येक कुवारें लडके की एक प्रेमिका होती है जिसे पिल्लो कहा जाता है।

2. दरोकई जनजाति में मातृसतात्मक परिवार पाया जाता है।

3. डी.एन. मजुमदार की पुस्तक है।

4. जी.डब्ल्यू. स्टोव की पुस्तक है।

5. डॉ. योगेश अटल की पुस्तक आदिवासी भारत है।

6. डॉ. एसी.सी. दूबे की पुस्तक मानव तथा संस्कृति है।

हिन्दू विवाह (भ्पदकन डंततपंहम)

मनु ने मनुस्मृति में कहा कि विवाह यौन सम्बन्धों के उचित नियन्त्रण एवं इस लोक व परलोक के सुख के लिए आवश्यक है। शतपथ ब्राह्मण पत्नी निश्चित रूप से पति का अदृश है, अतः जब तक पुरूष पत्नी प्राप्त नहीं करता एवं सन्तान उत्पन्न नहीं करता तब तक वह पूर्ण नहीं होता। निकाल्ट हिन्दुओं में यौन स्वच्छन्दता पायी जाती है। जिसे फसल कटने पर आयोजित होने वाले उत्सवों में देखा जा सकता है।

हिन्दुओं के लिए विवाह एक धार्मिक संस्कार है। डॉ.के.एम. कथा दिया –हिन्दुओं में विवाह प्राथमिक रूप से कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए होता है, इसीलिए विवाह का आधारभूत उद्देश्य धर्म था।

मनु 'माँ बनने के लिए ही स्त्रियों की उत्पत्ति हुई है एवं पिता बनने के लिए ही पुरुषों की इसलिए वे आदेश देते है कि पुरूषों को अपनी पत्नी के साथ ही धार्मिक कार्य सम्पन्न करने चाहिए।

हिन्दू विवाह में आर्थिक कार्यों को सर्वाधिक महत्व दिया गया। पुत्र प्राप्ति हिन्दू विवाह का दुसरा बड़ा उद्देश्य है। हिन्दू आस्थाओं में अर्द्धनारीश्वर की कल्पना, स्त्री तथा पुरूष के परस्पर पूरक होने का परिचय देती है।

गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों का मूल आधार माना गाया है। विवाह का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य भूमिकाओं की व्यवस्था से सबन्धित है। (लेजमउंस त्वसमे)

सामान्य अर्थ एवं परिभाषाएँ

कुछ धार्मिक संस्कारों द्वारा समाज से मान्यता प्राप्त स्त्री पुरुष का विधिवत मिलन ही हिन्दू विवाह है। जिसका उद्देश्य धार्मिक रूप से पुत्र प्राप्ति एवं रति के प्रयोजन को पूरा करना है।

डॉ. पी.एन.प्रभु हिन्दुओं के लिए विवाह एक संस्कार है, अतः विवाहित पक्षों का परस्पर सम्बन्ध पवित्रता (पावन) से परिपूर्ण होता है न कि समझौता परक।

मनु – सक्ति की गतिशीलता के लिए परमात्मा ने अपने को आगे किए तोगार्डस विवाह पारिवारिक जीवन का प्रवेश द्वार है–स्त्री तथा पुरुष।

मनु – विवाह एक सामाजिक संस्था है जो विपरीत लिंगीय सदस्यों सम्बन्धों को नियमित तथा नियन्त्रित करती है।

वेल्ड–विवाह स्थायी रूप से एक पत्नी पती के प्रेम सम्बन्ध को कहते है।

मेघा तिथि विवाह कन्या को पत्नी बनाने के लिए निश्चित क्रम से की जाने वाली अनेक विधियों से सम्पन्न होने वाला पाणिग्रहण संस्कार है जिसकी अन्तिम विधि सप्तर्षि दर्शन है।

कुछ तथ्य

ब्लड़, जांज और स्नाइडर, बोमन, बाबर एवं वर्जेस – ''विवाह प्राथमिक सम्बन्धों की भूमिकाओं की एक व्यवस्था है।'' हिन्दू विवाह एक संस्कार है।

कुस (ज्ञवबे) विवाह एक विभाजन रेखा है जो कि जनक परिवार (थ्ंउपसल व ि व्तपमदजंजपवद) तथा जनन परिवार के बीच दोनों परिवारों में व्यक्ति की भूमिका के सन्दर्भ में खींची जाती है।

पोपनों ने विवाह के पाँच तत्व बताए हैं –

• यौन इच्छा, श्रम विभाजन, घर आर बच्चों की इच्छा, मित्रता तथा आर्थिक सुरक्षा।

बोमैन ने व्यक्तित्व सन्तुष्टि को विवाह का उद्देश्य नहीं माना है। इसे प्रतिफल कहा है। मजूमदार यद्यपि नियमित तथा सामाजिक मान्यता प्राप्त यौन सन्तुष्टि विवाह का मूल कारण परम्परागत हिन्दू समाज में विवाह के उद्देश्य धर्म, संन्तान, तथा रति।

कापड़िया– विवाह अभी भी धार्मिक संस्कार के रूप में जारी है, केवल नैतिक स्तर ऊँचा उठा है। कृष्ण की पत्नियों की संख्या सोलह हजार एक सौ आठ थी।

1. ब्रह्म विवाह – यह सबसे उत्तम कोटि का विवाह है। श्रेष्ठ एवं शीलवान गुणीवर को स्वय बुलाकर उसे वस्त्र तथा आभूषण से सजायी गयी कन्या को दान करना ही ब्राह्म विवाह कहलाता है। इस विवाह से उत्पन्न सन्तान (पुत्र) अपनी दस पीढ़ीयों का उद्धार करता है। सर्वाधिक प्रचलन इसी विवाह का है। ऋग्वेद में सोम के साथ सूर्या के विवाह का दृष्टान्त इसी विवाह का स्वरूप है। समान वर्ण में कन्या का मूल्य देकर विवाह।

2. दैव विवाह – मनुस्मृति में कहा गया है कि, यज्ञ के समय यज्ञ को समुचित रूप से कराने वाले पुरोहित को जलंकारों से सुसज्जित करके जब कन्या दान में दी जाती है, तब इस प्रकार के विवाह को दैव विवाह कहा जाता है। इस विवाह से सात पिढ़ियों के उद्धार की बात कही गयी है।

डॉ. राजबली पाण्डेय ने ऐसे विवाह को बहु–विवाह के समकक्ष माना है।

ए.एल. अल्तेकर, ''देव–विवाह वेदिक यक्षों के साथ ही लुप्त हो गए।''

3. आर्य विवाह – मनु के अनुसार इस प्रकार के विवाहों में वर अपने ससुर को एक गाय और एक बैल अथवा दो गाय और दो बैल देता है। तथा पत्नी प्राप्त करता है। विवाह के इच्छुक ऋषिको अपने भावी श्वसुर को उपर्युक्त सामग्री देनी पड़ती थी। यह सामग्री कन्यामूल्य (ठतपकम च्तपबम) नहीं होती थी। इस विवाह का सम्बन्ध ऋषि से है।

4. प्रजापत्य विवाह– यह विवाह अपने स्वरूप में ब्रह्मविवाह के समान ही होता है। इसमें कन्या – का पिता वर–वधू को कहता है, ''तुम दोनों मिलकर गृहस्थ धर्म का पालन करना तथा तुम दोनों का जीवन सुखी और समृद्ध हो।'' तथा वर की पूजा करके कन्या का दान करता है। वशिष्ठ तथा आप ने प्रजापत्य विवाह का औचित्य तथा अस्तित्व दोनों ही स्वीकार नहीं किया है। डॉ. अल्तेकर का कहना है कि विवाह के आठ स्वरूपों की संख्या को पूर्ण करने के लिए ही इस पद्धति को पृथक रूप दे दिया है। यह विवाह सम्भवतः निर्धन वर्ग में प्रचलित रहा होगा। बिना लेन–देन के विवाह (लड़के द्वारा इसमें पहली) पत्नी के जीवित रहने तक दूसरा विवाह न करने की शपथ लेनी पड़ती थी ।

5. असुर विवाह– इसमें कन्या के पिता को वर द्वारा मूल्य दिया जाता है। यह एक आर्थिक अनुबन्ध होता है। इसका प्रचलन का कारण पितृसत्तात्मक परिवारों में सन्तान को सम्पति माना जाना था। इसमें कन्या मूल्य (ठतपकम – च्तपबम) दिया जाता है। निम्न वर्ग में इसका प्रचलन है। उच्च वर्ग में भी कन्या को उसके माता–पिता से खरीदा जाता है। यह निकृष्ट माना जाता था।

6. गन्धर्व विवाह – स्त्री पुरुष के प्रणय का परिणय में परिवर्ति हो जाना ही गन्धर्व विवाह कहलाता है। इसे प्रेम विवाह कहा जाता है। वास्यायन अपने काम सूत्र में इसे एक आदर्श विवाह मानते है। इसमें न तो माता–पिता की सहमति की आवश्यकता है और न संस्कारों या दहेज की।

7. राक्षस विवाह – लडाई–झगडा करके, छीन–झपट कर, कपटपूर्वक या युद्ध में हरण करके किसी स्त्री से विवाह कर लेना राक्षस–विवाह कहा जाता है। मनु, ''मारकर, अंग छेदन करके, घर को छोड़ कर, हल्ला करता हुआ, रोती हुई कन्या को बलात अपहरण करके लाना राक्षस विवाह कहलाता है।'' चूँकि ऐसा विवाह विशेष रूप से क्षत्रियों में ही होते थे। इसीलिए इसे क्षत्रि विवाह भी कहते है। कृष्ण रूकिमणी, अर्जुन सुभद्रा एवं पृथ्वीराज–संयोगिता के विवाह इसका उदाहरण है।

8. पैशाच विवाह – यह अति निम्न कोटि का है। मनु ''सोई हुई, उन्मत्त, मदिरा–पान की हुई अथवा राह में अकेली जाती हुई लड़की के साथ कोई व्यक्ति बलपूर्वक कुकृत्य करके बाद में उससे विवाह करले तब ऐसे विवाह को पैशाच विवाह कहा जाता है जो विवाह के सभी स्वरूपों में सबसे अधम है।'' याज्ञवल्म्य, ''स्त्री की अनभिज्ञता में उससे विवाह कर लेना भी छल–पृवृत्ति का ही द्योतक है अतः ऐसा विवाह भी पैशाच की ही श्रेणि में आएगा।'' यह विवाह समाज में अवैध था। ब्राह्म विवाह सर्वोत्तम समझा जाता है। दैव, आर्ष और राक्षस विवाह का समाज से पूर्णतया लोप हो चुका है। स्मृतियों में ब्राह्म विवाह, दैव विवाह आर्ष विवाह तथा प्रजापत्य विवाह को ही मान्यता दी गयी है।

बाल विवाह निग्रह (निरोध) अधिनियम 1929

(जेम बेपसक डंततपंहम त्मेजतंपदज ।बज 1929)

यह 1 अप्रैल 1930 को लागू हुआ। 18 वर्ष से कम लड़के एवं 14 वर्ष से कम लड़की का विवाह अपराध है।1978 में सुधार के बाद लड़के की आयु 21 वर्ष तथा लड़की की 18 वर्ष की गई। हिन्दू विवाह निर्योग्यता निवारक अधिनियम 1946 (जेम भ्पदकन डंततपंहम क्पेंइपसपजपमे त्मउवअंस ।बजए 1946) इसके द्वारा एक ही गोत्र और प्रवर के लोगों के बीच विवाह वैध है। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के पारित होने के बाद यह अधिनियम निरस्त हो गया है।

अधिनियम 1949 (जेम भ्पदकन डंततपंहम टंसपकपजल ।बज,ए1949) 1940 तक हिन्दूओं में प्रतिलोम विवाह अवैध तथा अनुलोम विवाह अनुमान्य था। किन्तु इस अधिनियम से भिन्न जातियों धर्मो, उपजातियों एवं विश्वासों के लोगों के बीच विवाह को वैधता मिली। लेकिन एक हिन्दू एवं मुसलमान के बीच विवाह को बैध नहीं माना गया। 1955 के अधिनियम के बाद यह नियम भी निरस्त हो गया।

हिन्दू विवाह वैधता

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जेम भ्पदकन डंततपंहम ।बजए 1955)

यह मई 1955 से प्रभावी हुआ। जम्मू–कश्मीर में अप्रभावी है। हिन्दू शब्द में जैन, बौद्ध, सिख और अनुसूचित जातियाँ सम्मिलित हैं।

सन 1986 में संशोधन के बाद न्यायलय ने विवाह विच्छेद के लिए प्रार्थना पत्र तभी दिया जा सकता हैं जबकि विवाह के बाद दो वर्ष पूरे हो चुकें हो जबकि पहले तीन वर्ष था। पति भी गुजारा भत्ता के लिए दावा कर सकता है।

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (जीम ैचमबपंस डंततपंहम ।बजए 1954)

13 अप्रैल 1955 से लागू इस अधिनियम से 1872 का विशेष विवाह अधिनियम निरस्त हो गया। इसके अन्तर्गत विवाह अफसर द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 (जेम भ्पदकन ॅसपकवूे त्मउंततपहम ।बजए 1856) दहेज निषेध अधिनियम, 1961 (जेम क्वूतल च्तवीपइपजपवद ।बजए 1961)

20 मई 1961 को पारित हुआ। इसका विधेयक 27 अप्रैल 1959 को विधि मन्त्री श्री ऐ० के० ऐन द्वारा लोक सभा में प्रस्तुत किया गया था। यह मुस्लमानों पर लागू नहीं है। 2000 रूपये तक के उपहारों की अनुमति देता है। उल्लंघन पर 6 माह का कारावास अथवा 5000 रूपयें तक का अर्थदण्ड । अधिनियम में जून 1986 में संशोधन हुआ।

मनु जिस प्रकार सभी छोटी और बड़ी नदियाँ अन्त में समुद्र में ही स्थायी विश्राम पाती है। उसी प्रकार सभी आश्रमों के व्यक्ति गृहस्थ के ही हाथों सुरक्षा तथा स्थायित्व प्राप्त करते है।" हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार (भ्पदकन डंततपहम . ।ैबतंउमदज) संस्कार शब्द का शाब्दिक अर्थ का आशय है कि श्शुद्धिकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाना। प्रमुख बिन्दु निम्न हैं जो संस्कार का भाव परिलक्षित करते हैं।

1. धर्म पर आधारित विवाह

2. विवाह का स्थायित्व

3. ऋणों से मुक्त होने के लिए

4. मोक्ष प्राप्ति का साधन

5. धार्मिक अनुष्ठान एवं संस्कार

पी.पी. काणे ने हिन्दू विवाह सम्पन्न होने में 39 प्रमुख अनुष्ठानों एवं संस्कारों का उल्लेख किया है। कुछ प्रमुख धार्मिक अनुष्ठान एवं संस्कार निम्न हैं–

(क) वाग्दान घर–पक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है एवं कन्या पक्ष, द्वारा उस प्रस्ताव को स्वीकार किया जाता है। किन्तु अब यह प्रस्ताव सामान्यतः कन्या पक्ष द्वारा रखा जाता है एवं वर–पक्ष स्वीकार करता है।

(ख) कन्यादान

(ग) विवाह होम

मुस्लिम विवाह

इस्लाम धर्म की स्थापना हजरत मुहम्मद (570–630) द्वारा मक्का में की गयी। बाद में मदीना से व्यापक प्रसार होने लगा। इस्लाम प्राचीन अरबी धर्म का संशोधित रूप है। अरब में पहले 'बीना विवाह' होता था। अब इसे बाल विवाह अथवा आधिपत्य – विवाह कहा जाता है। मोहम्मद साहब के समय अरबों में बहुपत्नी विवाह ही प्रचलित था। डॉ. कापड़िया ने कहा है कि, अरबों में यह भी रिवाज था कि वे अतिथि का स्वागत करने के लिए उसे अपनी पत्नी भी सौप देते थे। 1939 में मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम (क्पेवसनजपवद व िडनेसपउ डंततपंहम ।बजए 1939) के द्वारा मुस्लिम स्त्रियों को विवाह–विच्छेद के अधिकार मिल गए है। मुस्लिमों में दो समूह हैं – (1) शिया (2) सुन्नी। सुन्नी लोग चुने हुए व्यक्ति को मुहम्मद साहब का उत्तराधिकारी (इमामत) बनाना चहते थे, जबकि शिया हजरत मुहम्मद के द्वारा मनोनित व्यक्ति को इस पद का दावेदार चाहते थे।

मुस्लिम तीन और समूहों में भी विभक्त हैं– (1) अशरफ (2) जलब (3) अरजल। अशरफ समूह के अर्न्तगत सैय्यद, शेख पठान तथा अन्य आते है। सैय्यद अपना उद्भव हजरत मुहम्मद साहब की वेटी फातिमा से मानते है। अजलब (जुलाहे), मन्सूरी (रूई धुनने वाले) इब्राहीम (नाई) आते है। अरजल के अन्तर्गत हलालत्खोर आते है। अशरफ कुलीन समूह के अन्तर्गत मोमिन माने जाते है। अजलब निम्न होते हैं। अरजल हिन्दुओं में अछूतों की भाँति होते है। शिया, सुन्नी, अशरफ, अजलब एवं अरजल अन्तर्विवाही होते हैं।

मुस्लिम समाज में विवाह को निकाह कहते हैं– कुरान के दूसरे पारा में वर्णित हैं। शिर्क वाली औरते जब तक इमान न लावे उनसे निकाह मत करो। मुस्लिम विवाह एक समझौता है। कापाडिया के अनुसार मोहम्मद साहब के सयम में औरतों में बहुपत्नी–विवाह ही था । मुल्ला (डनससं). मुस्लिम विवाह (निकाह) एक शिष्ट समझौता है जिसका उद्देश्य बच्चे उत्पन्न करना तथा उन्हें वैद्य घोषित करना है।

मुस्लिम विवाह एक समझौते के रूप में (डनेसपउ डंततपंहम ब्वदजतंबज) के पक्ष से खितवा (माँग) के रूप में निकाह का प्रस्ताव आता है। दूसरे पक्ष से कृति होती है। प्रस्ताव एवं स्वीकृति एक ही बैठक में होती है। साक्षियों की अनुपस्थिति में विवाह सनियमित माना जाता है परन्तु वातिल अर्थात् अवैध (टवसक) नहीं होता। लड़के के प्रतिफल के रूप में मेहर लड़की को भेंट देने का वचन दिया जाता है।

1. दो मुसलमानों के मध्य ही विवाह सम्बन्ध हो सकता है।

2. 15 वर्ष के पश्चात ही विवाह हो सकता है। नाबालिक बच्चों का विवाह वली (संरक्षक) की अनुमति से हो सकता है।

3. एक साथ चार स्त्रियों से विवाह। किन्तु एक स्त्री एक समय में केवल एक पुरुष से विवाह कर सकती है।

4. एक मुसलमान पुरूष मुसलमान स्त्री के अतिरिक्त यहूदी, सिक्ख या ईसाई स्त्री से विवाह कर सकता है, किन्तु मूर्ति–पूजक से विवाह पूर्ण रूप से निषिद्ध है। मुस्लिम स्त्री किताबिया पुरुष से विवाह नहीं कर सकती।

साक्षी के रूप में दोनों ओर से कम–से–कम दो–दो सदस्य उपस्थित रहने चाहिए।

निकाह की सामान्य पद्धति (ब्वउउवद डजीवत व िडंततपंहम)

लडका पक्ष रिश्ता माँगने जाता है।

लड़के के घर से एक दिन पहले सुहाग–चुडा (मेंहदी, मिस्सी, सुरमा, उबटन, नाखूनी, आलता, पाउडर, क्रीम, लिपिस्टक) आता है।

दूल्हन के पूरे वस्त्र साचक कहलाते हैं।

दूल्हा के पूरे वस्त्र बरी कहलाते है।

लड़की के यहाँ अरसी मुसददक सस्म के अन्तर्गत आइने (दर्पण) में दूल्हे को दूल्हन का मुँह दिखया जाता है।

विवाह समझौता का प्रतिकुल – मेहर (स्त्रीधन)। मेहर वह धन है जो लड़के पक्ष के द्वारा लड़की पक्ष को दिया जाता है। यदि मेहर न दी जाय तो विवाह अवैध माना जाता है। मेहर को चुकाये बिना पति को सम्भोग का अधिकार नहीं होता है।

मेहर चार प्रकार का होता है–

1. निश्चित मेहर

2. उचित मेहर – न्यायालय तय करता है। इसे श्मेहर–उल–मिस्लश मेहर भी कहते हैं।

3. सत्वर मेहर – पति विवाह या सम्भोग से पूर्व चुकाता है।

4. स्थागित मेहर – विवाह के समय निश्चित हो जाता है किन्तु विवाह–विच्छेद के समय देना पड़ता है।

डॉ. कपाडिया, ''शफी कानून के अर्न्तगत अक्षतयोनि कन्या का विवाह, चाहे वह वयस्यक भी हो गई है वली अर्थात संरक्षक की स्वीकृति के बिना असम्भव है। इसलिए वली को वली मुआविर, कहते हैं।

संरक्षक द्वारा किया हुआ विवाह तभी तोड़ा जा सकता है, जब पिता अथवा विवाह के अतिरिक्त किसी अन्य संरक्षक द्वारा नाबालिक कन्या का विवाह किया गया है, तो उस अवस्था में वह (पुरूष अथवा स्त्री) वयस्कता के विकल्प का प्रयोग करके उस विवाह में बंधने से इनकार कर सकती है और न्यायालय से उस विवाह को समाप्त कर देने की राजाज्ञा देने के लिए कह सकती है।

समाज या समूह

इददत वह समय है जिसमें तलाक घोषित होने के बाद पति–पत्नी आपस में सम्भोग या यौन सम्बन्ध स्थापित नहीं करते। यह समय तीन माह का होता है।

प्रमुख तथ्य

के.एम. कपाडिया, "इस्लाम में विवाह एक अनुबन्ध (ब्वदजतंबज) है, जिसमें दो साथियों के हस्ताक्षर होते हैं। इस अनुबन्ध का प्रतिफल मेहर वधू को भेंट दी जाती है। अमीर अली, ''मुस्लिम विवाह एक कानूनी समझौता है, जिसके लिए न तो किसी पुरोहित (मुलंला) की आवश्यकता है और न किसी धर्मकाण्ड की।''

शिया कानून किसी निश्चित आयु की व्यवस्था नहीं करता। जब लड़के–लड़की युवावस्था प्राप्त करले तभी वे बालिग और विवाह योग्य हो जाते हैं।

मुस्लिम विवाह के प्रकार

भारतीय मुसलमानों में विवाह के प्रचलित प्रकारों की संख्या केवल चार है जिनमें श्बातिल को समाज विरोधी माना जाता है।

1. निकाह या स्थायी विवाह भी कहा रू जाता है। यह पूर्णत्या वैधानिक माना जाता है।

2 मुता या मुताह या अस्थायी विवाह–इसका अनुबन्ध (ब्वदजतंबज) एक विशेष अवधि के लिए होता है। ऐसे विवाह में संरक्षकों तथा गवाहों की उपस्थिति अनिवार्य नहीं होती मुताह को शिया समाज में ही स्वीकृति प्राप्त है ।

3. बातिल या अवैध विवाह –जब विवाह वैध न हो तथा पति–पत्नी तलाक लेने पर राजी न हो तो बातिल विवाह कहते हैं। यदि विवाह का प्रस्ताव एवं स्वीकृति अलग–अलग समय पहले तो बातिल विवाह होगा।

4. फासिद या झगड़ा विवाह या अप्रभावित माना जाता है। कोई औचारिक विधि पूरी न होने से ऐसे विवाह को अनियमित कमियों को दूर करने के बाद ये विवाह नियमित हो जाते है।

सुन्नी निकाह, बातिल, तथा फासिद को मानते हैं। किन्तु शिया निकाह एवं बातिल को मानते है।

मुस्लिम विवाह के उद्देश्य

मुस्लिम कानून के सिद्धान्त के लेखक मुल्ला के अनुसार, ''मुस्लिम निकाह एक शिष्ट समझौता है जिसका उद्देश्य बच्चे पैदा करना और उन्हें वैध घोषित करना है।''

प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् हैं–

(1) कानूनी तरीके से स्त्री–पुरूष के लौगिंक अथवा यौन सम्बन्धों को अनुमति प्रदान करना।

(2) संतान को जन्म देना तथा पालन–पोषण करना

(3) निकाह के बाद की सन्तानें कानूनी।

(4) तलाक का अधिकार।

मुस्लिम समाज में विवाह विच्छेद

प्राचीन आरबी समाज की खोल प्रथा का संशोधित रूप ही तलाक है। 1939 के मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम द्वारा मुस्लिम स्त्रियों को भी पति को तलाक देने का अधिकार प्राप्त हो गया।

मुस्लिम समाज में तला के मौखिक, लिखित तथा कानूनी नौ रूप पाए जाते है।

1. तलाक अहसन –इसमें पत्नी के तुहर (मासिक धर्म) के समय पति एक बार तलाक की घोषणा कर देता है और इदत की अवधि (इदत वह समय है जिसमें तलाक घोषित होने के बाद पति–पत्नी आपस करते यानी 03 माह तक तक सहवास नहीं करता) ज्यों ही इदत की अवधि समाप्त होती है, विवाह का तलाके – हसन इसमें तीनों तुहरों नाता टूट जाता है।

2. तीन बुहरों के बीच के तलाके–हसन कहते है।

3. तलाक की घोषणा दोहरानी समय में पति–पत्नी सहवास नहीं करते। इसमें सम्भोग या यौन सम्बन्ध स्थापित नहीं करते।

इसी तरह कभी–कभी एक ही वुहर (मासिक धर्म) के समय थोड–थोड़े समयान्तर से तलाक की घोषणा तीन बार की जाती है और तलाक पूरा मान लिया जाता है। इसमें तलाक हो गया तो उसे लौटाया नहीं जा सकता।

नोट – उपर्युक्त तीनों अलिखितया मौखिक तलाक है।

4. इला यदि पति कसम खाकर पत्नी से 04 महीने तक सहवास नहीं करने की प्रतिज्ञा करता है तो यह अवधि पूरी होने पर तलाक मान लिया जाता है।

5. खुला अन्तर्गत पत्नी विवाह विच्छेद की इच्छा करती है। पति के राजी होने पर वह अपने पति को मेहर वापिस चुका देती है।

6. मुबारत या मुबारात यह तलाक दोनों की पारस्पिरिक सहमति और इच्छा से होता है।

7. जिहर इसका आशय है – गैर कानूनी तुलना द्वारा तलाक। यदि पति अपनी पत्नी की तुलना माँ, बहन सास अथवा ऐसी किसी स्त्री से करें जो वैवाहिक निषेध की सीमा में आती हो। तो पति को प्रायश्चित करना आवश्यक है। यदि वह ऐसा नही करता तो स्वयमेव अथवा अदालत द्वारा विवाह विच्छेद कर दिया जाता है।

8. लियान इसमें पति पत्नी पर व्यभिचार का आरोप लगाता है और अपने आरोप को वापस नहीं लेता तो पत्नी अदालत में तलाक के लिये प्रार्थना पत्र दे सकती।

9. तलाक तकबीज – विवाह–विच्छेद के इस प्रकार में पत्नी द्वारा तलाक की मॉग की जाती है। यह मॉग विवाह के समय पति द्वारा पत्नी को दिये गये अधिकार के आधार पर की जाती है।

10. वैधानिक तलाक (1939 के अधिनियमानुसार) तलाक का यह अधिकार केवल स्त्रियों को मिला, क्योंकि पुरूषों को तो पारस्परिक पद्धतियों से भी तलाक देने की छूट मिली हुई है। अधिनियम में निम्न बाते हैं–

1. यदि चार वर्ष से पति का समाचार न मिला हो।

2. सात वर्ष से अधिक सजा प्राप्त हो।

3. पत्नी के भरण–पोषण में पति असफल हो।

4. पति यदि नपुंसक हो।

5. पति पागल हो।

6. पति यौन अथवा संक्रामक रोग से पीडित हो।

7. उसे असाध्य रोग हो।

8. स्त्री विवाह 15 वर्ष से कम आयु में हो चुका हो किन्तु पति से सहवास न हुआ हो।

9. पति यदि क्रूर अथवा पाविक व्यवहार का दोसी हो।

10. पत्नी के धार्मिक कार्यों में बाधा पहुँचाता हो।

नोट– जिहर और लियान तलाक के ऐसे स्वरूप हे जिनका प्रस्ताव तो प्रथागत नियमों के आधार पर होता है किन्तु अन्तिम रूप से तलाक की घोषणा अदालत द्वारा की जाती है। मुस्लिम शरीयत अधिनियम 1937 विवाह–विच्छेद की प्रार्थना करती है। यह 07 अक्टूबर 1937 से लागू किया गया है।

भारतीय समझौता

1. विवाह के पश्चात् संरक्षकता के अधिकार को मुस्लिम कानून में श्जब्रश कहा गया है।

2. मेहर की कम से कम धन राशि 10 दरहम होती है।

3. इला, जिहर एवं लियान तलाक के ऐसे प्रकर है जिनका उल्लेख 1937 के शरियत कानून में किया गया है।

4. मुस्लिम महिला संरक्षण (तलाक) अधिनियम 1988 – यह तलाक शुदा मुस्लिम महिलाओं को गुजारा भत्ता देने के सम्बन्ध में है।

ईसाई विवाह

हिन्दुओं की भाँति इनके विचार में ब्रह्मचर्य जीवन का परम लक्ष्य होता है। आजीवन अविवाहित रहकर धर्म का प्रचार–प्रसार करते हुये जीवित रहना एक आदर्श इसाई का सूचक माना गया है। कैथोलिक धर्म में कहा गया है मानव जीवन की सम्पूर्णता अविवाहित जीवन के आदर्श में निहित है। अपनी निर्बलताओं का हल ढूँढना हो तो विवाह कर सकते है। प्रोटेस्टेण्ट समाज के लिये विवाह एक दैव उत्पत्ति तथा पवित्र संस्कार है।

उत्तरी भारत के संयुक्त चर्च के संविधान में लिखा गया है कि विवाह समाज में एक पुरुष और एक स्त्री के बीच एक ऐसा समझौता है जो जीवन भर सामान्य रूप से चलता रहता है और उसका यौन सम्बन्ध पारस्परिक संसर्ग और परिवार की स्थापना से है।

सेन्ट पाल का कहना कि पुरूष के लिये यह अच्छा है कि यह स्त्रियों का स्पर्श न करें।

ईसाई विवाह के उद्देश्य

1. यौन सन्तुष्टि

2. भावनात्मक सन्तुष्टि

3. पवित्र जीवन जीवन का विकास

4. सहयोग की भावना

5. धार्मिक उददेश्य

6. परिवार की स्थापना

7. पारिवारिक सहयोग

8. सम्बन्धों की स्थापना

विवाह संस्कार सन् 1872 के भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम के अन्तर्गत विवाह के समय लडके व लडकी की आयु क्रमशः 16 और 13 वर्ष से कम होनी चाहिये की बात कही गयी है। ईसाई एक विवाह को आदर्श मानते है तथा बहुविवाह निषेधित है।

विवाह का स्थान साधारणतः वह चर्च होता है जिसकी सदस्य लडकी होती है। विवाह का समय प्रातः 06 बजे से सायं 07 बजे तक का होता है।

सबसे पहले सगाई संस्कार होता है।

ईसाई विवाह के स्वरूप

1. धार्मिक विवाह

2. वैधानिक विवाह विवाह, विवाह निबन्धक कार्यालय में होता है।

3. परम्परागत वन्य जातिय विवाह

ईसाई विवाह प्रक्रिया

1. मंगनी

2. सत्यापन

3. विवाह

ईसाई विवाह के आधुनिक प्रतिमान

1. धर्म का अंकुश महत्वहीन

2. प्रेम विवाहों का प्रचलन

3. विवाह विच्छेद की बहुलता

4. आडम्बरों का प्रारम्भ

5. विधवा विवाह का निषेध नहीं

6. वैवाहिक नियमों की शिथिलता

मैकइवर एवं पेज ने निम्न विशेषतायें बतलाई हैं–

1. विवाह सम्बन्ध 2. विवाह का एक स्वरूप– खासी, संथाल, एवं कादर में एक विवाह पाया जाता है। 3. वंशनाम की एक व्यवस्था– भारत में हिंदुओं, भील, कंजर, मीना, संथाल, हो तथा अनेक जनजातियों में नामकरण पितृवंशीय आधार पर होता है। खासी, गारो, नायर आदि परिवारों में बच्चे वंश नाम माता से ग्रहण करते हैं।

4. आर्थिक व्यवस्था

5. सामान्य निवास

नोट– ये ऐसी सामान्य विशेषताएँ हैं जो सभी समाजों में तथा सभी स्थानों में पाए जाने वाले परिवारों में देखने को मिलती है।

परिवार की विशिष्ट विशेषताएँ

मैकाइवर एवं पेज ने कुछ ऐसी विशेषताओं का भी उल्लेख किया है जो अन्य समितियों में नहीं पाई जाती।

1. सार्वभौमिकता

2. भावात्मक आधार

3. रचनात्मक प्रभाव

4. सीमित आकार

5. सामाजिक संरचना में केन्द्रीय स्थिति

6. सदस्यों का उत्तरदायित्व

7. सामाजिक नियन्त्रण

8. पारिवार की स्थायी और अस्थायी प्रकृति

डेविस का कहना है कि परिवार द्वारा चार कार्य प्रमुख रूप से किए जाते है जो अन्य समितियों द्वारा नहीं किए जाते है। ये कार्य हैं, प्रजनन, व्यक्ति का समाज में स्थान निर्धारण करना, समाजीकरण करना, एवं शिक्षा प्रदान करना।

परिवार की उत्पन्ति

मैकाइवर न अपनी पुस्तक जेम डवकमतद`जंजम में लिखा है, ''उत्तपत्तियाँ सदैव अस्पष्ट होती है।'' परिवार की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धी निम्न हैं।

1. शास्त्री सिद्धान्त (ब्सवेपबंस चैमंतल)

इसके प्रतिपादक प्लेटों तथा अरस्तु हैं। इन्होंने प्राचीन ग्रीक, रोमन और महूदीं परिवारों का उदाहरण दिया है। तथा कहा कि परिवार का आदि स्वरूप पिंहसत्तात्मक था। ऐसे परिवारों में पुरूषों की प्रधानता था। सर हेनरी मेन ने 1981 में विश्व के विभिन्न समाजों का अध्ययन किया। और कहा कि परिवार का प्रारम्भीक रूप न केवल पिहसत्तात्मक ही था वरन पिहिस्थानीय एवं पिहवंशीय भी था। भारत उदाहरण है। मेन के अनुसार पितृसत्तात्मक परिवारों का जन्म बाद में हुआ। उसके बाद मातृसत्तत्मक परिवार आया।

2. यौन साम्यवाद का सिद्धान्त (जीमवतल वि मग ब्वउउनदपेउ)

इसके प्रतिपादक मार्गन, फ्रेजर एवं ब्रिफाल्ल हैं। इनका कहना है कि प्रारम्भीक स्तर में विवाह एवं परिवार जैसी संस्थाएँ नहीं थी। मॉर्गल का विचार है कि आदिम समाजों में सिब ैपइद्ध ही एकमात्र समूह होता था। जिसमें यौन स्वच्छन्दता प्रचलित थी। आदिम समाजों में पिता महत्वहीन था और मातृ–सिब ही प्रारम्भीक थे।

3. एक–विवाह का सिद्धान्त (जीमवतल वि डवदवहंउल)

वेस्टरमार्क ने अपनी पुस्तक भ्पेजवतल वि भ्नउंद डंततपंहमश में अपना एक विवाह सिद्धान्त प्रस्तुत किया। वे यौन साम्यवाद की आलोचना करते है।

डार्विन का कहना है कि परिवार का जन्म पुरुष के अधिपत्य और ईर्ष्या की भावना के कारण हुआ। डार्विन के इस मत का समर्थन करते हुए कहा कि पुरुष स्वभाव से ही ईर्ष्यालु है, वह स्त्री पर सम्पति की भाँति ही अपना एक अधिकार चाहता है।

वेस्टरमार्क के अनुसार यौन साम्यवाद की कल्पना अवास्तविक एवं अव्यावहारिक है। वेस्टरमार्क के इस सिद्धान्त की पुष्टि जुकरमेन तथा मौलिकनोवस्की ने भी की हैं।

मौलिनोवस्की ने अपनी पुस्तक में कहा है कि मनुष्य पशु अवस्था से ही परिवार एक विवाह परिवार ही है।

मैलिनोवस्की के अनुसार, एक विवाह ही विवाह का सच्चा स्वरूप है, रहा था और रहेगा।

4. मातृसत्तात्मक सिद्धान्त

ब्रिफाल्ट ने अपनी पुस्तक जेम डवजीमते में मातृ सत्तात्मक सिद्धान्त की बात कही है। ब्रिफाल्ट, वेस्टरमार्क के सिद्धान्त को उपयुक्त नहीं मानते। ब्रिफाल्ट इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। उन्होंने यौन सम्बन्ध बहुत अनिश्चित हो। इसलिए माता तथा पुत्र के सम्बन्ध घनिष्ठ थे। कहा आरम्भ फलस्वरूप मातृसत्तत्मक परिवार आए।

बैकोफन तथा टायलर भी इस सिद्धान्त के समर्थक है।

5. उदविकासीय सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को बैकोफन ने प्रस्तुत किया और (मॉर्गन) ने इस सिद्धान्त की विस्तृत व्यख्या की। मैकलेनन, स्पेन्सर, लूबक तथा टायलर इस सिद्धान्त के समर्थक हैं। स्सर ने प्राणीशास्त्रीय

उदविकास का सिद्धान्त मानव समाज के उदविकास पर लागू किया। लुईस मॉर्गन ही एकमात्र आधुनिक लेखक हैं जिन्होंने ने मानव परिवार के उदविकास को योजनाबद्ध रूप से प्रस्तुत किया है।

यह योजना पूर्णतया वर्गात्मक सम्बन्ध व्यवस्था पर आधारित है।

परिवार के उद्विकास के पाँच स्तर हैं–

1. समरक्त परिवार

2. समूह

3. सिण्डेश्मियन

4. पितृसत्तात्मक

5. एक – विवाही स्टार्क, वेस्टरमार्क, एंड्रूलैग तथा एन० डब्ल्यू० टॉयस ने उद्विकासीय योजना का विरोध किया है। टॉमस ने मॉर्गन की सम्पूर्ण संरचना को पानी की लकीर कहा है।

न्दपज 2

सत्ताधारी अभिजन

(जेम च्वूमत म्सपजम)

...

हमारे देश के लगभग सभी विद्वानों ने माना है कि सरकार भारतीय समाज में परिवर्तन लाने वाली प्रमुख एजेन्सी रही है और सामाजिक परिवर्तन का एक अच्छा भाग सरकारी एजेन्सियों द्वारा ही प्रेरित और निर्देशित हुआ है। सरकार में सुधारवादी कार्य सत्ता में अभिजनों पर निर्भर होता है। पेरेटो ने इन्हें शासकीय अभिजन कहा है। सभी अभिजन समुदाय के कल्याण या समाज के विकास के लिए प्रतिबद्ध नहीं होते। अनेक अभिजनों के कार्य स्वार्थों पर आधारित होते हैं।

सामाजिक स्तरीकरण

समाज असमान समूहों एवं जाति तथा धर्म की एक व्यवस्था है। समाज द्वारा भिन्न–भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज को कई स्तरों में विभाजित किया जाता है जिसे सामाजिक स्तरीकरण कहा जाता है। सामाजिक स्तरीकरण वह व्यवस्था है जो समाज को विभिन्न स्तरों में विभक्त करके सामाकि जीवन को व्यवस्थित बनाने का प्रयत्न करती है। सामाजिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक समूहों को एक विशेष स्तर देकर समाज को व्यवस्थित किया जाता है। स्तरीकरण शब्द समाजशास्त्र में भूमि शास्त्र से लिया गया है। समाज को व्यवस्थिति किया जाता है। स्तरीकरण शब्द समाजशास्त्र में भूमि शास्त्र से लिया गया है।

परिभाषा

जिसवर्ट – ''सामाजिक स्तरीकरण समाज का उन स्थायी समूहों एवं श्रेणियों में विभाजन है जो कि आपस में श्रेष्ठता एवं अधीनता के सम्बंधों द्वारा सम्बद्ध होते हैं। विभाजन ही स्तरीकरण है।''

असमानता एवं स्तरीकरण

समाज भिन्नताओं से सुसज्जित है। जब असमान समूहों का निर्माण होता है और उन्हें उच्चता–निम्नता क्रम में रखा जाता है। तब स्तरीकरण का असतित्व कायम होता है। वास्तव में स्तरीकरण में असमानता पायी जाती है। स्तरीकरण कई स्तरों से निर्मित होता है प्रत्येक स्तर अपने समान होता है। किन्तु सभी स्तर असमान गुण वाले होते हैं।

समाज असमानता वाले समूहों को क्रम बद्ध रूप में स्थापित करता है और उसी से समाज के कार्य सम्पन्न किये जाते हैं असमानता स्तरीकरण का प्रमुख आधार है बिना असमानता के स्तरीकरण असतित्वहीन है। इसी तरह स्तरीकरण के कारण असमान समूहों को एक व्यवस्था में जुड़ने का अवसर मिलता है।

उपर्युक्त विश्लेषण प्रतिबिम्बित करता है असमान समूह स्तरीकरण का निर्माण करते हैं।

स्तरीकरण के सिद्धांत

स्तरीकरण कार्यों को सम्पन्न करने के लिए स्थापित एक व्यवस्था है। विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से स्तरीकरण के स्थापित होने को सिद्धांतों से समझाया है। ये सिद्धांत ये हैं कि समाज में स्तरीकरण किस प्रकार से होता है।

स्तरीकरण के कारण

वर्ग साधन सम्पन्न रहा है जो निम्न वर्ग का शोषण करता रहा है।

मार्क्स के अनुसार प्रत्येक युग में वर्गों का निर्माण आर्थिक आधार पर ही हुआ है। समाज आर्थिक सम्पन्नता के लिए दूसरे वर्ग का शोषण वर्ग असतित्व में आते रहे हैं। डेहरेनडार्फ ने कार्ल मार्क्सके विचारों की आलोचना की है। कार्ल मार्क्स ने कहा था संघर्ष समाज के सम्पूर्ण भागों में होता है। डेहरेनडार्क ने कहा कि वास्तव में संघर्ष समाज के सम्पूर्ण स्तरों में नहीं होता अपितु यह समाज के छोटे–छोटे समूहों के बीच होता है।

डेविस एवं मूर के अनुसार स्तरीकरण को समझाने के लिए डेविस एवं मूर ने अपनी पुस्तक च्तपदबपचसमे वि जतंजपपिबंजपवद में प्रकार्यवादी सिद्धांत का अनुशरण किया है। डेविस एवं मूर ने माना कि स्तरीकरण समाज के जरूरतों की उपज है। यह अपरिहार्य एवं सार्वभौमिक है। समाज में कई पद होते हैं इन्हीं पदों पर विराजमान व्यक्ति अपना–अपना कार्य करते रहते हैं। जिससे समाज में समन्वय बना रहता है। समाज में दो प्रकार के पद होते हैं। प्रथम पद महत्वपूर्ण पद होते हैं इनमें अधिक योग्य व्यक्ति विराजमान होते हैं उनके लिए अधिक पुरस्कार, प्रतिभा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। दूसरी ओर कम महत्वपूर्ण पद होते हैं। उन पर कम योग्य व्यक्ति विराजमान रहते हैं। उनके लिए कम पुरस्कार प्रतिभा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूप या प्रकार

बाटोमोर ने सामाजिक स्तरीकरण के निर्धारण के चार स्वास्थ्य बताये है। जाति व्यवस्था,सामाजिक वर्ग, दास व्यवस्था, जागीर व्यवस्था।

जाति व्यवस्था – जाति के आधार पर समाज को कई स्तरों में विभाजित किया जाता है और सभी स्तरों के कार्यों का निर्धारण कर दिया जाता है। भारत में जाति के आधार पर स्तरीकरण पाया जाता हैं। भारत के समाज को क्रमशः निम्न प्रकार चार भागों में विभाजित किया गया है– 1. ब्राम्हण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, 4. शूद्र।

व्यापारी गतिविधियों में शामिल होता है वहीं पर शूद्र सेवा कार्य लगा रहता है। जजमानी व्यवस्था ब्राम्हण अध्यापन एवं पूजापाठ का कार्य करता है। क्षत्रिय सुरक्षा की जिम्मेदारी लेता है। वैश्य व्यापरिक गतिविधियों में शामिल होता है, शूद्र सेवा कार्य में लगा रहता है।

सामाजिक वर्ग

पाश्चात् देश वर्गों में विभाजित है वहां पर वर्ग ही स्तरीकरण का आधार होते हैं आर्थिक शक्ति या राजनैतिक आधार बनते हैं वर्ग भिन्न भिन्न कार्यों को सम्पन्न कराते हैं। आधुनिक समय में श्रमिक एवं पूंजीपति वर्ग पाश्चात्य देशों में सक्रिय है। विकासशील देश कृषक वर्ग से भी सम्पन्न

है आज भारत वर्ग व्यवस्था का संपादन किया जा रहा हैं जिस वर्ग के अनुसार एक वर्ग मे निम्न भावनायें पायी जाती हैं। उच्चता की भावना, हीनता की भावना, समानता की भावना।

दास व्यवस्था

प्रारम्भिक समय में उच्च वर्ग एवं दास वर्ग होते थे। समाज के लोग कार्यों के सम्पादन के लिए दासों को बनाये रखते थे दास आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग करते थे। एल.टी.हाबहाउस ने डवतंसे पद म्अवसनंजपवद पुस्तक में बताया कि दास वह व्यक्ति है जिसे कानून और परम्परा दोनों दूसरे की सम्पत्ति मानते हैं। कुछ विशिष्ट स्थिति में वह पूर्णतः अधिकार विहीन होता है तथा कुछ स्थितियों में उसकी रक्षा ठीक वैसे की जाती है जैसे एक बैल या गधे की।" दास प्रथा जापान में अधिक मजबूत रही है इसी के आधार पर स्तरीकरण का निर्माण हुआ।

जागीर व्यवस्था

जागीर व्यवस्था– यूरोप में प्रारम्भ में जागीर व्यवस्था थी इसके तहत किसी एक व्यक्ति या समूह को एक विशेष क्षेत्र का मालिक घोषित किया जाता था और यह माना जाता था कि वह उसका ध्यान रखेगा। उस क्षेत्र में कार्यों को सम्पन्न करने के लिए निम्न तीन स्तर रहे हैं। पादरी, सरदार, साधये पद क्रमशः प्रभावशाली रहे हैं इन पर बैठे व्यक्ति अपना कर्तव्य करते रहे हैं जिससे स्तरीकरण सकारात्मक रूप में भूमि का अदा करता रहा है।

जाति

ब्ेंजम

1. अर्थ

जाति व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था के एक अद्वितीय विशेषता है। जाति व्यवस्था हिन्दू धर्म की अनोखी व्यवस्था है। इस धर्म को अन्य धर्म स्वीकार नहीं करते हैं। किन्तु व्यवहार में मुस्लिम इसाई सिक्ख जैसे धर्म में भी इसका प्रचलन है। जाति जन्म के आधार पर निर्मित एक स्तरीकृत व्यवस्था है, जिसमें खान पान छुआ छूत अन्तर विवाह पवित्रता एवं अपवित्रतता के लक्षण विद्यमान होते हैं। जातियों के आधार पर भारतीय समाज का स्तरीकृत किया है, जिससे की पूर्ति होती है। हर्बट रिजले ने कहा कि एक जाति अनेक परिवारों का संग्रह है।

आवश्यकताओं जातिय व्यवस्था अनेक जातियों की व्यवस्था है। जी.एस. घुर्रे ने कहा है जाति व्यवस्था भारत की अनेक जातियां की एकीकृत व्यवस्था है, जिसमें श्रम विभाजन एवं खण्डात्मक विभाजन होता है श्रेष्ठता एवं खानपान के नियम होते हैं। डी. एम. मजूमदार के अनुसार जाति एक बंद वर्ग है इसमें एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति का सदस्य नहीं हो पाता है। सी.एच.कूले के अनुसार एक ही जाति के सदस्य होते हैं।

जाति एक वंश परम्परा के लोग इरावर्ती करवे ने कहा है कि जाति व्यवस्था एक भाषा क्षेत्र की व्यवस्था है अलग–अलग में अलग अलग जाति के लोग रहते हैं।

2. जाति के संरचनात्मक एवं सांस्कृतिक पहलू

भारत में जाति व्यवस्था की चर्चा अलग–अलग दृष्टिकोण से होती रही है। जाति को व्याख्यायित करने के लिए कुछ विद्वानों ने जाति की संरचना की सहायता ली है वहीं पर अन्य पहलू का सहयोग लिया है।

विद्वानों ने जाति के सांस्कृतिक जाति संरचना से आशय है कि जाति व्यवस्था सोपान की तरह जुड़ी हुई है, जाति में ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जैसे लक्षण पाये जाते हैं इन जातियों में श्रम विभाजन, असमान शक्ति एवं अलग–अलग अधिकार होते हैं जाति के इन्हीं संरचना पहलुओं का अध्ययन किया जाता है जाति को संरचनात्मक रूप से मानने वाले लोग गोत्र, रक्त सम्बन्धित प्रकार्य, स्पृष्यता के नियम एवं खानपान के नियमों का अध्ययन करते हैं और जाति को इसी संरचनात्मक रूप से स्वीकार करते हैं जाति की संरचना औद्योगिक प्रधान होती जा रही है। योगेन्द्र सिंह ने लिखा है कि भारतीय समाज के अधिक औद्योगिक स्तर पहुंचने के साथ ही साथ जाति व्यवस्था समाप्त हो जाएगी, योगेन्द्र सिंह ने जाति को संरचनात्मक आधार पर समझाया है और उसके कार्यों का विस्तार से उल्लेख किया है। ई.आर.टीच के अनुसार जाति की संरचना ऐसी है कि इसमें भारत को एक विशिष्ट व्यवस्था प्रदान किया है इस तरह देखा गया कि लुई डुमा, योगन्द्र, एम.एन. और एल.के. शर्मा और मेबिन मारीड जैसे विद्वानों ने जाति को संरचनात्मक आधार पर समझाया है।

जाति की गतिशीलता

जाति के उद्‌भव के पश्चात् उसमें धीरे–धीरे परिवर्तन होते रहे हैं किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् संवैधानिक प्रावधानों एवं शिक्षा के प्रसार के कारण जातियों में गतिशीलता बढ़ी है यह गतिशीलता जातियों के कार्यों में परिलक्षित होती है। एक जाति अपने परम्परागत कार्यों से भिन्न अन्य जातियों के कार्यों को अपनाने लगी है इतना ही नहीं अन्य जातियों अन्य जातियों के मूल्यों एवं धार्मिक अनुष्ठानों को भी अपनाने लगी है यह कहना उचित होगा कि जातियों के कार्यों एवं व्यवहारों में दिन प्रतिदिन परिवर्तन हो रहे हैं किन्तु एक जाति दूसरी जाति की सदस्यता नहीं ग्रहण कर पा रही है। वी. एस. नेपाली ने भारतीय समाज की गतिशीलता को प्रतिबिम्बित किया है तथा बताया है कि निम्नजातियां अब चेतनता को ग्रहण कर रही हैं उनमें जागृति आ गई है वे उक्त जातियों का अनुसरण कर रही हैं उन्होंने ने भविष्य के लिए कहा है कि धीरे धीरे कई प्रकार की समूह बन जाएंगे और निम्न जातियां पवित्रता अपवित्रता, धर्म एवं कर्म की मान्यता को समाप्त कर देगी उन्हीं के शब्दों भारत में एक नई संघर्ष विप्लन होगी।

ब्राम्हण आज क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कार्य एवं व्यवहारों की ओर गतिशील है। इसी तरह क्षत्रिय ब्राम्हण, वैश्य एवं शूद्रों का अनुसरण कर रहा है। इसी प्रकार शूद्र और वैश्य एक दूसरे का अनुसरण कर रहा है। कहा जा सकता है कि भारतीय भविष्य में जाति के कार्य एवं व्यवहार इतना ज्यादा मिल जाएगा कि एक अशिखित व्यक्ति अन्तर नहीं कर पायेगा।

जाति प्रथा की उत्पत्ति

जाति भारत की सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देती है। भारतीय समाज जाति आधारित स्तरीकरण को स्वीकार करती है। जाति के उत्पत्ति के संदर्भ में विद्वानों का एक मत नहीं है जाति की उत्पत्ति से सम्बन्धित विद्वानों ने अपने–अपने विचार ढंग से दिये हैं। इन विचारों को निम्न सिद्धांतों के माध्यम से समझा जा सकता है। जाति की उत्पत्ति का बहुप्रचलित

सिद्धांत पारम्परिक सिद्धांत है जिसे ऋग्वेद के पुरुष शुक्ल में मान्यता प्राप्त है उसमें बताया गया है कि ब्रम्हा के मुख से ब्राम्हणें की, उनकी भुजाओं से क्षत्रियों की उनके उदर से वैश्यों की और पैरों से शुद्रों की उत्पत्ति हुई है। उत्पत्ति के आधार पर ब्राम्हणों को अध्यापन एवं पूजा पाठ का कार्य, क्षत्रिय के सुरक्षा का कार्य वैश्य को व्यापार का कार्य और शूद्रों की सेवा का कार्य प्रदान किया गया है आलोचकों ने इस सिद्धांत को करते हुए बताया कि जाति की उत्पत्ति कार्य करने के आधार पर हुई है ब्रम्हा से नहीं।

जाति की उत्पत्ति का धार्मिक सिद्धांत ष्भ्वबंतज ंदक ैदंतजष ने प्रस्तुत किया ीवबंतज के अनुसार धार्मिक गतिविधियां अनेक प्रकार की होती हैं उन्हीं को सम्पादित करने वाले लोगों को नई जातियों में रख दिया गया। पुजा पाठ करने वाले लोगों को ब्राम्हण, सुरक्षा प्रदान करने वाले क्षत्रिय इसी तरह अन्य जातियां भी जन्म ले ली।

भारत के आदिम संस्कृति में जाति के चिन्ह विद्यमान हैं।

मुसलमानों तथा ईसाइयों में जातियां

मुसलमानों एवं ईसाई समुदाय ने भारत पर आक्रमण किया और भारतीय संस्कृति गये हिन्दुओं की जाति व्यवस्था ने मुस्लिमों एवं ईसाइयों को प्रभावित किया इसी का परिणाम है कि मुस्लिमों एवं ईसाइयों में भी जाति के लक्षण विद्यमान है जबकि ये दोनों धर्म इसे स्वीकार नहीं करते।

मुसलमानों में जाति व्यवस्था का व्यापक प्रचलन है। अमितयाज अहमद मुस्लिम सामाज कि व्यवस्था का सर्वेक्षण किया और मुस्लिम जातियों का विस्तार से अध्ययन किया। जरिना अहमद ने भी मुस्लिम जाति का अध्ययन किया इसी क्रम एस.पी. अग्रवाल ने यू.पी. में मुसलमानों की जाति व्यवस्था का अध्ययन किया और वर्मदेश्वर प्रसाद ने बिहार में मुस्लिमों की जाति व्यवस्था का तथा ैजपी बिंदकतं डपीतंने गुजरात की मुस्लिम व्यवस्था का अध्ययन किया। मुस्लिम जाति व्यवस्था तीन स्तर होते हैं। प्रथम स्तर में अशरफ जाति आती है। जिसमें सैयद, शेख, मुगल तथा पठान जातियां शामिल है, दूसरे स्तर अजलब जातियां आती हैं जिसमें शिल्पकार, दस्तकार जातियां शामिल है। जुलाहे और धुनियां इसी के अन्तर्गत आते हैं तृतीय स्तर पर अरजल जाति आती है इसके अन्तर्गत मुस्लिम दलित जातियां आती है। धोबी, भंगी, इसी में शामिल हैं।

ठसंदज महोदय ने 1925 में कहा कि मुस्लिम जाति व्यवस्था में (छुआ–छूत) स्पृष्यता के नियम पाये जाते हैं। इम्तियाज अहमद ने बताया कि निम्न जातियों को मस्जिदों में प्रवेश पर रोक भी वे अन्य मुस्लमानों के साथ बैठकर भोजन नहीं कर सकते थे।

इनान ने इसाई जाति का वर्णन किया त्ंउातपीदं डनीमतरप ने सम्पूर्ण भारत की ईसाई जाति व्यवस्था वर्णन किया । ठण्त्ण् ळंलूंतकने बताया कि भारतीय ईसाई तीन प्रकार की जाति व्यवस्था में बंधे हैं। प्रथम के अन्तर्गत वे जातियां आती है जो आदिवासी समूह को छोड़कर ईसाई धर्म के अपना ली है।

द्वितीय के अन्तर्गत हिन्दुओं से इसाई धर्म स्वीकार करने वाले लोग आ जाते हैं। तीसरे के अन्तर्गत वे लोग आते हैं जो भारतीय एवं दोनों के सम्पर्क से उत्पन्न हुये हैं एंग्लो इंडियन इसी के अन्तर्गत आते हैं। इस विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ईसाई जाति व्यवस्था तीन स्तरों पर आधारित है। ईसाइ जाति व्यवस्था में वास्तव में सबसे उपर वाला स्थान भू–स्वामी और व्यापारी

जातियों का होता है दूसरे स्तर में नौकरी में लगी जातियां हैं। तृतीय में अपवित्र कार्य करने वाली जातियां आती हैं। रामकृष्ण मुखर्जी के ईसाई अनुसार इसाई जातियों के अलग नाम नहीं है हिन्दू जातियों से जिस तरह धर्मान्तरण हुआ है वे उसी रूप में स्वीकार कर ली गई है जैसे इसाई शामिल हैं। ईनान के अनुसार इसाई जाति व्यवस्था हिन्दु सम्पर्क के कारण पैदा हुये हैं। हिन्दुओं ने ईसाई धर्म स्वीकार किया और ईसाई होने के पश्चात् अपनी जाति व्यवस्था को भी स्वीकार करते हैं। त्वइमतज क. छवइपसन जो एक प्रमुख ईसाई थे ने तो ईसाई धर्म स्वीकार करने वालों को (भारतीयों) को जनेऊ पहनने और चोटी रखने तक की इजाजत दी। वह स्वयं गेरुआ में रहते थे। वह ललाट पर चंदन लगाते थे जनेऊ पहनते थे तथा गले में क्रास लटकाये रहते थे। वह अपने को रोम ब्राम्हण कहता था। वस्त्र पहन कर इसाई की मूर्ति बनाकर पूजा की जाय या नहीं, उसकी प्रार्थना किस प्रकार की जाय, पाप को क्षमा करने का अधिकार केवल ईश्वर का है या पोप व पादरियों की भी आदि कुछ मतभेदों को लेकर इसाई धर्म दो सम्प्रदाय बन गये– 1. रोमन कैथेलिक, 2. प्रोटेस्टैण्ट।

किन्तु भारत में क्षेत्रिय आधार पर तथा उच्च एवं निम्न हिन्दुओं द्वारा धर्म परिवर्तन पर इसाई बनाने के आधार पर भी इसाई धर्म समाज में अनेक समूह पाये जाते हैं, सन् 1981 की जग पाना के अनुसार भारतीय जनसंख्या 1.43 प्रतिशत भाग (अर्थात् 1.61 करोड़ लोग) इसाई धर्म का मानने लगे। जिस औद्योगीकरण, यातायात एवं संचार के नवीन साधनों, नवीन विधानों एवं शिक्षा के कारण जाति प्रथा में परिवर्तन हो रहा है इसी प्रकार हो रहा है तथा सभी प्रकार के ईसाइयों में सामाजिक एकीकरण एवं पारस्परिक सम्पर्क में वृद्धि ईसाई समाज में भी परिवर्तन रही है।

आधुनिक भारत में जाति परिवर्तन

जाति जन्म पर आधारित एक व्यवस्था है आधुनिक समय में जाति व्यवस्था में परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है–

ब्राम्हणों की शक्ति में कमी
अछूत वर्ग का उन्मूलन
व्यावसायिक गतिशीलता
विवाह और भोजन सम्बंधी प्रतिबन्धों में परिवर्तन।
जाति व्यवस्था की उपयोगिता में अविश्वास
जन्म के महत्व में कभी।
जातिय समितियों का निर्माण ।
जातियों के बदलते हुये सम्बंध

जाति के बदलते प्रतिमान

जाति भारत की अद्वितीय व्यवस्था है जो परम्परागत रूप से मजबूत है। औद्योगिकरण और नगरीकरण के दौर जाति व्यवस्था परिवर्तन हो रहे हैं जातिगत व्यवसाय अब रह गये है, कोई भी जाति किसी भी व्यवसाय को अपनाने के लिए स्वतंत्रत है। आज ब्राम्हण या क्षत्रिय सेवा सम्बंधी कार्य करने लगे हैं। इस तरह वैश्य अध्यापन और सुरक्षा का कार्य करने लगे हैं विश्व ही परिवार की मान्यता भारतीय जातिय व्यवस्था को कमजोर करने में दान दिया है आज भारत की स्तरीकरण व्यवस्था में धन का महत्व बढ़ गया है और आधार पर निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो

गई है कहा यह जा सकता है कि जाति में तीव्र परिवर्तन हुये हैं इन परिवर्तनों के लाने में निम्न कारण उत्तरदायी रहे हैं–

ब्राम्हणों की उच्च शक्ति का ह्रास
पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता का महत्व
स्वतंत्रता आन्दोलन का योगदान
प्रजातंत्र की स्थापना
छुआछूत की समाप्ति
संयुक्त परिवारों का विघटन
जजमानी प्रथा की समाप्ति
अर्न्तजातीय विवाहों का महत्व
स्त्री शिक्षा का प्रसार
यातायात एवं संचार साधनों में उन्नति

जाति एवं वर्ग

जाति जन्म पर आधारित एक व्यवस्था है जिसका परिवर्तन नहीं होता है जो जिस जाति में जन्म लेता है आजीवन उसका सदस्य बना रहता है। आज आधुनिक परिवर्तनों ने जाति व्यवस्था में गतिशीलता ला दी है किन्तु इस गतिशीलता से जातियां अन्य जातियों प्रवेश कर नहीं पायी हैं क्योंकि जातियां एक बंद वर्ग है।

वर्ग भारत से भिन्न पूंजीवादी समाज की स्तरीकरण की व्यवस्था का आधार है वहां पर आर्थिक व्यवसायिक आधारों पर वर्गों का निर्माण होता है इन्हीं वर्गों के द्वारा समाज स्तरों में विभाजित होता है।

जाति भी स्तरीकरण का आधार है दूसरी ओर वर्ग भी स्तरीकरण आधार है कहा जा सकता है कि प्रत्येक देश में अपनी परिस्थति के अनुसार इन आधारों का प्रयोग किया है किन्तु जाति एवं वर्ग में मूलभूत अन्तर है जाति जन्म पर आधारित है वहीं पर वर्ग आर्थिक एवं व्यवसाय पर आधारित है। पश्चात् समाज के प्रभाव स्वरूप एवं उदारीकरण के प्रभावों के फलस्वरूप एक ही जाति में कई कार्यों का करना शुरू कर दिया है। इस तरह कार्य के आधार पर एक ही जाति में कई वर्गों का निर्माण होता है। ब्राह्मणों ने लेखन, व्यापार, श्रम, सेवा जैसे कार्य करना शुरू कर दिये हैं, जिससे लेखक, वर्ग, व्यापारिक वर्ग, श्रमिक वर्ग और सेवक वर्ग का उदय हुआ है इसी तरह वैश्यों शुभों में भिन्न भिन्न कार्यों को अपना लिया है जिससे जातियों के अन्दर निम्न वर्गों का उदय हुआ है इसी तरह यह कहा जा सकता है कि आज उपग्रह के समाज में एक ही जाति के अन्दर कई वर्गों जन्म ले लिया है।

वर्ग का निर्माण कार्य या व्यवसाय या सम्पत्ति के आधार पर होता है एक ही कार्य करने वाले या एक ही समान सम्पत्ति रखने वाले लोगों में कई कई जातियों के लोग शामिल होते हैं लेखक वर्ग में ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों व शामिल हो सकते हैं इसी तरह श्रमिक वर्ग में भ चारों जातियां शामिल हो सकती हैं निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि एक वर्ग के अन्दर कई जातियां होती हैं।

जाति के सम्बंध में गांधी और अम्बेडकर के विचार

जाति व्यवस्था के सम्बंध में गांधी जी ने कहा है कि जाति व्यवस्था मौलिक रूप में एक न्यायाचित व्यवस्था है। गांधी जी ने जात और वर्ण में अन्तर नहीं किया है। जाति व्यवस्था के कारण समाज के सभी कार्य सुचारू रूप से होते हैं, एक व्यक्ति कुछ कार्य करके दूसरे का सहयोग करता है और दूसरा भी कार्य करके उसका सहयोग करता है। गांधी जी ने कहा जाति व्यवस्था से समाज में स्तरबद्ध रहता है, जिससे व्यक्ति की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति होती है। और विकास कार्य सुचारू रूप से चलते रहते हैं इसलिए गांधी जी ने कहा कि सामाजिक न्याय एवं सामाजिक समानता दोनों विद्यमान हैं।

गांधी जी ने कहा है कि परिवर्तन के दौर में जाति व्यवस्था में कुछ दोष उत्पन्न होने लगे प्रथम दोष यह है कि कार्य का विभाजन जन्म के आधार पर किया जाने लगा भले ही उस जाति का व्यक्ति अक्षम हो किंतु उसे वही कार्य दिये जाते थे, किन्तु उचित तो यह है कि रुचि और कुशलता के आधार पर ही कार्य विभाजन होना चाहिए। गांधी जी के अनुसार दूसरा दोष यह है कि स्पृष्टयता का नियम उत्पन्न हो गये जिससे कुछ समूहों ने अपना वर्चस्व कायम किया और तीसरा नियम यह है कि जाति व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ अपवित्र और कुछ को सम्मान जनक समझा गया। गांधी जी ने ऐसे दोषों को दूर करने का प्रयास किया इसी का परिणाम है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के समय सभी जातियों ने हाथ से हाथ मिलाकर एक दूसरे का सहयोग किया।

बी.आर. अम्बेडकर ने भारतीय समाजशास्त्र का अध्ययन किया उन्होंने विदेश के समाजशास्त्र का भी ज्ञान अर्जन किया उन्होंने अमेरिका के समाजशास्त्र के परिषद् की सदस्यता ग्रहण की अम्बेडकर ने 1938 में जाति व्यवस्था के बारे में कहा कि जाति शक्तिशाली समूहों के द्वारा विकसित की गई है इसका उद्देश्य मजबूत लोगों के द्वारा कमजोर लोगों पर शासन करना है उन्होंने जाति की आलोचना करते हुए कहा कि जाति व्यवस्था हिन्दू धर्म का अंग है किन्तु अन्यायपूर्ण है यह मानसिक शारीरिक शोषण करती है। इस व्यवस्था में कुछ भी सकारात्मक नहीं है। अम्बेडकर ने इसलिए कहा है कि जाति व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिए। जाति व्यवस्था में समानता तथा सामाजिक न्याय के विचार या मुद्दे व्यवस्था समान्यतः अधिकांश विद्वानों ने जाति व्यवस्था को अन्यायपूर्ण माना है। इसे शोषणकारी उनका मानना है कि जाति अपवित्रता और निर्देश मात्र के विचारों को उत्पन्न करती है, जिससे शोषण प्रक्रिया तीव्र होती है, जिसका परिणाम यह निकलता है कि जाति के कारण समाज में समानता नहीं आ पाती है और न समाजिक न्याय मिल पाता है दूसरी ओर जाति व्यवस्था को अन्य विद्वानों ने सकारात्मक दृष्टि से देखा है कि समाज उनके अनुसार जाति व्यवस्था में अलग–अलग स्तर होते हैं उन सभी स्तरों में पारस्परिक समानता होती है और सहयोग द्वारा एक दूसरे के कृत्यों का क्रियान्वयन करती है। यदि उच्च जातियां आर्थिक एवं शारीरिक सहायता प्रदान करती है और निम्न जातियां सेवा कार्य करने में सहयोग प्रदान करती हैं कहा यह जा सकता है कि प्रत्येक जाति अलग–अलग रूपों में एक समान जीवन शैली अपनाते हुये समय को संगठित करती है।

एम.एन. श्रीनिवास ने बताया है कि जजमानी व्यवस्था के कारण उच्च जातियां निम्न जातियों की मदद करती है उनके अनुसार आर्थिक विपति या संकल के समय जातियां एक दूसरे के नजदीक आ जाती है उनमें आपसी समन्वय और तालमेल बना रहता है। श्री निवास ने बताया की गांव विवाह के समय सभी जातियां अपना–अपना योगदान करती हैं। श्री निवास के अनुसार

प्रभुजातियों अन्य जातियों के लिए सहयोग का भाव रखता है प्रभु जातियां अधिकाधिक उत्पादन करके निम्न एवं विप्पन जातियां की सहायता करती है।

वर्ग संरचना

भारत जाति प्रधान देश है किन्तु वर्गों का निर्माण निम्न ढंग से हो रहा है वैश्विक प्रभार में भारतीय वर्ग संरचना निर्माण में योगदान दिया है। आज भाषा, व्यवसाय, कार्य एवं उद्देश्य के आधार पर भिन्न भिन्न वर्ग निर्मित हो रहे हैं। मुगल शासन काल के पश्चात् अंग्रेजी शासनकाल से वर्ग संरचना के निर्माण में तीव्र परिवर्तन हुये हैं। भारतीय सामाजिक स्तरीकरण में वर्गों का योगदान दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है भारतीय वर्ग संरचना की सम्पूर्ण जानकारी भारतीय समाज के निम्न क्षेत्रों में ली जा सकती है।

भारत में वर्ग संरचना भारतीय समाज भी वर्ग संरचना से सुसंगठित है दीपांकर गुप्ता भारतीय समाज में वर्ग का निर्माण का आधार उपयोग है भारत में समझा जाता है उंचा वर्ग होगा भारतीय वर्ग ेमेजमतद बनसजनतम रहा है इसी आधार पर दीपांकर गुप्ता ने कहा है कि हमारे यहां के वर्ण पश्चिमी जहर के नशे में डुबे रहते हैं। योगेन्द्र सिंह के अनुसार परंपरागत भारतीय समाज मे वर्ग का सम्बंध उत्पादन पद्धतियों संपत्ति के सौमित्य बाजार बैकिंग एवं राजनैतिक शक्ति के केन्द्र से जुडा हुआ। योगेन्द्र सिंह ने कहा भारत में राजा, सामन्त, पुरोहित, व्यापारी किसान कारीगर वर्गों का निर्माण करते हैं। पी.सी.जोशी के अनुसार भारतीय सामाजिक व्यवस्था प्रारम्भ में व्यापारी का स्थान बहुत ऊंचा था।

भारत में वर्ग व्यवस्था खुली होकर के भी काम कर रही है। भारत के कृषि क्षेत्र में दो वर्गों का महत्व रहा है। प्रथम में भूस्वामियों का वर्ण आता है और द्वितीय वर्ण में कृषि श्रमिक शामिल होते हैं।

बी.एम. डान्डेकर ने भारतीय समाज में निम्न पांच प्रकार के वर्गों की चर्चा की है–

1 पूर्व पूंजीवादी वर्ण संरचना

2. नियोजक

3. सफेद पोश कर्मचारी

4. पूंजीवादी समाज स्वतंत्र उद्यमी

5. निश कोस कर्मचारी

उपर्युक्त इन पांच वर्णों को समान्य तौर पर तीन वर्गों में रखा जा सकता। प्रथम कृषक वर्ण, द्वितीय में उद्योग को शामिल किया जाता है।

सामान्य तौर पर धनी और निर्धन दो वर्ग भी पायें जाते हैं किन्तु इन दोनों के मध्य और भी वर्ग होते हैं जो समाज में अपनी भूमिका निभाते हैं।

कृषक वर्ण संरचना

व्यवस्था वास्तव में कृषक वर्ण जाति व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। कुछ विद्वानों का मानना कृषक वर्ण युरोपिय वर्ण की नकल है वहीं पर दूसरे विद्वान यह मानते हैं कि कृषक वर्ण पूरी तरह जाति से जुड़ी है, किन्तु सत्य यह है कि (भारतीय) कृषक वर्ण के निर्माण के लिए युरोपिय वर्ग संरचना एवं भारतीय जातिय व्यवस्था दोनों उत्तरदायी है, योगेन्द्र सिंह ने कहा कि वर्ग की वर्ग का तत्व सांस्कृतिक विभिन्नता वर्ण अवश्य है किन्तु यह ऐतिहासिक रूप से सभी समाजों में समान है। योगेन्द्र सिंह ने कहा देखा कि वर्ग जातियों से संबंध बनाकर स्वयं को परिवर्तित कर लिए हैं। कृषक वर्ग संरचना के लिए निम्न वर्गों का अध्ययन आवश्यक है। थी जिससे से भूपति वर्ण प्रथम स्थान पर था और ब्रिटिश काल में के वर्ग व्यवस्था कार्यशील दूसरी ओर खेतीहर वर्ग द्वितीय स्थान पर कार्यशील था। उस काल में प्रत्येक गांव में ये वर्ग क्रियाशील थे। सिमदतल ठीमस ने कहा कि भारत का प्रत्येक गांव गणतंत्र के रूप में है शुरू में गांव भूपति वर्ग अपने अपने हितानुसार नियमों का निर्माण करते थे किन्तु नये व्यवस्था लागू होने से भूमि पर स्वामित्व गांव का न होकर सरकार का हो गया स्वतंत्रत भारत में कृषक वर्ग खेतीहर मजदूर वर्ग और दस्तकारी वर्ग अस्तित्व में था। कृषक वर्ग भूपतियों से जमीन लेकर के खाद्यान्न पैदा करता था और खेती से उपजी कच्चे माल से वस्तु निर्माण का कार्य दस्तकार वर्ग करता था।

प्रारम्भ में जमींदारी व्यवस्था अधिकाधिक शोषण किया प्रेमचन्द्र के उपन्यास रंगभूमि और गोदान शोषण के विनासकारी परिणामों उजागर किया। 1950 में जमीनदारी प्रथा समाप्त कर दी गई और सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार लागू किये गये। इस सुधार व्यवस्था से राज्य सरकार ने सीधे किसान से सम्पर्क किया जिससे विचौलियों को दूर किया जा सका इन विचौलियों के समाप्त होने से नये वर्गों का गठन हुआ क्योंकि वे समाप्त होने से नये वर्गों का गठन हुआ कृषकों की जमीनों से बेदखल कर दिया गया।

उपर्युक्त विश्लेषण के पश्चात् वर्ग में निम्न तीन वर्ग को देखा जा सकता है किसान जा सकता है, इसके पास पर्याप्त खेती होती है जो स्वयं कृषक न करे निर्धन किसानों से खेती करवाते हैं। यह व्यवसायिक कृषक भी उच्च किसान वर्ग एवं माध्यम किसान एवं निम्न वर्ग में विभाजित होता है निर्धन किसान वर्ग के पास सीमित कृषि होती है।

कृषक वर्ग में दूसरा प्रमुख वर्ग खेतीहर लोगों का है जो बहुत ही कम जमीन के मालिक होते हैं ये प्रायः व्यवसायिक कृषक की जमीन पर कृषि करते है, खेतीहर लोगों का भी तीव्र वर्गों में विभाजन हुआ है प्रथम वर्ग में वे किसान आते हैं जिनके पास जमीन छोटा टुकड़ा होता है और श्रम बेंचकर आजीविका चलाते हैं। दूसरे वर्ग में वे खेतीहर लोग आते हैं जो लगभग भूमिहीन होते हैं कृषि मजदूरी करते हैं उन्हीं बदले में धान, गेंहू आदि का भुगतान किया जाता है कभी–कभी और कहीं कहीं उन्हें नगद मजदूरी भी दी जाती है।

कृषक वर्ग का तीसरा वर्ग दस्तकारों का है। जो कारीगरों का कार्य करते हैं इनके अपने किसानों पर आश्रित रहना पड़ता है। बढ़ई, लोहार, कुम्हार, नाई इसी श्रेणी में आते हैं।

औद्योगिक वर्ग संरचना

अंग्रेजी प्रकाश के पश्चात् भारतीय समाज में नगरीकरण एवं औद्योगीकरण का महत्व बढ़ा है। 18वीं शताब्दी की यूरोपिय औद्योगिक क्रांति ने भी भारत पर अपने पैरों को फैला दिया है जिससे यहां के कल कारखानों, उद्योग, धन्धों, छपाई मशीन और संचार साधनों का शुभ आरम्भ हुआ

और ऐसा लगा कि भारत में औद्योगिक समाज का प्रस्थान हो गया। ग्रामीण जनता शहरों में आना शुरू करदी शहरों में नवीन सम्बंधों के आधार पर नये वर्गों का उदभव हुआ अंग्रेजी उपनिवेशवाद के परिणम स्वरूप उद्योगों में चार वरूप वर्गों का उदभव हुआ।

प्रथम वर्ग व्यापारी एवं औद्योगिक वर्ग आता है ब्रिटेन से व्यापारियों का आना शुरू हुआ और भारतीय कच्चा माल से भारत और ब्रिटेन दोनों जगह वस्तुओं का निर्माण किया जाने लगा भारत औद्योगिक जगत में उभरता हुआ राष्ट्र प्रतीत हुआ इसी का परणाम है कि मेंज प्दकपंद ब्वउचंदल ंदक थ्तंदबपेल ब्वउचंदल ने यहां व्यापार कार्य को तीव्र किया। और उद्योगों के मालिक बन गये। इस कार्य में प्रमुख भूमिका निभाने वाले व्यापारी कहलाये । चाय बगानों और जूट कारखानों एवं कोयले खानों आदि में कार्य किये गये और भारतीय समाज में इनका स्थान सर्वोपरी रहा उद्योगों में निवेश केवल यूरोपिय समाज से ही नहीं किया बल्कि भारतीय पूजीपतियों ने भारत में भी अंग्रेजों की स्थापना की और औद्योगिक वर्ण में शामिल हुये टाटा, विडला एवं गोदरेज इसके उदाहरण हैं। नेहरू जी ने माना था कि देश कि आधुनिकरण के लिए औद्योगिक प्रगति आवश्यक है तभी ग्राम स्वराज आ सकता है गांधी जी ने चरखे, करघे और कुटीर उद्योग पर जोर दिया भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का अस्तित्व कायम हुआ इन उद्योग पद्धतियों द्वारा अधिकाधिक धन का केन्द्रीकरण किया गया इसलिए `वससपदह वितेपेवद ने प्दकपंश्े उव... कवदहमतवने कमववकमे में लिखा है कि देश की सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग बिडला, डालमिया, बजाज, सिंघानिया, एवं अम्बानी के हाथों में आकर सिमट गया है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए खतरनाक है। औद्योगिक समाज में नियमवर्ण व्यवसायिक वर्ग है जो चिकित्सा अर्थव्यवस्था एंव प्रशासन के क्षेत्रों में अपनी सेवाओं को दे रहा है। मैकाले की अंग्रेजी शिक्षा नीति के कारण भारत में वकील, चिकित्सक, अध्यापक, प्रबन्धक, इंजीनियर, अधिकारी, टेक्नीशियन कृषि वैज्ञानिक एवं पत्रकारों कालिया इस वर्ग ने राष्ट्रीय आन्दोलन में निर्णायक भूमिका निभाई धर्मिक सुधार आन्दोलनों को गति प्रदान की।

औद्योगिक समाज में तृतीयक वर्ण में शामिल है बड़े बड़े शहरी एवं कस्बों में इन लोगों ने औद्योगिक कार्यों को विस्तार प्रदान किया यह लघु व्यापारी दुकानदार और असंगठित मजदूर जरूर है कि गांव से शहरों की ओर प्रस्थान हुआ जिससे गंदी गलियों, गंदी बस्तियों एवं बिजली की समस्या बातयी गयी। इस वर्ण ने व्यापारी एवं किसानों के मध्य कहीं का कार्य किया ग्रामीण वस्तुओं को बड़े व्यापारियों तक पहुंचाया धीरे–धीरे इस वर्ग ने अपनी आर्थिक शक्ति मजबूत कर लिया जिससे इनके द्वारा किसानों को ठगा जाने लगा फिर भी यह कहना उचित होगा कि इस वर्ग ने किसानों को आगे बढ़ाने का अवसर प्रदान किया।

औद्योगिक वर्ग के चतुर्थ वर्ण में श्रमिक वर्ण शामिल है जो निर्धन किसान है। और गांव को छोड़कर शहर आ गये हैं इनके पास केवल श्रम शक्ति है इसी बदौलत ये अपने जीवन को आगे बढ़ा रहे हैं।

औद्योगिक समाज में निर्धन श्रमिकों का शोषण हुआ किन्तु सरकारी प्रत्यनों ने इस शोषण को काफी हद तक कम कर दिया। कामगार क्षतिपूर्ति अधिनियम उद्योग अधिनियम एवं खन्न अधिनियम औद्योगिक कर्मियों को आगे साहस के साथ आगे बढ़ाने का साहस प्रदान किया।

भारत में संभ्रात वर्ण निर्माण

वीडियो के अनुसार उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के आधार सामाजिक असमानता का अस्तित्व कायम होता है समाज विभिन्न शक्ति और क्षमता वाले वर्गों को समन्वय है। सामान्यतः समाज में एक ऐसा वर्ग होता है जो संख्या में कम होता है किन्तु साधन सम्पन्न होता है वह स्वयं में एकीकृत नहीं होता है वह सम्मान शक्ति और सर्वश्रेष्ठ जैसे तत्वों से सम्पन्न होता है और यही अल्प संख्यक वर्ग पर शासन करता है। इसी को उच्च वर्ग या संभ्रांत वर्ग कहा जाता है। दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग होता है जो संसाधन विहीन किन्तु संख्या मं अधिकांश होते हैं उसके पास सामाजिक सम्बंधों को मजबूत नहीं होता है और यह हमेशा दूसरों द्वारा शासित होता है।

प्रत्येक समाज में असमानता व्याप्त होती है। भारतीय समाज भी इससे अलग नहीं है यहां पर इतिहास के घर काल में संभ्रांत वर्ग और सामान्य जनता जैसे दो वर्ग रहे हैं। इसी तरह ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जातियों में भी संभ्रांत वर्ग एवं समान वर्ग अस्तित्व में रहे हैं। च्ंततंजव ंदक डेां ने शासक और शोषित दो वर्गों की चर्चा की है। च्ंततमजव ने शासक वर्ग को शेर के रूप में कहा है और शोषित वर्ग को सामान्य जन कहा है। वास्तव में संभ्रांत वर्ग हर देश और काल में परिवर्तित होता रहता है।

अभिजात वर्ग दूसरे अभिजन को लिया दिखाने का प्रयास करता है कहा जा सकता है कि एक अभिजन दूसरे अभिजन के लाश पर पांव रखता हुआ आगे बढ़ना चाहता है यह प्रक्रिया हर अभिजन चलाता है। योगेन्द्र सिंह ने कहा कि अभिजन का प्रभाव और शक्ति सामान्य जनता को प्रभावित करती है।

भारत में समय–समय ब्राम्हण क्षत्रिय, वैश्य एवं कायस्थ अभिजन वर्ग के सदस्य रहे हैं। मुगल काल में मुगलों ने अभिजन वर्ग का पद ग्रहण किया। प्रारम्भ में शुंण और कुपातों के आवागमन के समय ब्राह्मणों ने अभिजन वर्ग का निर्माण किया नहीं पर नंद वंश ने शूद्र वंशको अभिजन वर्ग में शामिल किया और मौर्य काल तथा गुप्त काल के पश्चात् क्षत्रियों ने संभ्रांत वर्ण का निर्माण किया इसी तरह मुगलों और अंग्रेजों ने क्रमशः उस वर्ग में अपने को शामिल किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भूमि सुधार नियम लागू हुये जिससे क्षत्रिय और ब्राम्हण जो अभिजन वर्ग में रहते थे। धीरे धीरे सामान्य वर्ग में आ गये और निम्न जातियां संभ्रांत वर्ग में शामिल हो गयी।

कोलकता शहर में दो वर्गों ने जन्म लिया प्रथम में भद्र लोगों का रखा गया। इस तरह देखा गया कि शेष के परिवार के प्रमुख संभ्रांत वर्ग के रूप में उभरे योगेन्द्र सिंह अभिजनों का एक क्षेत्र विशेष में वर्चस्व बढ़ गया है और ऐसा अभिजन अपने हित का ध्यान देना था, किन्तु निम्न वर्गों और गांव के निम्न जातियों पर ध्यान नहीं देता था। इसी कारण छोटे–छोटे आन्दोलन हुआ।

वास्तव में संभ्रांत वर्ग एक क्षेत्र एवं समाज तक ही सीमित होता है और एक समय विशेष के बाद उसकी जगह वर्ग लेता है, यही कारण है कि भारत में समय–समय पर हर क्षेत्र में कहीं पर ब्राम्हण, कहीं पर क्षत्रिय, कहीं पर वैश्य तो कहीं शूद्र वर्ग में इसी तरह इस वर्ग में शामिल किया। अस्तित्व में रखा ही कहा जा सकता है कि अभिजन क्षेत्रीय स्थानीय और ग्रामीण स्तर पर अपना तो कहीं पर बौद्धिक वर्ग अभिजात रहा। यह भी देखा गया कि व्यवसायिक वर्ग भी संभ्रांत वर्ग के महत्व रखते हैं।

मध्यम वर्ग का उदभव

भारत सामंतवादी व्यवस्था से गुजरा हुआ देश है उस व्यवस्था में प्रथम वर्ग भू–मासिक था और दूसरा वर्ग भू–हीन श्रमिक था। इन दोनों वर्गों के मध्य एक ऐसा वर्ग पनपना शुरू किया जो हस्त शिल्प कार्यों में लगा रहता था। इस मध्यम वर्ग में बुनाई, कारीगरी आदि कार्यों को अपने हाथ में ले लिया इस सामंतवादी व्यवस्था में मध्यम वर्ग स्पष्ट तौर पर सामने नहीं आ पाया क्योंकि मालिकों की अपेक्षा वह अपनी क्षमता प्रकट कर नहीं पा रहा था।

आज सामाजिक और राजनैतिक जीवन में मध्यम वर्ग का प्रभाव बढ़ा है इस वर्ग में प्रध्यापक, व्यापारी, शिल्पकारी, लेखक व अन्य प्रबुद्ध वर्ग को रखा जा सकता है। घनश्याम शाह ने मध्यम वर्ग के साहित्य पर काफी कुछ लिखा है वास्तविकता यह है कि आज मध्यम वर्ग के विषय में जानकारी देने के लिए पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है किन्तु घनश्याम शाह ने इस वर्ग के लिए काफी कुछ लिखा है वास्तव में मध्यम वर्ग बाजार की सर्वस्वचिजों को हथिया लेने का प्रयास कर रहा है ऐसा वर्ग बंद डिब्बों में खाना रखने का आदि होता जा रहा है। वास्तविकता यह है कि बाजार में आयी हुई वस्तु तुरंत मध्य वर्ग के पास पहुंच जाती है। मध्य वर्ग अच्छी अच्छी गाड़ियों एवं वायुयानों में सवार होता है ऐसे गतिविधियां देखकर यह कहा जा सकता है कि आज का मध्य वर्ग आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से ऊपर उठता जा रहा है।

समाजशास्त्र की दृष्टि से कहा जा सकता है कि मध्यम वर्ग वह है जो बाजार स्थिति, काम की दशा और प्रतिष्ठा में काम करते हैं। दीपांकर गुप्ता ने में कहते हैं कि आज के मध्यम वर्ग को केवल उपभोग वाला ही नहीं समझना चाहिए। मध्यम वर्ग वास्तव में किसी देश या समाज को आधुनिक जीवन में प्रवेश करता है, जैसा कि युरोप को बध्य काल से बाहर निकालकर आधुनिक काल में लाने का श्रेय मध्यम वर्ग का ही है। दीपांकर गुप्ता ने कहा है कि भारत में जो वर्ग बेहतर जिन्दगी बिताता है वह अपने आप को मध्यम वर्ग कहता है जबकि पश्चात् जगत मं मध्यम वर्ग अपने आपको सम्पूर्ण समाज से जोड़ने का प्रयास करता है।

घनश्याम शाह ने कहा कि एक तरफ पूंजपति वर्ग होता है जो संसाधनों पर अधिकार रखता है वहीं पर दूसरा वर्ग ऐसा होता है जो अपने श्रम के बदौलत जीवन व्यतीत करता है। मध्यम वर्ग इन्हीं के बीच का वर्ग है जिसके पास प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन के साधन नहीं होते हैं न ही वह शारीरिक श्रम करता है यह ऐसा वर्ग होता है जो सफेद पोष अधिकारियों से बनता है। भारत में इस वर्ग के अन्दर डाक्टर, इंजीनियर, वकील, टीचर आदि को रखा गया है। घनश्याम शाह ने इस वर्ग को पैटी बुर्जुआ भी कहा है, यह ऐसा वर्ग होता है जो बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग के मध्य में स्थापित होता है।

पश्चिमी देश का मध्यमवर्ग सामंति परम्परा को ध्वस्त कर दिया है पश्चिमी में वैयक्ति स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया है किन्तु भारत के मध्यम वर्ग ने ऐसा नहीं किया है भारत का मध्यम वर्ग ''खाउ" प्रवृत्ति वाला है। इसलिए इसे सामाजिक उत्थान का समय नहीं मिल पाता है।

बी.बी. मिश्रा ने बताया है कि मध्य वर्ग वेतन लेने वाला वर्ग है जो सरकारी कार्यालयों, व्यापारी संगठनों, औद्योगिक व्यवसायों में कार्य करता है इस वर्ग के अन्तर्गत डंतबीमदजए ।हमदजए क्पतमबजवतए ।कउपदपेजतंजमतए ठंदाए ठनेपदमेउंद आते हैं जो अपनी योग्यता अनुसार भौतिक चीजों को प्राप्त करते हैं इस मध्यम वर्ग के अन्तर्गत नगर पालिका के कर्मचारी तथा सरकारी और राजनीतिक कार्यकर्ता को भी शामिल किया जाता है।

मध्यम वर्ग जीवन भर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा रहता है। आधुनिक माध्यम मध्यम वर्ग समाज के बारे में सोचने लगा है। मध्यम वर्ग को भली प्रकार निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है–

उपभोग– मध्य वर्ग उपभोगवादी प्रवृत्ति का होता है आवास, परिवहन, शिक्षा, पानी, बिजली आदि अधिकाधिक प्रयोग करता है। भारतीय मध्यम वर्ग की जीवन शैली आश्चर्यजनक है वह महंगी कारों, आधुनिक मशीनों, डिजायनर वस्त्रों के साथ जीवन व्यतीत करता है। उपभोग के मामले में दिन प्रतिदिन आगे की ओर बढ़ता जा रहा है।

पश्चिमी नशा– भारतीय मध्यम वर्ग पश्चिमी देशों की संस्कृति का अनुशरण कर रहा है इस पश्चिमी संस्कृति के नशा में रहते हेतु वह अपने जीवन को सकुशल बनाना चाहता है।

अधिकाधिक धन मध्यम वर्ग अधिक धन एकत्रित करना ही अपना विकास समझता है। त्पकल ौंहंत छलंलचंस ने कहा कि भारत का हर आदमी अधिक से अधिक धन कमाना चाहता है धन के इस लालच में मध्यम वर्ग सबसे आगे हैं। वास्तव में धन की यह लालच स्त्रियों में अधिक पाई जाती है। इसलिए वे अपने पतियों को अधिक उत्साहित करती हैं।

नया कामगर वर्ग– मध्यम वर्ग अपनी योग्यता के अनुसार अपनी सेवा प्रदान करता है और उसी की एवज में वह धन प्राप्त करता है, जबकि इस मध्यम वर्ग के पहले श्रमिक वर्ग ही था, जिसने श्रम कोही महत्ता प्रदान किया ।

संरक्षण और पक्षपात– पश्चात् देशों का मध्यम वर्ग संरक्षण नहीं चाहता है किन्तु मध्यम वर्ग आश्रय लेना चाहता है और वह चाहता है कि सरकार इन्कम टेक्स में अधिक से अधिक सबसिडी दे वह पक्ष पाती भी है क्योंकि अपने हित प्राप्ति के लिए वह दूसरे का अहित कर देता है।

गरीबी पर निर्भर–क्पचंदामत ळनचजं के अनुसार भारत में मजदूरों की एक बड़ी फौज है मजदूर कम धन पर उपलब्ध हो जाते हैं। मध्यम वर्ग धन की बदौलत गरीबों को अपनी सेवा में लगाया।

मानदण्डों और मूल्यों की अवहेलना– मध्यम वर्ग बहुत जल्द उठना चाहता है। इसलिए वह सामान्य नियमों को तोड़करके एवं नैतिकता के बिना ध्यान दिये हुये कार्य को करना चाहता है वह किसी भी तरह कार्य की पूर्ति करना चाहता है।

धर्म, प्रेम दिखावा– मध्यम वर्ग वस्तु में आस्था विहीन हो गया है, हां दिखाने के लिए वह तीर्थयात्रा अवश्य करता है किन्तु ऐसी तीर्थयात्रा मनोरंजन के लिए ही हुआ करती है। मध्यम वर्ग गणेश महोत्सव, शिवरात्रि आदि पर्व अवश्य मनाता है आस्था रहे न रहे।

उदारीकरण और उपभोक्तावाद– आज उदारीकरण के दौर में डनसजपदंजपवदंस ब्वउचंदल ने भारत पर अपने पैर मजबूत कर लिये हैं, उदारीकण से मध्यम वर्ग को अधिकाधिक फायदा हुआ है मध्यम वर्ग ने अपनी उपभोक्तावादी लालसाओं की पूर्ति की है। इन लालसाओं की पूर्ति के लिए भ्रष्टाचार का भी सहारा लिया है।

भारत में मध्यम वर्ग अचानक जन्म नहीं लिया है। कुछ ऐसी परिस्थितियां निर्मित होती गई जिससे मध्यम वर्ग संगठित होता रहा, मध्यम वर्ग ने निम्न परिस्थितियों का फायदा लेकर के अपने को मजबूत किया है–

1. भारतीय समाज में व्यापारियों और औद्योगिक कर्मियों का प्रभाव बढ़ने लगा व्यापारी कम्पनियां और उद्योगों में नये नये पदों का सृजन हुआ जिसके परिणाम स्वरूप मध्यम वर्ग अस्तित्व में आया।

2. भारतीय समाज में अंग्रेजी सरकार का उपनिवेश बढ़ने लगा इस उपनिवेश के कारण मैकाले ने ऐसी शिक्षा पद्धति की व्यवस्था की जिससे मध्य वर्ग का उदय हुआ।

3. स्वतंत्रत भारत में नेहरू जी ने राष्ट्रीय नीति का आधुनिकीकरण किया जिससे उद्योगों का विकास हुआ उद्योगों के विकास के फलस्वरूप नौकर शाही एवं सफेद पोश कर्मचारियों का उदय हुआ मध्यम वर्ग इन्हीं से निकला हुआ वर्ग है।

4. मध्य आज विश्व एक परिवार के रूप अस्तित्व में है। इस वैश्वीकरण की भावना ने संचार माध्यम से सम्पूर्ण विश्व को जोड़ दिया जिससे पश्चात् देश के माध्यम वर्गों भारतीय वर्ग को विकसित किया।

आदिम जातियों में पूर्व वर्ग/उसका उदभव– मूलतः भारत में आदिवासियों से रचा धारणा में सहजता सरलता पाई जाती है, उनमें असमानता एवं वर्ग जैसी बसा देश है, आदिवासियों नहीं रहती है, किन्तु अन्य समाज के प्रभाव स्वरूप समानता से सम्पन्न जनजातियों में भी वर्ग को जनजातियों ने वर्ग भावना पैदा होने के निम्न कारण हैं।

जन्म दे दिया है। कुछ स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान ने जनजातियों को सुरक्षायें प्रदान की है, जिससे जागरुक जनजातियों ने इस फायदा को ग्रहण किया, जिसका परिणाम यह निकला कि उन्हीं जनजातियों के मध्य कुछ लोगों का वर्ग बन गया है जो नौकरी पेशे में योगदान देता है, संविधान भी धाराएं 14,15,16,29,38, 46,334,335 अथवा 342 में आदिवासियों को सामाजिक आर्थिक शैक्षणिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में लाभ या उठने में शुभ अवसर प्रदान किया।

जनजातियों के मध्य वर्ग का उदभव जनजातियों के मध्य वर्ग का उद्भव एक लम्बी प्रक्रिया के पश्चात् हुआ है प्रारम्भ में जनजातियों को सम्य समाज से अलग रखा जाता था, किन्तु इस पृथकरण का अंत उस समय हो गया जब जनजातियों को उद्योगों में कार्य करने का अवसर मिला। शहरीकरण और औद्योगीकरण से प्रभावित हो करके यह नौकरिये शाह वर्ग का एक नये वर्ग के रूप में उदभव हुआ। आज आदिवासियों ने हिन्दू समाज की संस्कृति का प्रभाव पड़ा। जिसके कारण एक नये वर्ग ने जन्म लिया है इसी तरह ईसाई धर्म ने शैक्षिक स्वास्थ्य संबंधी एवं आर्थिक सहायता प्रदान किया जिससे जनजातियों के नये वर्ग एवं नई संस्कृति का जन्म हुआ।

सरकार ने भूमि सुधार अधिनियम लागू किये जिससे जनजातियों की भूमि को खरीदना मुश्किल हो गया है। जनजातियों आधुनिक तकनीक का प्रयोग करके अपनी भू–सम्पत्ति के उपज को बढ़ाया, जिससे उनका सामाजिक स्तर बढ़ा और इसी तरह से धीरे धीरे नये वर्ग का उदभव हुआ।

आन्ध्रा, गुजरात, पंजाब, बिहार, केरल जैसे प्रांतों में छोटे छोटे आदिवासी आंदोलन होते रहे हैं इन्हीं आन्दोलनों के फलस्वरूप सरकार ने सरकार ने सुख सुविधायें उपलब्ध कराया तथा शोषणकारी ठेकेदारों को समाप्त किया जिसके पश्चात् जनजातियों के मध्य जीवन उपभोग अवसर बढ़े, उसी के फलस्वरूप नवीन वर्ग का उद्‌भव हुआ।

सरकारी विकास कार्यक्रमों ने आदिवासी क्षेत्रों में काफी विकास कार्य किये जिसके कारण कुछ आदिवासी को अत्यधिक लाभ हुआ जिसके फलस्वरूप उनमें आधुनकि प्रवृत्तियों ने जन्म ले लिया इस तरह नये उच्च वर्ग का उदय हुआ। यह वर्ग अन्य जनजातियों से अपने को अलग और महत्व वाला मानने लग गया। ऐसी ही प्रक्रिया सम्पूर्ण जनजाति या समुदाय में अनवरत चलती रही है जिससे जनजातियों के भी वर्ग व्यवस्था का जन्म हुआ।

दलित चेतना का उदय

आंधे बेतई ने सभी पिछड़े और अनुसूचित जातियों को दलित जातियों में शामिल किया है। इसी तरह बहुत अन्य विद्वानों ने अपवित्र और अछूत हिन्दुओं को दलित कहा है। बी. आर. अम्बेडकर ने सर्वप्रथम दलित नाम दिया और महात्मा गांधी ने हरिजन नाम दिया । वास्तव में सभी अनुसूचित जातियां दलित हैं। इन्हें हिन्दू वर्ग व्यवस्था में निम्न स्वतंत्रता प्रदान किया गया।

दलित जातियों में चेतना का आरम्भ कई कारणों से हुआ है। सबसे प्रमुख कारण अंग्रेजी राज्य की सेनाओं में भर्ती इन लोगों को किया अंग्रेजी राज्य के कारण दलित पुरानी रूढिवादिता से मुक्त हो गये। अंग्रेजों ने नवीन कानूनों को अस्तित्व में ला दिया। अंग्रेजी राज्य के कारण दलितों ने शिक्षा प्राप्त किया और पश्चिमी विचार धारा से प्रभावित होकर के दलितों ने आन्दोलन शुरू किया।

भारत में दलित चेतना के उदय में पिछड़ी जातियों के आन्दोलन की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। श्रलवजपइं त्व थ्नससमल ने आन्दोलन किया इसी आन्दोलन से चेतना पा करके अम्बेडकर न भी आन्दोलन की शुरुआत की। इस तरह के दलित आन्दोलन की शुरूआत 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुये। बंगाल के फरिदपुर जिले में केवट जाति का आन्दोलन हुआ, जिससे दलितों में सामाजिक उत्थान की ओर अग्रसर होने की भावना ने जन्म लिया। ठण्ण्ण ।उइमांत ने वैचारिक और राजनैतिक दृष्टि से मजबूत होकर के आन्दोलनों को गति प्रदान किया, जिससे भारतीय दलितों में धीरे–धीरे सामाजिक अधिकारों और राजनैतिक अधिकारों के पाने के सिलसिले शुरू हो गये। कांग्रेस ने 1911 में दलित हित की बात की थी। अम्बेडकर ने 1922 में दलित संघ का निर्माण किया। जिससे दलितों का मंदिरों में प्रवेश और सावर्जनिक स्थलों में प्रवेश का साहस मिला।

दलित आन्दोलन ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था परिवर्तित कर दिया, क्योंकि शैक्षिक और आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में दलितों ने अपने को पहुंचा दिया। इस दलित चेतना से बंधुवा मजदूरी जैसी प्रथा भी धीरे–धीरे समाप्त हो गयी। प्रारम्भ में अन्य जातियों ने इस चेतना का उदभव में बाधक बने। किन्तु अंततः सम्पूर्ण समाज ने इसे स्वीकार किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् संवैधानिक उपबंधों के बाद दलितों को अपनी प्रस्थिति को उठाने का शुभ अवसर मिला। कांग्रेस कि सरकार नेहरू जी और इन्द्रा जी ने दलितों के लिए अनेक कार्य किये। समय समय पर सरकार ने नियम पारित करके दलितों को विकास के अवसर प्रदान किये

लोक सभा एवं विधान सभा में दलितों के लिए स्थान सुरक्षित करके उन्हें ऊपर उठाने का अवसर प्रदन किया। बहुजन समाज पार्टी ने दलित वर्ग को अपनी ओर आकर्षिक किया है हालांकि पार्टी को यह आकर्षण राजनैतिक हित प्रदान किया किन्तु दलितों को राष्ट्र की धारा में चलने या आने का शुभ अवसर मिला।

संविधान ने दलित चेतना को तीव्र कर दिया। पंचायतीराज अधिनियम ने दलितों को प्रतिशत के आधार पर गांव में ही शासन करने का मौका दिया। अन्य जातियां मानसिक रूप से दलित स्त्रियों के शासन को स्वीकार करने लगी ग्रामीण समाज वास्तव में दलित उत्थान सहयोग कर रहा है आज उन्हें समाज साथ साथ चलने का शुभ अवसर दिया है।

यूनिट–3

सामाजिक परिवर्तन

(वबपंस बेंदहम)

सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों से है। कुछ विचारक सामाजिक ढांचे में होने वाले परिवर्तनों को सामाजिक कहा है। सम्पूर्ण समाज अथवा उसके किसी भी पक्ष में होने वाले परिवर्तन किसी निश्चित कालावधि में किसी सामाजिक परिघटना में पर्यवेक्षणीय अन्तर है।

सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित कुछ विचार

मैकाइवर एवं पेज – ''समाजशास्त्री के रूप में हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल सामाजिक सम्बन्धों से है, अतः केवल सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों को ही सामाजिक परिवर्तन कह सकते हैं।''

किंग्सले डेविस–''सामाजिक परिवर्तन से हमारा अभिप्राय केवल उन परिवर्तनों से है जो सामाजिक संगठन में होते हैं अर्थात् समाज की संरचना और समाज के कार्यों में।''

गिलिन एवं मिलिन– ''सामाजिक परिवर्तन जीवन की स्वीकृत रीतियों में परिवर्तन को कहते हैं चाहे ये परिवर्तन भौगोलिक दशाओं के परिवर्तन से हुए है अथवा सांस्कृतिक साधनों से हुए हो।''

जानसन – ''अपने मूल अर्थ में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सामाजिक ढांचे में परिवर्तन है।''

जानसन ने सामाजिक मूल्यों, संस्थाओं और पुरस्कारों, व्यक्तियों उनकी अभिवृत्तियों एवं योग्यताओं में होने वाले परिवर्तन को भी सामाजिक परिवर्तन कहा है।

मेरिल तथा एल्ड्रिज– ''जब मानव व्यवहार बदलाव की प्रक्रिया में होता है तब हम उसी को दूसरे रूप में इस प्रकार कहते हैं सामाजिक परिवर्तन हो रहा है।''

सामाजिक परिवर्तन की विशेषतायें

1. सामाजिक परिवर्तन सार्वभौमिक है।

2. सामाजिक परिवर्तन सामुदायिक परिवर्तन है।

3. सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति सामाजिक है।

बीरस्टीड– ''कोई भी दो समाज पूर्णतः समान नहीं है। उनके इतिहास और संस्कृति में इतनी भिन्नता पायी जाती है कि किसी में भी दूसरे का प्रतिरुप नहीं कह सकते।''

4. सामाजिक परिवर्तन अवश्यम्भावी एवं स्वाभाविक है।

5. सामाजिक परिवर्तन की गति समरूप नहीं होती

6. सामाजिक परिवर्तन में जटिलता है।

7. सामाजिक परिवर्तन एक अनिवार्य घटना है।

8. सामाजिक परिवर्तन की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

9. सामाजिक परिवर्तन अनेक तत्वों की अन्तक्रिया का परिणाम होता है।

10. सामाजिक परिवर्तन प्रमुखतया रूपान्तरण प्रकार के होते हैं।

11. सामाजिक परिवर्तन सदैव तुलनात्मक गति में आंके जाते हैं।

सामाजिक परिवर्तन एवं सांस्कृतिक परिवर्तन

सामाजिक सम्बन्धों के प्रतिमान को समाज कहते हैं। मनुष्य द्वारा निर्मित मूर्त एवं अमूर्त स्वरूपों को संस्कृति कहते हैं। परम्परा, रुढियों, सामाजिक मानदण्ड, ज्ञान, आदर्श मनुष्य की अमूर्त सर्जन क्षमता के प्रतीक है। जबकि आवासीय शैली, वाहन, पोशाक, भोजन, व्यंजन इत्यादि मनुष्य के सर्जन के मूर्त स्वरूप है। आगबर्न ने भौतिक एवं अभौतिक को समझाया है।

सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन से अधिक है, जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन सम्पूर्ण परिवर्तन (भौतिक व अभौतिक) से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का एक भाग है। सांस्कृतिक परिवर्तन व्यापक है। सामाजिक परिवर्तन का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित है।

सामाजिक परिवर्तन किसी सांस्कृतिक परिवेश में ही प्रतिफलित होता है किन्तु वह सम्पूर्ण संस्कृति को न छूकर उसके एक सामाजिक पक्ष को ही परिवर्तित करता है।

सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमान (च्ंजजमतदे वि वबपंस बैंदहम)

मैकाइवर एवं पेज ने अपनी पुस्तक सोसाइटी में सामाजिक परिवर्तन के तीन प्रमुख प्रतिमानों का उल्लेख किया है।

परिवर्तन के तीन प्रतिमान–

प्रथम प्रतिमान (रेखीय परिवर्तन) (वैज्ञानिक प्रगति तथा प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के क्षेत्र में)
द्वितीय प्रतिमान (उतार–चढ़ाव वाला परिवर्तन) (जनसंख्या और आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में)
तृतीय प्रतिमान (चक्रीय परिवर्तन) (संस्कृति, फैशन, सामाजिक मूल्य, अलंकरण, नियन्त्रण व स्वतन्त्रता के क्षेत्र में)

प्रथम प्रतिमान– इसके अन्तर्गत एकाएक होने वाले परिवर्तन आते हैं। इनमें आगे भी परिवर्तन होता रहता है इसलिए इसे रेखीय परिवर्तन कहते हैं। नवीन आविश्कारों से उत्पन्न परिवर्तनों को इसमें रखा जा सकता है।

दूसरा प्रतिमान– इसमें कुछ समय के लिए परिवर्तन प्रगति की ओर होता हो तो कुछ समय के बाद झस की ओर परिवर्तन होता है। इसलिए इसे उतार–चढाव वाला परिवर्तन कहते हैं। आर्थिक क्रियाओं और जनसंख्या में परिवर्तन इसी प्रकार का होता है।

तृतीय प्रतिमान– इसमें माना गया है कि परिवर्तन एक चक्र की तरह घटित होते रहते हैं। इसीलिए इस प्रतिमान को चक्रीय परिवर्तन भी कहा जाता। इसे तंरगीय परिवर्तन भी कहा जाता है।

सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त

सर्वप्रथम सोलहवीं शताब्दी में जीन बोडिंग ने परिवर्तन का एक चक्रीय आधार प्रस्तुत किया था। जिसके द्वारा विभिन्न सभ्यताओं की ऐतिहासिक घटनाओं में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट किया गया।

सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों को दो प्रमुख प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–

1. सामाजिक परिवर्तन को चक्रीय सिद्धान्त

2. सामाजिक परिवर्तन के रेखीय सिद्धान्त

1. सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धान्त (ब्लबसपबंस जीमवतल वि वबपंस बींदहम)– चक्रीय सिद्धान्त के प्रतिपाद के अनुसार सामाजिक परिवर्तन कभी भी एक विशेष दिशा की ओर नहीं होते बल्कि जीवन प्रवृत्ति – जन्म, शिशुकाल, परिपक्वता, वृद्धावस्था एवं मृत्यु के समान इन परिवर्तनों में भी एक चक्रीय प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

चक्रीय सिद्धान्त के प्रमुख सिद्धान्तकार

1. स्पेंग्लर का चक्रीय सिद्धान्त– स्पेंग्लर ने 1918 में अपनी पुस्तक ष्जीम क्मबसपदम वि जीम ॅमेजष में अपना चक्रीय सिद्धान्त प्रस्तुत किया तथा विकासवादी सिद्धान्त की आलोचना की। स्पेंग्लर के अनुसार एक वृहत शरीर रचना के समान है जिसमें जन्म, किशोरावस्था मुनावरण्या प्रौढावस्था के पश्चात् पतन और विनाश के तत्व विद्यमान रहते हैं। जब समाज में भौतिक प्रगति आ जाती है नही समाज की बृद्धावस्था है जिसके बाद समाज की होना निश्चित है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन जन्म, विकास और पतन के चक्रीय रूप में निरन्तर चलता रहता है।

स्पेंग्लर ने संसार की आठ प्रमुख सभ्यताओं का ऐतिहासिक अध्ययन करके यह ज्ञात किया कि विकास और विनाश का कम लगभग सभी सभ्यताओं में समान रूप से विद्यमान रहा है। उन्होंने कहा है कि पश्चिमी समाज का पतन होगा तथा एशियाई समाज विकास की ओर बढेंगें।

सोरोकिन का सांस्कृतिक सिद्धान्त– सामाजिक परिवर्तन केवल उतार–चढ़ाव की एक प्रक्रिया है इसे समझाने के लिए सोरोकिन ने तीन संस्कृतियों इन्द्रियपरक एवं विचारात्मक संस्कृति की दो सीमाओं के बीच में होता है।

इन्द्रियपरक संस्कृति का सम्बन्ध भौतिक वस्तुओं एवं आविष्कारों से ही विचारात्मक संस्कृति ईश्वरीय न्याय, नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित है। आदर्शवादी संस्कृति में दोनों संस्कृतियों के विचार पाये जाते हैं।

सभी परिवर्तन, आदर्शवादी संस्कृति में ही होते हैं यानि इसने कभी इन्द्रियपरक विशेषतायें बढ़ती हैं तो कभी विचारात्मक संस्कृति के तत्व अधिक बढ़ने लगते हैं। इस प्रकार अधिकांश समय तक समाज में आदर्शवादी संस्कृति ही प्रभावपूर्ण बनी रहती है।

सोरोकिन निम्न उदाहरण द्वारा सगझाया है। ''यदि हम विद्वानों पर अंगुलियां चलाएं तो एक आवाज निकलेगी, यदि और जोर से चलाएं तो आवाज और तेज हाथ मारे तो हो सकता है कि और अधिक तेज आवाज न निकले बल्कि पियानों ही टूट जाए।''

संस्कृति में परिवर्तन अन्तर्निहित शक्ति के कारण ही होता है जैसे आन्तरिक शक्तियों के कारण शरीर का विकास होता है।

विचारात्मक (भावात्मक) संस्कृति की सीमा

सेरोकिन ने सामाजिक परिवर्तन का सांस्कृतिक गतिशीलता का सिद्धान्त अपनी पुस्तक ैवबपंस ंदक ब्नसजनतम च्लदंदपबे (1937) में प्रस्तुत किया।

नोट– संस्कृति के ध्रुवीकरण का सिद्धान्त सोरोकिन ने दिया है।

परेटो का चक्रीय सिद्धान्त– परेटो के सामाजिक परिवर्तन के चकीय सिद्धान्त को अभिजात वर्ग परिभ्रमण का सिद्धान्त (जीमवतल व िबपतबनसंजपवद व िमसपजमे) कहते हैं। इसका प्रतिपादन परेटो ने अपनी पुस्तक डपदक ंदक ैवबपमजल में किया।

नोट– परेटो का यह सिद्धान्त परेटो को पढ़ाते समय पढा दिया गया है।

टायनबी का सिद्धान्त (जीमवतल व िज्वलदंइमब)– अर्नाल्ड जे. टायनबी ने सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त अपनी पुस्तक श ैजनकल व िभ्पेजवतलश में प्रस्तुत किया। टायनबी (एक अंग्रेज इतिहासकार) ने विश्व की 21 सभ्यताओं का अध्ययन किया। विभिन्न सभ्यताओं का अध्ययन करके टायनबी ने सभ्यताओं के विकास का सामान्य प्रतिमान ढूंढा और सिद्धान्त का निर्माण किया। टायनबी के सिद्धान्त को चुनौती एवं प्रत्युत्तर का सिद्धान्त (बिंससमदहम ंदक तमेचवदेम जीमवतल व िवबपंस बींदहम) कहते हैं।

प्रारम्भ में प्रत्येक सभ्यता को प्रकृति एवं मानव द्वारा चुनौती दी जाती है। व्यक्ति इस चुनौती का प्रत्युत्तर देता है तथा सभ्यता व संस्कृति का निर्माण करता है तो समाज इन चुनौतियों का सामना करता है, वह जीवित रहता है।

परिवर्तन का रेखीय सिद्धान्त (स्पदमंत जीमवतपमे व िबींदहम)– रेखीय सिद्धान्त के विद्वान मानते हैं कि परिवर्तन एक ही दिशा में आगे की ओर होता है। वह स्थिति पुनः नहीं आती जो परिवर्तन के दौर से गुजर जाती है यानि रेखीय परिवर्तन पीछे मुड़कर नहीं देखता है। मार्क्स तथा वेबलिन ने भी रेखीय सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। इनके सिद्धान्त के प्रमुख सिद्धान्तकार निम्न हैं–

1. आगस्त काम्टे का सिद्धान्त– काटे का कहना है कि मनुष्य के बौद्धिक विकास के साथ ही सामाजिक परिवर्तन होता है। मनुष्य के विचारों में जितना परिवर्तन होगा उतना ही सामाजिक परिर्वतन होगा। यह बौधिक विकास तीन निश्चित स्तरो के द्वारा होता है।

2. धार्मिक स्तर

3. तात्विक अथवा गुणकारी स्तर

प्रत्यक्ष या वैज्ञानिक स्तर

प्रत्येक समाज इन तीनो स्तरों से गुजरता है। धार्मिक स्तर में व्यक्ति का मानसिक विकास कम होता है किन्तु प्रत्यक्ष स्तर में सर्वाधिक होता है। धार्मिक स्तर मे व्यक्ति भोगोलिक शक्ति पर विश्वास करता है तथा मान लेता है कि समाज की क्रियाओं को घटित कराने में इसी शक्ति का तात्विक स्तर मे व्यक्ति यह मान लेता है कि केवल अलौकिक शक्ति ही नही है अपितु प्रत्येक जीव मे कुछ ऐसी अमूर्त शक्तियाँ निहित है जो व्यक्ति की क्रियाओ को प्रभावित करती है यानी इस स्तर मे अलौकिक शक्ति की धारणा वैयभिवक स्तर पर आ जाती है ।

प्रत्यक्ष स्तर मे सभी घटनाओं के कारण की खोज वैज्ञानिक नियमो के अधार पर की जाती है यानी तर्क एवं नियम स्थान ले लेते हैं।

इस प्रकार व्यक्ति की सोच एवं विचार के आधार पर समाज संरक्षित एवं संगठित होता रहा है तथा विचारों में परिवर्तन के साथ समाज में भी परिवर्तन होता रहा है।

कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त

मार्क्स ने उत्पादन की प्रविधियों के आधार पर सामाजिक परिर्वतन को एक रेखीय क्रम में स्पष्ट किया है इसलिये मार्क्स का सिद्धान्त रेखीय होने के साथ ही परिर्वतन का प्राविधिक सिद्धान्त भी कहा जाता है। (जमबीदवसवहपबंस जीमवतल वि वबपंस बींदहम) तथा इसे आर्थिक निर्धारणवाद (म्बवदवउपब उंतज वि चतवकनबजपवद) भी कहते है।

उत्पादन प्रणाली में परिर्वतन कारण हुये है। सर्वप्रथम उत्पादन की प्रणाली में परिर्वतन होता है। उसके पश्चात उत्पादन की शक्तियो मे परिर्वतन होता है। फिर कही आर्थिक सम्बन्धों में परिर्वतन होता है। तब अन्त सामाजिक परिर्वतन होता है। इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है।

1. उत्पादन की प्रणाली या बींदहम पद जीम उवकम तरीकों में परिर्वतन चतवकनबजपवद

2. उत्पादन की शक्तियो मे परिर्वतन बींदहम पद जीम वितबमे वि चतवकनबजपवद

3. आर्थिक सम्बन्धो मे परिर्वतन बींदहम पद जीम तमसमंजपवदे वि चतवकनबजपवद

4. सामाजिक परिर्वतन–जब उत्पादन प्रणाली मे परिर्वतन होता है। तब समाज मे भी परिर्वतन होता है। उत्पादन प्रणाली समाज का मूल है और उसी पर समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक संरचनाएँ, विश्वास, कला साहित्य, प्रभाएँ, विज्ञान एवं दर्शन टिके हुये है।

जिस प्रकार की उत्पादन प्रणाली होती है। समाज की अधिसंरचना (नचमत जतनबजवत) अर्थात ऊपरी संरचन भी उसी प्रकार की बन जाती है। इस ऊपरी संरचना मे धर्म प्रभाएँ राजनीतिक साहित्य कला विज्ञान एवं संस्कृति आती है। जब उत्पादन प्रणाली बदलती है तो समाज की ऊपरी संरचना मे भी परिर्वतन आता है तथा समाज की संस्थाएँ बदलती है और समाजिक परिर्वतन घटित होता है।

अधोसंरचना तथा अधिसंरचना

संरचना को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

उत्पादन प्रणाली

वेबलिन का सिद्धान्त (जीमवतल वि अमइसमद)– वेबलिन का मानना है कि प्रौद्योगिक दशाएँ प्रत्यक्ष से समाजिक परिर्वतन के लिए उत्तरदायी हो मार्क्स ने समाजिक परिर्वतन की व्याख्या प्रौद्यौगिकी को अप्रत्यक्ष रूप माना है। जबकि बेवलिन प्रौद्योगिक दशाओं को प्रत्यक्ष रूप से समाजिक में परिर्वतन का कारण माना है। वेबलिन समाजिक परिर्वतन को प्रौद्योगिकीय कारणों के आधार पर रेखीय क्रम में स्पष्ट किया है। वेबलिन ने मानवीय विशेषताओं को दो भागों में विभाजित किया है– 1. स्थिर विशेषताएँ– इनका सम्बन्ध मानव की मूल प्रष्टातियो और प्रेरणाओ से है। जिनमे बहुत कम परिर्वतन होता है तथा 2. परिर्वतनशील विशेषताएँ– जैसे आदतें, विचार, मनोवृतियां आदि।

सामाजिक परिर्वतन का सम्बन्ध मानव की परिर्वतनशील विशेषताओं से है। एवं मानव की विचार करने की आदतो से है। प्रौद्योगिकी वह महत्वपूर्ण तथ्य है। जो हमारे भौतिक पर्यावरण (दंजमतपंस मदअमतवदउमदज) का निर्माण भी हो और इसी पर्यावरण के अनुसार हमारी आदतों और विचारों मे परिर्वतन होता रहता है ।

वेबलिन के अनुसार मनुष्य जैसा कार्य करता है, वैसा ही बन जाता है। वह उसी प्रकार सोचता है और अनुभव करता है। वेबलिन के समाजिक परिर्वतन के कम को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

1. कार्य करने की मूल प्रवृत्ति जो प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है।

2. नयी प्राविधियों का अविष्कार जो उपर्युक्त मूल प्रवृत्ति का परिणाम है।

3. भैतिक पर्यावरण मे परिर्वतन जिसका कारण नयी प्रविधियो का उपयोग है।

4. आदतों एवं विचारों मे परिर्वतन

5. सामाजिक ढाँचे मे परिर्वतन जिसे हम सामाजिक परिर्वतन कहते है। मैकाइवर ने कहा है कि कुल मिलाकर वेबलिन को एक प्रौद्योगिक निश्चयवादी माना जा सकता है। मार्क्स सामाजिक परिर्वतन मे प्रौद्योगिकी को एक अप्रत्क्ष कारक मानते हैं, जबकि वेबलिन ने इसे एक अप्रत्यक्ष कारक माना है।

समाजिक परिर्वतन के अन्य सिद्धान्त

(जैम जीवतपेम वि वबपंस बिंदहम)

1. माल्थस का जनसंख्या वृद्धि का सिद्धान्त– सिद्धान्त मानव समाज में खाद्य पदार्थो के उत्पादन की तुलना में जनसंख्या वृद्धि तीव्र गति से होती है। जनसंख्या वृद्धि ज्यामितीय प्रकार की अर्थात 1234567 आदि के क्रम में होती है। फलस्वरूप एक समय ऐसा आता है। जब जनसंख्या के लिये खाद्य पदार्थों का अभाव हो जाता है। यदि बढ़ती जनसंख्या पर रोक नहीं लगायी जाती तो किसी भी देश की जनसंख्या 25 वर्षो मे दोगुनी हो जाती है। जब जनसंख्या बढ़ती है या घटती तो समाज में परिर्वतन घटित होते है।

2. सैडलर– सैडलर ने भी जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त का समर्थन किया और जनसंख्या वृद्धि का सम्बन्ध मानव के मुख समृद्धि एवं पारस्परिक सम्बन्धों से जोड़ा है। वे यह मानते है कि मानव के विकास के साथ–साथ उसकी सन्तानोत्पत्ति की क्षमता में कमी आ जाती है। सुख समृद्धि मे वृद्धि हुयी है ये सभी बाते समाजिक परिर्वतन के लिये उत्तरदायी है। इसी तरह थार्मस ने समाजिक परिर्वतन के लिये विभिन्न संस्कृतियों के मिश्रण एवं सात्वीकरण को उत्तरदायी माना है।

3. मैक्स वेबर का सिद्धान्त– मैक्स वेबर अपनी पुस्तक जैम च्तवजपेजवदज म्जपनब ंदक जैम ैचपदज वि ब्ंवपजंसपेउ 1906 मे समाजिक परिर्वतन के सिद्धान्त को दिया तथा परिर्वतन के लिये धर्म को उत्तरदायी माना है। इन्होने यूरोप मे (रोमन) कैथोलिक धर्म प्रौटेस्टेट धर्म की चर्चा की है। इन्होने विश्व के कन्फ्यूशियन इसाई, हिन्दू, इस्लाम धर्मो का अध्ययन करके बताया कि केवल प्रोटेस्टेट धर्म मे ही वे बाते थी जो आधुनिक पूँजीवाद को जन्म दे सकती थी। जब धर्म बदलता है तो समाज मे भी परिर्वतन आता है।

4. एफ. स्टुअर्ट चेपिन– इन्होंने परिर्वतन की चक्रीय व्याख्या प्रस्तुत की उन्होंने संग्रह की अवधारणा को समाजिक परिर्वतन के अपने सिद्धान्त का अध्यन बनाया। उनके अनुसार सांस्कृतिक परिर्वतन समय की दृष्टि से चयनित रूप से संग्रहात्मक होता है। चेपिन के अनुसार सास्कृतिक परिर्वतन चयनित रूप से संग्रहात्मक तथा स्वरूप में तार्किक दोनों ही उन्होने समकालीनक चक्रिक परिर्वतन (लदबीतवदवसहपबंस बींदहम) की कल्पना का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार संस्कृति के विभिन्न अंग विकाश उत्कर्ष पतन के चक्र से गुजरते है।

5. निकोलाई के मिखेलोटस्की–इन्होने परिर्वतन के रेखीय सिद्धान्त को स्वीकार किया इन्होने बताया की मानव समाज तीन अवस्थाओ मे से गुजरता है।

1. वस्तु परक मानव केंद्रित (वइरमबजपअम ंदजीतवचवबमदजतपब)

2. सम केंद्रित (मबबनमदजतपब)

3. आत्म परक मानव केंद्रित (नइरमबजपअम ंदजीदचवेमदजतपब)

प्रथम अवस्था में मनुष्य स्वयं को विश्व का केंद्र समझता है । तथा पराभोतिक व रहस्य वादी विश्वासो मे तल्लीन रहता है। दूसरी अवस्था में मनुष्य अमूर्त कारणो मे विश्वास करने लगता है। वह अमूर्त को मूर्त कि अपेक्षा अधिक वास्तविक समझता है। तीसरी अवस्था मे मनुष्य अनुमाविक

ज्ञान पर विश्वास करने लगता है। जिसके द्वारा वह स्वलाम हेतु प्रकृति पर अधिक से अधिक नियंत्रण करता है। सोलोवीव ने इन अवस्थाओं को राष्ट्रीय एवं विश्व बन्धुत्व का नाम दिया है।

समाजिक परिर्वतन के कारक

(थ्ंबजवते वि ैवबपंस बिंदहम)

1. जैविक कारक (इपवसवहपबंस बिजवते)

2. प्राकृतिक कारक (जीम चीलेपबंस बिजवते)

3. प्रौद्योगिकीय कारक (जीम जमबीदवसवहपबंस बिजवते)

4. सांस्कृतिक कारक (जीम बनसजनतंस बिजवते)

5. जनसंख्यात्मक कारक

1. जैविक कारक– प्रत्येक प्राणी के गुण एवं उसकी क्षमताएँ भिन्न होती है।

भारतीय समाजशास्त्री

च्तव डंदेनतम छंतीपदह स्ंबीमत ैतप छपूी ने संस्कृतिकरण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अपनी पुस्तक त्मसपहपदंजपवद ंदक ैवबपमजल ब्मअंदं जीम ब्वततल 1952 में किया ैतप छपूी ने 1966 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ैवबपंस बिंदहपदह डंकंतद प्दकपं में संस्कृति की चार अवधारणाएं दी हैं– 1. संस्कृतिकरण, 2. पश्चिमीकरण, 3. धर्म निरपेक्षता, 4. धर्म निरपेक्षीकरण एवं 5. आधुनिकीकरण।

इसी पुस्तक में संस्कृतिकरण की परिभाषित करते हुए लिखा है। ''संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई नीच हिन्दु जाति या कोई जनजाति अथवा अन्य समूह किसी उच्च एवं प्रायः दिज जाति की दिशा में अपने रीति रिवाज कर्मकाण्ड विचार धारा और जीवन पद्धति को बदलना है।'' आमतौर पर ऐसे परिवर्तनों के बाद वह जाति परम्परा से स्थानीय समाज द्वारा सोपान में जो स्थान उसे मिला हुआ है इससे उचे स्थान का दावा करने लगती है।

> संस्कृतिकरण से पदमूलक परिवर्तन (चवेपजपवदंसबींदहम) होता है संरचनात्मक परिवर्तन (मतंनजनतंस बींदहम) नहीं होता है।
>
> संस्कृतिकरण की प्रक्रिया एक सारभौमिक प्रक्रिया हैं। डा. योगेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक (स्पवकतमदप्रंजपवद वि प्दकपं मकनबंजपवद) में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया अग्रिम समाजीकरण (।दजपबपचंजतमल ैवबपवसप्रंजपवद) कहते है।
>
> संस्कृतिकरण की प्रक्रिया सामाजिक और संस्कृतिक परिवर्तन की सूचक है। सिगर के विचार एम.एस. श्री निवास का संस्कृतिकरण का सिद्धान्त भारतीय सभ्यता में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का अत्यन्त विस्तृत और विस्तृत रूप से स्वीकृत मानवशास्त्री सिद्धान्त है यह समाज व संस्कृति में होने वाले परिवर्तनो का उल्लेख करता है। श्री निवास के अनुसार संस्कृतिकरण ही प्रक्रिया एक तरफा प्रक्रिया है।
>
> प्रो. योगेन्द्र सिंह ने संस्कृतिकरण की विचार धारा को ग्रहण करने वाली प्रक्रिया कहा है। संस्कृतिकरण अनेक अवधारणाओं का एक गुच्छा है। अर्थात इसमें ब्रहणीकरण परसस्कृतिकरण अग्रिम समाजीकरण अनुकरण आदि सभी अवधारणाओं में तत्व मौजूद है।

संस्कृतिकरण की प्रथम परिभाषा में भोजन की आदते संस्कारों तथा धार्मिक प्रथाओं में नकल की बात कही गयी थी। किन्तु बाद में विचारों में कर्म, धर्म, पाप, पुण्य, मोक्ष्य आदि के विचार भी सम्मिलित है।

संस्कृतिकरण और ब्रहणीकरण

ब्रह्मणीकरण शब्द का प्रयोग संस्कृतिकरण से पूर्ण किया गया।

संस्कृतिकरण के आदर्श

श्री निवास ने संस्कृतिकरण के ब्रह्मणी आदर्श का उल्लेख किया।

मिल्टन सिंगर तथा पोकाक ने (गुजरात राज्य का अध्ययन किया) क्षत्रिय आदर्श की चर्चा की है।

सामान्य तौर पर संस्कृतिकरण में चार आदर्श निम्न हैं–1. ब्रह्मणी आदर्श, 2. वैश्य आदर्श, 3. क्षत्रिय आदर्श, एवं 4. स्थानीय प्रभुजाति आदर्श।

संस्कृतिकरण से सम्बन्धित कुछ अन्य अवधारणाएं

1. संस्कृतिकरण / वि. संस्कृतिकरण– इसके अन्तर्गत उच्च जातियां अपने परम्परागत जातीय आदर्शो मूल्यों, खान–पान तथा कर्म काण्डों आदि को त्यागती है।

2. पुनः संस्कृतिकरण– डा. योगेन्द्र सिंह ने इस अवधारणा का प्रयोग किया। डा. योगेन्द्र ने कहा है कि पुनः संस्कृतिकरण एक घटना है जहां एक पहले से पश्चिमीकृत या आधुनिकृत समूह आधुनिकीकरण के बहुत से प्रतीकों जैसे वेश–भूषा, खान–पान की आदतों, जीवन शैली और राजनीतिक वैचारिकी का त्याग करता है और पुनः परम्परागत संस्कृतिक प्रतीको और विश्वासों की ओर लौटता है।

3. बहु संन्दर्भ प्रारुप– इस विचार के दाता डा. एस.सी. दुबे ज्व ूतबसं ``वबपवसवहल वि बनसजनतम पद प्दकपं 1964 एस.सी. दुबे ने संस्कृतिककरण को एक प्रदेशिक माडल माना है तथा इसकी जगह बहु संन्दर्भ प्रारुप का प्रयोग किया है।

4. जनजातिकरण– जब समाज के उच्च वर्ग जनजातियों के मूल्य विचार, वेशभूषा, रहन–सहन तथा संस्कृतिक गतिविधियों का अनुकरण करते है तो यह माना जाता है कि उच्च जाति का जनजातिकरण हो रहा है।

स्थानीय प्रभुजाति को आदर्श मानकर संस्कृतिकरण किया जाता है।
डा. योगेन्द्र सिंह संस्कृतिकरण को और सामाजिक गतिशीलता की एक प्रक्रिया मानते है।
बी. कुप्पू. स्वामी (इववा)ेवबपंस बिंदहम पद प्दकदं संस्कृतिकरण को संन्दर्भ समूह के प्रक्रिया के संचालन का एक उदाहरण मानते है।
संस्कृतिकरण अनुकरण की एक प्रक्रिया है।
संस्कृतिकरण परिसंस्कृति ग्रहण ।बबनपजनतंजपवद का ही एक विशिष्ट रूप है।
संस्कृतिकरण का सम्बन्ध किसी व्यक्ति या परिवार से नही है वरन एक समूह विशेष से है।

म्बवदवउलए च्वसपजल ंदक ैवबपंस बिंदहम

स्वामी विवेकानन्द को भारत का एक बहुत बड़ा समह भारतीय राष्ट्रवाद का जनक मानता है। विश्व धर्म परिषद् में स्वामी विवेकानन्द हिन्दू धर्म की आधुनिक व्याख्या किया। इसके कारण हिन्दू आत्म गौरव बहुत अधिक विकसित हुआ। एक धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन के रूप में इसका प्रभाव बंगाल व उ.पूर्वी राज्यों में सीमित है। भारत सरकार ने उ. पूर्वी राज्यों में ईसाई मिशनरियों का प्रतिरोध करने के लिए रामकृष्ण मिशन को प्रोत्साहित किया।

भारत में नियोजित सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा आधुनिक काल में अंग्रेजी राज्य से प्रेरित हुआ। नियोजित परिवर्तन सरकार या शासक समूह करता है। इस परिवर्तन के लिए बहुत अधिक सोच–विचार किया जाता है। परिवर्तन के पूर्वानुमानों का परिणामों का पूर्वानुमान किया जाता है एवं परिवर्तन के प्रभाव और श्रेणीगत प्रभावों का मूल्यांकन किया जाता है।

नियोजित परिवर्तन एक प्रकार का सामाजिक कानून व सामाजिक विधान है। ईष्ट इण्डिया कम्पनी ने सर्वप्रथम कन्या शिशु का निषेध, सती प्रथा का निषेध, जातिगत भेदभाव के रोकने का पुरुषों के विवाह योग्य आयु को बढ़ाया। 1837 व 1939 में हिन्दू विवाह की विसंगतियों व मुस्लिम प्रयास किया। स्त्रियों की दशा के लिए कानून बनाया, विधवा विवाह का कानून बनाया। स्त्रियों व विवाह की विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया। आजादी के बाद 1954 में विशेष विवाह अधिनियम 1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1956 में उत्तराधिकार अधिनियम, 1961 में संशोधित करके उतराधिकार अधिनियम बनाये गये।

भारत में सामाजिक विधान सुखवीर चौधरी के अनुठ परिवर्तन के कारण से अधिक परिवर्तन के उत्प्रेरक है। जब ऐसे कानून के पीछे व्यापक सामाजिक आन्दोलन होता है। तब ये अधिक सफल होते हैं। जब समाज के अनेक समूह इसके लिए तैयार होते हैं तब इसको अधिक सफलता मिलती है। सामाजिक संरचना एवम् शक्तिशाली समूहों के मिलने से सामाजिक विधान असफल हो जाते है।

नियोजित परिवर्तन का दूसरा नकार कार्यकारी आदेश है, ऐसे आदेश अकस्मात नहीं दिये जाते हैं। इनकी पृष्ठभूमि होती है। ये एक समय विशेष में लागू कर दिये जाते हैं। भारत में योजना आयोग की विचारधारा पूंजीवादी उदारवादी की विचारधारा है। इसके द्वारा भारतीय जन मानस के क्रय शक्ति बढ़ाने का प्रयास किया गया। जिससे भारतीय उद्योग का बाजार विकसित हो सके योजना आयोग में पं. जवाहर लाल नेहरू के आग्रह के कारण समाजवादी विचारधारा का योगदान हुआ। इसीलिये योजना में सामाजिक न्याय की शब्दावली को जोड़ा गया। भारतीय दरिद्र जनता के न्यूनतम सार्वजनिक सुविधाओं को पूरा करने का लक्ष्य रखा गया। योजना की रणनीति यह थी कि बड़े उद्योग आधार रचना एवं सिंचाई व बिजली की व्यवस्था के लिए राज्य के प्रयास किये जाय। कमल नयन कावरा के अनुसार निवेश पर विनिमय पर वितरण पर आंशिक नियंत्रण किया गया। भारत की व्यापक भू–सम्पत्ति को निजी हाथों में रहने दिया गया। कुछ क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण किया गया। यह समाजवाद से राज्य पूंजीवाद की रणनीति थी। योजना को लागू करने में व्यापक सरकारी प्रयास के साथ–साथ जनता की भागीदारी को सुनिश्चित किया गया। सबसे महत्वपूर्ण बात ये थी दबाव बल और बौद्धता का प्रयोग नहीं किया गया। राज्य में लोकतांत्रिक उपायों से शान्ति पूर्ण तरीके से नियोजित विकास का प्रयास किया गया।

(अ) पंचवर्षीय योजनायें

(ब) योजनाओं के असफलता के कारण–

सामाजिक संरचना।

उपाय

भ्रष्टाचार प्रबंध

(स) सामाजिक परिवर्तन के माध्यम–

शिक्षा

जनसंचार

(द) परिवर्तन की बाधायें–

संस्था

संस्कृति

अभिजन

वर्तमान स्थिति

भारत में पंचवर्षीय योजना डोमर और रोजर के आधार पर पी.सी. महालनेवीस के निर्देश में योजना का निर्माण किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951–56 तक चली। इस योजना में लक्ष्य निर्धारित किये गये। अंग्रेजी राज्य की कुट द्वितीय विश्व युद्ध का प्रभाव, एवं भारतीय कृषि की जर्जर अवस्था के कारण इस योजना का उद्देश्य कृषि उत्पादन में वृद्धि करना, आर्थिक विकास का आधार तैयार करना और अर्थव्यवस्था के अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग आंकलन करना सम्मिलित था। यह योजना सफल थी। इसमें कृषि उत्पादन 48 मिलियन उनसे बढ़कर 73 मिलियन टन हो गया। सिंचाई और कृषि के उत्पादन में वृद्धि हुई। लेकिन मुद्रा स्फिति घट गयी।

द्वितीय योजना 1956–61 तक चली। इस योजना के आरम्भ में 1956 में औद्योगिक नीति प्रस्ताव पारित हुआ। इसी में समाजवाद के निर्माण की घोषणा की गयी। इस योजना में मूल उद्योगों का विकास, लघु उद्योगों का विकास, भूमि पुनर्वितरण, शिक्षा में विस्तार और पिछड़े वर्गों के उत्थान का लक्ष्य रखा गया। विदेशी सहायता से सरकार बड़े बड़े उद्योग लगाये। सिंचाई विद्युत परियोजनायें लागू किया परन्तु उद्योगों का सुसंगत रूप से विकास नहीं हो पाया। कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, निहित स्वार्थों के विरोध के कारण भूमि सुधार के कार्यक्रम लागू नहीं किये जा सके। युद्ध, बहुत तृतीय योजना 1961–66 तक चली। इसमें मूल लक्ष्य आत्मनिर्भरता का रखा गया। विशेष विकास का लक्ष्य था। ये लक्ष्य राष्ट्रीय आय में जिसमें 5 प्रतिशत वृद्धि हो, खेतिहर मजदूरों के लिए रूप से कृषि में आत्म निर्भरता का लक्ष्य रखा गया। रासायनिक उद्योग, ईस्पात, ईधन और विद्युत के कुटीर उद्योग व लघु उद्योग के विकास करने का लक्ष्य था। इसी योजना

के दौरान चीन से भारत–पाकिस्तान युद्ध मानसुन की असफलता, अकाल के कारण नकारात्मक प्रभाव पड़ा। योजना आयोग के आकलन के अनुसार जिसमें कहा गया था कि रासायनिक खाद का इस दौरान कम उपयोग हुआ। इसके बाद 1967 के राजनैतिक संकट के कारण जिसमें कांग्रेस पार्टी 8 राज्यों में चुनाव हार गयी। विदेशी सहायता बन्द हो गयी और लगातार अकाल पड़ता गया इसीलिए 3 वर्षों तक वार्षिक योजनायें चली जो एक कमजोर विकल्प था।

चौथी योजना 1969–1974 तक चली। इसमें 5.5 प्रतिशत वृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया था। खाद्यान्नों में आत्म–निर्भरता और बेरोजगारी का 50 प्रतिशत कम करने का लक्ष्य था, जनसंख्या वृद्धि के नियंत्रण, सेवाकाल का विकास और ग्रामीण विकास पर विशेष तक दिया गया। सामाजिक दृष्टि से सम्पत्ति की असमानता कम करना, सामाजिक न्याय के उपायों को बढ़ाना शामिल था। यह योजना इसके पहले बाकी योजना से अधिक सफल थी। परन्तु खाद्यान्न में आत्म निर्भरता एकदम नहीं हो सका एवं बेरोजगारी को घटाया नहीं जा सका।

पांचवी योजना 1974–79 तक निर्धारित चली। इस योजना में मूल उद्योग, फेब्रिरेकेसन उद्योग, निर्यात में वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। इस काल में गरीबी उन्नमूलन, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, आय का समान विवरण पर क्षेत्रीय असंतुलन कम करने का लक्ष्य था। इस काल में राजनैतिक संकट, आपातकालीन घोषणा हुई। इसके कारण इस अवधि तक योजना के कार्यान्वयन में तेजी आ गयी। 1977 में केन्द्र में कांग्रेस हार गयी। जनता पार्टी की सरकार ने 1978 में योजना की समाप्ति की घोषणा कर दी। 1979 से 1980 में रोलिंग प्लान लागू किया गया। इस योजना में कृ षि की प्रगति नियति भी बढ़ा। 1980 श्रीमती गांधी पुनः पुरानी योजनाओं में निवेश किया।

छठवीं योजना 1980–85 तक चली। कांग्रेस पार्टी का शासन था। श्रीमती गांधी की हत्या के कारण राजनीतिक नेतृत्व की श्रृंखला टूट गयी। यह योजना ऊर्जा की वृद्धि, संचार साधनों की वृद्धि सूचना उद्योगों में वृद्धि, प्रौद्योगिकी में आत्म निर्भरता के लक्ष्य को लेकर चली। यह योजना तुलनात्मक दृष्टि से अन्य योजनाओं की अपेक्षा अधिक सफल रही है। कृषि निर्यात बढ़ा इन्जीनियरिंग उद्योग का निर्यात बढ़ा। इस समय में ऊर्जा के उत्पादन में वृद्धि भी हुई। लेकिन सामाजिक लक्ष्य पूरे नहीं किये जा सके।

सातवीं योजना 1985–90 तक चली। इस योजना का लक्ष्य था खाद्य वस्तुओं को निर्यात उत्पादन में वृद्धि, कृषि क्षेत्र में विविधता ग्रामीण क्षेत्रो का विकास और रोजगार का सृजन। राष्ट्रीय आय में कम सेकम 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ग्रामीण विकास में सफलता मिली। इस योजना के अन्तिम समय अधिक संकट उत्पन्न हो गया।

राजनैतिक अस्थिरता के कारण 1990–92 तक योजना नहीं चली। भारतीय अर्थव्यवस्था में संकट था, सोवियत यूनियन का पतन, पश्चिमी देशों में उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की नीति को लागू किया। 1991 में भारतीय उद्योग और अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए उदारीकरण, निजीकरण, भूमण्डलीकरण ने एक नयी खुली आयात नीति को प्रोत्साहन दिया गया।

1992–97 आंठवी योजना अपने उपागम में पूर्व की योजनाओं से अलग थी। इसमें लक्ष्य निर्धारित नहीं किये गये। केवल क्षेत्रों को अलग अलग चिन्हित किया गया। ऊर्जा, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य आधारभूत संसाधनों का विकास और कृषि सम्बंधी विविधता का लक्ष्य रखा गया। इस

योजना में आर्थिक विकास दर 6 प्रतिशत के आस–पास थी। निर्माण उद्योग का विकास हुआ। भारत का निर्यात बहुत अधिक बढ़ा। सभी क्षेत्रों का संतुलित विकास नहीं हो पाया।

नवीं पंचवर्षीय योजना में आजादी के 50 साल बाद प्रारम्भ हुई। इसकी अवधि 1997–2002 थी। इस योजना के अनेक माता–पिता थे। इसलिए यह योजना को अवैध संवान कहा जाता है। इसके लक्ष्य अलग–अलग समयों में अलग हो गये। ग्रामीण विकास संचार, सूचना उद्योग ओर सेवा क्षेत्र को चिन्हित किया गया। जिनमें सफलता भी मिली।

दसवीं योजना 2002–2007 तक की योजना है। इसमें शिक्षा, आधार, संरचना जैसे– सड़क, ऊर्जा, संचार, बैंकिग, वित्तीय सेवाओं के विकास पर अधिक बल दिया गया है। सरकार ने सरकारी निवेश का अंश कम कर दिया है। निजी क्षेत्रों को चिन्हित क्षेत्रों में पूंजी निवेश के लिए प्रोत्साहन किया जा रहा है। 10वीं योजना के उपगम पत्र भी आज तक तैयार नहीं किया जा सका है।

भारत में योजनायें सफल नहीं रही। हावर्ड विश्वविद्यालय के परियोजना के अन्तर्गत सुब्रम्हणराम स्वामी ने भारत व चीन के आर्थिक विकास की तुलनात्मक अध्ययन किया। स्वामी के अनुसार भारत की औसत विकास दर 3 प्रतिशत का है, जबकि चीन का औसत विकास दर 9 प्रतिशत है। स्वामी के अनुसार भारत में यह प्रगति लोकतंत्र की व्यवस्था ने किया। जबकि चीन ने नियंत्रित अर्थव्यवस्था ने किया। इसके बावजूद भारत में आर्थिक प्रगति हो सकती है। प्रो. राजकृष्णन ने 3 प्रतिशत औसत विकास दर को हिन्दू रेट ऑफ ग्रंथ कहा।

योजना की असफलता श्यामाचरण दुबे के अनुसार सामाजिक संरचना के कारण हुई, क्योंकि कृषि की व्यवस्था सरल कृषि की है, पारिवारिक सम्बंधों के आधार पर उत्पादन होता है। धर्म और जाति की संरचना कुशलता और निपुणता को बाधित करती है। योजना की असफलता का एक कारण है उपायो की असफलता है। इसे लागू नहीं किया जा सका है। प्रशासनिक पदाधिकारी व कर्मचारी विकास कार्यक्रमों को सही रूप से लागू नहीं कर सके। ब्रेली ब्वाय के अनुसार प्रबन्धन की कमजोरी के कारण योजनायें लागू नहीं हो पायी। भ्रष्टाचार का परिणाम प्रबन्धन की कुशलता से बहुत कम हो जाता है।

सामाजिक परिवर्तन के माध्यम के रूप में शिक्षा व जनसंचार बहुत महत्वपूर्ण है। जेवी नायक और केजी सैयदायन ने कहा शिक्षा परिवर्तन का कारण नहीं हैं। भारत में शिक्षा के कारण आधुनिकीकरण का प्रसार हुआ। इसके परिणाम स्वरूप शिक्षित लोगों में शारीरिक श्रम के प्रति विरसता पैदा हुई । परन्तु तकनीकि शिक्षा से औद्योगिक आर्थिक विकास के प्रति आकर्षण बढ़ा। इस शिक्षा के कारण कृषि, उद्योग, व्यापार नयी प्रौद्योगिकी का प्रचलन हुआ।

जनसंचार साधनों ने जीवन शैली मानसिकता को परिवर्तित कर दिया। इससे प्रवसन की प्रक्रिया बढ़ी। एक स्थान के तकनीकि का प्रसारण दूसरे क्षेत्रों में हुआ। इसके चलते क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ गया। जन संचार और सूचना उद्योग ने सूचना को विस्तृत किया। परन्तु इसके आधार विकसित नहीं हुए।

भारत में सामाजिक परिवर्तन आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा सामाजिक संरचना की है। कृषि की पुरानी तकनीकि भी है। आस्कर लेविस के शब्दों में किसानों की भाग्य वादिता, परिवार का उत्पादन की इकाई होना बाधक है। धार्मिक संरचना, जातियों के विभाजन,

भाषाओं के प्रति मोह, नातेदारों के सम्बंध, संयुक्त परिवार की प्रधानता सभी लोगों का उत्पादन के कार्य नहीं लगना बाधक है।

भारतीय संस्कृति और चुनौती की मानसिकता का अभाव परिवर्तन को रोकता है। भारत में ग्रामीण व बाहरी अभिजन परिवर्तन का पक्षधर नहीं है। पुरानी समाज व्यवस्था इनका निहित स्वार्थ है। समाज की सभी श्रेणियों को सक्रिय बनाने में इनकी रुचि नहीं है। वी.के.आर.वी. राव ने कहा भारतीय अभिजन विकास और परिवर्तन का नेतृत्व प्रदान करने में असफल हो गया।

भारत में वर्तमान स्थिति टूट की नहीं है। उ.पूर्वी भारत में, जम्मू कश्मीर, कुछ अंशो में पंजाब में अपवादी स्थितियां है। भारत में विकास और परिवर्तन समान नहीं है। क्षेत्रीय असमानतायें है। उत्पादन व सेवा का अधिक विकास हुआ है। ये विकास और परिवर्तन सभी श्रेणियों को लाभान्वित नहीं कर सके हैं। साधन सम्पन्न समूहों के लोग अधिक आगे बढ़े हैं। बहुत कुशल लोग विकसित हो गये हैं। उच्च वर्ग– मध्यम वर्ग की जीव शैली बदली। परन्तु मध्यम वर्ग के परम्परा का भी विस्तार हुआ है। भारत में सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक विकास एकीकृत और समरूपी प्रक्रिया नहीं है।

सामाजिक परिवर्तन और विकास

सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों से है, कुछ विचारक सामाजिक ढांचे में होने वाले परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। सम्पूर्ण समाज अथवा उसके किसी भी पक्ष में होने वाले परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। वास्तव में परिवर्तन किसी निश्चित कलावधि में किसी सामाजिक घटना में आया हुआ बदलाव या अंतर होता है।

परिभाषा

मैकाइवर एवं पेज– सम्बंधों में होने वाले परिवर्तनों को समाजिक परिवर्तन कहते है।

किग्सले डेविस – सामाजिक परिवर्तन से हमारा अभिप्राय केवल उन परिवर्तनों से है जो सामाजिक संगठन में होते हैं। वास्तव में समाज की संरचना और समाज के कार्यों में होने वाला बदलाव ही सामाजिक परिवर्तन कहलाता है।

गिलिन–2 के अनुसार– सामाजिक परिवर्तन जीवन की स्वीकृत रीतियों में परिवर्तन को कहते हैं चाहे ये परिवर्तन भौगोलिक दशाओं से परिवर्तन से हुए हो अथवा सांस्कृतिक साधन से हुए हो।

उपर्युक्त सम्पूर्ण अंतरावलोकन से परिलक्षित होता है कि समाज की संरचना एवं प्रकार्य में किसी भी तरह का बदलाव सामाजिक परिवर्तन कहलाता है।

सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत–

विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन घटित होने के ढंगों को प्रतिविम्बित किया है प्रत्येक विद्वान अपने समाज एवं ज्ञान के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या की है। सामाजिक सिद्धांत कह दिया गया है। परिवर्तन के इन सिद्धांतकारों के सिद्धांतों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है– अ. चक्रीय सिद्धांत ब. रेखीय सिद्धांत।

अ. चक्रीय सिद्धांतः

इस सिद्धांत के अन्तर्गत वे सिद्धांतकार आते हैं जो यह स्वीकार करते हैं कि समाज में बदलाव चक्रवत या चक्राकार होता है। समाज की एक समय की अवस्था में बदलाव आ जाता है। ऐसा बदलाव निरन्तर होता रहता है। एक दिन वह समय अग्रहित। जब पुरानी अवस्था पुनः वापस आ जाती है। इस तरह चक्रवत परिवर्तन होता रहता है। जिस प्रकार ऋतुओं का आवागमन एवं जन्म मरण की प्रक्रिया चक्रानुसार चलती हैं। उसी प्रकार सामाजिक परिवर्तन भी चक्र के आधार पर होता रहता है। इस सिद्धांत के आधार पर निम्न विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं–

1. स्पेंगलर का चक्रीय सिद्धांतः स्पेंगलर 1918 में जैम क्मबसपउम व िजैम त्मेज पुस्तक में इस सिद्धांत को प्रस्तुत किया। वे विकासवादी सिद्धांत के विरोधी हैं उनका मानना है कि मानव समाज शरीर रचना के समान ही शरीर के समान समाज में भी जन्म, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था के पश्चात् पतन और विनाश होता रहता है। व्यक्ति का जन्म होता है वह मृत्यु के मुंह में चला जाता है और पुनः उसका जन्म होता है उसी आधार पर समाज भी अपनी जीवन प्रक्रिया को गुजारता है। आध्यात्मिक अवस्था समाज का जन्म ही अति भौतिक प्रगति समाज की वृद्धावस्था है। अति आधुनिकता समाज को मृत्यु प्रदान करती है इसी क्रम में समाज का पुनः जन्म होता है।

2 सोरोलिन का चक्रीय सिद्धांत– सोरोकिन ने परिवर्तन को संस्कृति में आये हुए परिवर्तनों के आधार परं समझाया है। इसलिए इनके सिद्धांत को सांस्कृतिक सिद्धांत भी कहा जाता है। उनका मानना है कि समाज की तीन संस्कृतियां नीचे ऊपर गतिशील रहती हैं। संस्कृतियों का आवागमन जारी रहता है। इसे उतार–चढ़ाव की प्रक्रिया भी कहा जाता है।

स्पेरोकिन के सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत को निम्न के द्वारा वर्णित किया जा सकता है।

सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा (जैम ब्वदबमचज व िवबपंस बैंदहम)

सामाजिक सम्बन्धों के स्थापित स्वरूपों, सामाजिक मूल्यों, संरचनाओं अथवा उप–व्यवस्थाओं में परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन कहलाता है। सामाजिक परिवर्तन समग्र अथवा आंशिक हो सकता है, यद्यपि अधिकांशतः यह आंशिक ही होता है। जिस प्रकार परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन शिक्षा प्रणाली में आंशिक परिवर्तन माना जाता है, उसी प्रकार मंदिरों में अस्पृश्यों के प्रवेश वर्जित करने वालों को दण्ड के विधान का क्रियान्वयन, विवाह–विच्छेद की वैधानिक अनुमति, अल्पायु विवाह पर रोक सम्बन्धी विधान आदि को समाज में आंशिक परिवर्तन कहा जाता है। बैंकों का राष्ट्रीयकरण, कोयले की खानों का राष्ट्रीयकरण आदि समाज की आर्थिक प्रणाली में आंशिक परिवर्तन के उदाहरण हैं क्योंकि यह परिवर्तन अन्य क्षेत्रों में निजी सम्पत्ति के स्वामित्व की व्यवस्था के साथ–साथ विद्यमान रहता है। कठिनाई तो समाज के समग्र परिवर्तन या सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन को पहचान ने में आती है। यदि हम कहें कि समाज के न केवल कुछ पक्षों में बल्कि प्रत्येक पक्ष में परिवर्तन हो गया है तो इसे समग्र परिवर्तन कहा जाएगा लेकिन ऐसा कभी नहीं होता है। इसी प्रकार परिवार व्यवस्था, विवाह व्यवस्था, बैंकिग व्यवस्था, जाति व्यवस्था या फैक्टरी व्यवस्था के कुछ पक्षों में परिवर्तन हो सकता है, लेकिन इनमें से किसी भी व्यवस्था में समग्र परिवर्तन कभी नहीं होता। कोई भी सामाजिक व्यवस्था समग्र रूप में कभी परिवर्तित नहीं होती। सामाजिक परिवर्तन सदैव अथवा अधिकांशतः आंशिक ही होता है।

पर्सी कोहेन (च्मतबल ब्वीमदए 1979.176) ने कहा है कि समाज में लघु (डपदवत) अथवा वृहत (डंरवत) या मौलिक (थ्नदकंउमदजंस) परिवर्तनों में अन्तर किया जा सकता है। समाज या सामाजिक व्यवस्था के मूल अथवा महत्वपूर्ण लक्षणों में परिवर्तन को वृहत परितर्वन कहा जाता है। यदि जेल को सामाजिक व्यवस्था के रूप में लें तो इसकी महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं– कैदियों को ट्रेनिंग देना, निवासियों के लिए भोजन, मनोरजन एवं स्वास्थ्य रक्षा का प्रबन्ध करना, जेल मानदण्डों को तोड़ने वाले अपराधियों को दण्ड देना, अपराधियों को मित्रों व परिवारजनों से सम्पर्क कराना तथा जेल से भागने को रोकने के लिए प्रबन्ध करना आदि। अब मान लिया जाए कि समस्त सुरक्षा दल हटा लिए जाते हैं और कैदियों को दिन के समय बाजार जाने की स्वतन्त्रता दे दी जाए, लेकिन रात को जेल में रहना आवश्यक हो तो जेल व्यवस्था में यह परिवर्तन जेल के अन्य पक्षों को भी प्रभावित करेगा। ऐसा होने पर जेल व्यवस्था में मूलभूत और वृहत परिवर्तन कहा जाएगा। इसी प्रकार अन्तर्जातीय सम्बन्धों में सामाजिक एवं सहभोग सम्बन्धी प्रतिबन्धों को हटा लिया जाए तो इसे जाति व्यवस्था मे प्रमुख परिवर्तन कहा जाएगा। समाजिक व्यवस्था में मूल लक्षणों को पृथक करना कठिन नहीं होता। उदाहरणार्थ, जनतान्त्रिक राजनैतिक व्यवस्था में चुनाव व्यवस्था एक लक्षण हैं। यदि चुनाव परिणामों से चुनाव व्यवस्था में परिवर्तन न हों, किन्तु चुनाव व्यवस्था परिवर्तन चुनाव परिणामों को प्रभावित करते हों तो यह कहा जाएगा कि चुनाव व्यवस्था राजनैतिक व्यवस्था का मूल लक्षण हैं।

भारत में आर्थिक विकास योजना और सामाजिक परिवर्तन

(म्बवदवउपब क्मअमसवचउमदजए च्संददपदह ंदक ैवबपंस बिंदहम पदप्दकपं)

स्वतंन्त्रता के पश्चात् भारत में आर्थिक विकास को वास्तविक क्रान्तिकारी परिवर्तन कहा जा सकता है। यह तब होगा जब हम अंग्रेजी शासन की अवधि के आर्थिक विकास की तुलना दो दशकों के नेहरू युग, इन्दिरा गान्धी, राजीव गान्धी की अवधि के दो दशकों, लगभग साढ़े छः वर्ष के वी.पी. सिंह, चन्द्रशेखर और नरसिंहराव की सरकारों, संयुक्त मोर्चे की लगभग दो वर्ष की सरकार में हुए आर्थिक विकास से करें। 1747 और 1947 के मध्य के दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन काल में आर्थिक विकास 1 प्रतिशत से भी कम हुआ। विकास की दर इतनी कम थी कि इसने भारत को मात्र कच्चे माल की आपूर्ति करने वाला तथा पश्चिमी निर्यातों के लिए अच्छा बाजार बनाकर रख दिया। भारतीय लोगों के स्वामित्व वाले औद्योगिक क्षेत्र का एक छोटा भाग ब्रिटिश एजेन्सियों द्वारा ही प्रबन्धित था। कृषि अर्थव्यवस्था में किसान, जमींदार, साहूकार व जगीरदारों के चंगुल में फंसा हुआ था। बचत और निवेश बहुत कम थे। तकनीकी निम्न स्तर की थी। पिछड़े क्षेत्र के विकास के क्षेत्रीय संतुलन की अवधारणा ही नहीं बनी थी। भारत के निर्माण के लिए विदेशी पूंजी भी उपलब्ध नहीं थी। कम आय से कम बचत होती है, जिससे निवेश भी कम होता है, जिससे कम वृद्धि और फिर वही कम आमदनी होती है। उपनिवेशवादी युग में गरीबी के कुचक्र तथा अनन्त चक्र का सिद्धान्त बिल्कुल उपयुक्त बैठता था।

स्वतन्त्रता के पश्चात् नयी सरकार का दोहरा कार्य हो गया– उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था को खत्म करना और इसके स्थान पर आधुनिक, स्वाधीन और आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था का आधार खड़ा करना। देश की आधुनिक अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय स्वरूप– समाज का समाजवादी स्वरूप 1955 में कांग्रेस के अवाडी अधिवेशन के (नेहरू युग में) और 1969 में बंगलौर अधिवेशन (इन्दिरा गांधी समय में) के घोषणा पत्र द्वारा प्रदान किया गया। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि

1950, 1970, और 1980 के चार दशकों में नेहरू के समाजवादी आदर्शों ने हमारी अर्थव्यवस्था को सुधारा, यद्यपि ऐसी विचारधारा के लोग भी हैं जो नेहरू आदर्शों की ताइवान, हांगकांग, सिंगापुर, दक्षिणी कोरिया के आर्थिक विकास से तुलना करते हैं और अब इसमें दोष बताते हैं। अब हमारे देश में लाखों की संख्या में आधुनिक औद्योगिक उद्यम हैं जबकि पहले मुट्ठीभर ही थे। हमारे पास तकनीकों और उद्यमी कुशलताओं का भण्डार है, हमारे पास भिलाई और राउरकेला जैसी भव्य योजनाएँ और हीराकुण्ड जैसे बड़े बान्ध हैं, विकासशील विश्व में हमारी बचत की दर ऊँची हैं, (1999–2000 में हमारी विकास की दर 5.8 प्रतिशत वार्षिक थी), निर्यात में निरन्तर वृद्धि हो रही है, अप्रवासी भारतीयों की जमा राशियों में बीस गुणा वृद्धि हुई है, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार में अद्वितीय विश्वसनीयता में वृद्धि हुई है और गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या में कभी हुई है (1972–73 की 51 प्रतिशत से 1998–99 में 37 प्रतिशत रह गई, जैसा कि लकड़वाला समिति की सिफारिशों को स्वीकार करने के बाद सरकार ने दावा किया है)। यह भी सत्य है कि हम मुद्रस्फीति और अत्यधिक कर्ज की समस्याओं से भी जूझ रहे हैं। व्यापार घाटे का शेष बहुत अधिक है और बजट घाटा तो अरबों में हैं।

नरसिंहाराव की सरकार ने 1991–92 में समाजवादी स्वरूप की अवहेलना की और उदारीकरण, बाजारीकरण तथा निजीकरण के दर्शन पर आधारित पुनर्गठित नीति प्रारम्भ की (जो अब नेहरूवादी पूंजीवाद कहा जाता है) जिसके विषय में कांग्रेस सरकार ने दावा किया कि इस नीति ने थी तत्व यह था कि यह राज्यों और निजी उद्यमियों दोनों को भरोसा दिलाता था और बहु प्रजातंत्र तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था दोनों के प्रति अटूट विश्वास को दृढ़ बनाता था। संयुक्त मोर्चा सरकारों तथा भारतीय जनता पार्टी ने इस नीति को जारी रखा।

अप्रैल, 1992 में कांग्रेस के तिरूपति अधिवेशन में एक नयी विचारधारा वाला प्रारूप अपनाया गया जो केन्द्र के बायें से केन्द्र के दायें की ओर परिवर्तन से सम्बद्ध था। यह नेहरू के नाम पर नेहरू की अवहेलना की तरकीब थी। इसके मुख्य बिन्दु थे विभिन्न क्षेत्रों में राज्य सहायता में कटौती (कृषि तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भी), लाइसेंस व परमिट राज की समाप्ति, प्रस्थान नीति का शुभारम्भ, बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए देश को मुक्त करना, आयात नियन्त्रणों को हटाना और सार्वजनिक क्षेत्र को मात्र नौकरी दिलाने वाली एजेन्सी, जिसमें काम न करना ही नैतिकता होती है न मानना। इस प्रकार सुर तो समाजवादी ही रहा परन्तु नीतियों में निहित तत्व पूंजीवादी बन गये।

ऐसे विद्वान भी हैं जो यह विश्वास नहीं करते कि नव उदारवादी आर्थिक नीति वास्तव में भारतीय अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवन प्रदान करेगी। उनकी मान्यता है कि हमारी अर्थव्यवस्था को आयात को नियंत्रित करके निर्यात को प्रोत्साहन देकर कर तंत्र को विस्तृत करके, सार्वजनिक क्षेत्र को नौकर ही से मुक्त कराकर काले धन को उजागर करके, रक्षाखर्चों में कटौती करके, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की ओर अधिक ध्यान देकर वस्तुओं के लिए वृहद बाजार सृजित करके भूमि सुधारों में क्रान्तिकारी सुधार करके पुनर्जीवित किया जा सकता है। ये विद्वान यह भी मानते हैं कि देश को बाह्य की बजाय आन्तरिक उपायों पर निर्भर रहना चाहिए।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह माना जा सकता है कि आर्थिक विकास नेहरू आदर्शों एवं उदारवादी आदर्शों दोनों से ने हमारी सामाजिक संरचना को वांछित दिशा में प्रभावित किया है। अपने समाज के मूल्यांकन के लिए भले ही हम कोई प्रारूप अपना लें, विकासात्मक प्रारूप (विभिन्न

अवस्थाओं में समाज के उद्विकास का आकलन करके) संघर्ष प्रारूप (प्रतिस्पर्धा और भक्ति के लिए निरन्तर संघर्ष पर बल देकर) कार्यात्मक प्रारूप (सामाजिक ढाँचें में प्रत्येक संस्थात्मक प्रचलन का सभी अन्य तत्वों पर परिणाम का विश्लेषण करके आदि), यह तो स्पष्ट रहेगा कि सामाजिक सम्बन्धों के तंत्र में सामाजिक संस्थाओं में सामाजिक व्यवस्थाओं में सामाजिक ढाँचे में और सामाजिक प्रतिमानों में परिवर्तन हुआ है। अब भारत के लोग उतने रूढ़िवादी नहीं हैं जितने कि अर्ध शताब्दि पूर्व हुआ करते थे। वे उन नैतिक आदर्शों और सामाजिक मूल्यों से दृढ़ता से चिपके हुए नहीं हैं जो अतीत से उनको प्राप्त हुए हैं। लोग व्यक्तिगत रूप से वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामूहिक सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं। उनके विचारों और दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया है। वे नये अनुभवों को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। उनमें न केवल प्रौद्योगिकी ज्ञान का अनुकरण करने की उत्सुकता है बल्कि अन्य समाजों से सांस्कृतिक तत्वों के अनुकरण की भी है। उनमें नवाचारों के प्रति भी रचनात्मक जिज्ञासा है। वे नवाचारों को स्वीकार करने और सामाजिक परिवर्तन के परिणामों से नहीं डरते हैं। वे गरीबी, बेकारी, भ्रष्टाचार मुद्रास्फीति, भाई–भतीजावाद, आतंकवाद, जातिवाद और क्षेत्रवाद की समस्याओं के समाधान में असफल होने के लिए उत्तरदायी शक्ति सम्पन्न अभिजात वर्ग का विरोध कर सकते हैं और उनके विरुद्ध आन्दोलित नही होगी। भारतीय संस्कृति, जिसमें विविधता है, न केवल जीवित रहेगी बल्कि विकसित भी होगी। आर्थिक विकास के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवहार को विकास के बिन्दु एवं निर्देश प्रदान करता रहेगा– परम्परागत एवं संक्रमणकालीन।

आर्थिक अर्थव्यवस्था

(म्बवदवउपबंलेजमउ)

अर्थव्यवस्था (म्बवदवउल)

सन् 1999 में कारगिल युद्ध, उड़ीसा के तूफान से तबाही, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पैट्रोलियम पदार्थों के बढ़ते मूल्य और सन् 2000–2001 के बजट में रक्षा के क्षेत्र में 13 हजार करोड़ रुपये की वृद्धि ब्याज दायिता में वृद्धि, सब्सिडी पर व्यय, आदि ने हमारी अर्थव्यवस्था पर काफी प्रभाव डाला है। अर्थव्यवस्था में निर्धनता और मुद्रास्फीति के प्रश्न प्रमुख महत्व के हैं। सन् 1993–94 में कुल जनसंख्या का 37.8 प्रतिशत या 32.03 करोड़ व्यक्ति (37.27 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 32.36 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों में) गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे थे (डंद च्वूमत च्तवपिसमए प्दकपंए1998रू343)।

1970 और 1980 की दशाब्दियों में ग्रामीण निर्धनता में तीव्र कमी आयी थी। निर्धनता का प्रतिळात 1973–74 में कुल ग्रामीण जनसंख्या का 55 प्रतिशत से कम हो कर 1987–88 में 39.09 तथा 1989–90 में 34 प्रतिशत ही रह गया था। परन्तु 1990 की शताब्दि में यह प्रतिशत कम होने की बजाय बढ़ गया। एन.एस.एस. के आंकड़ों के अनुसार, 1998 में यह 42 प्रतिशत था (थ्तवदजसपदमए डंतबी 17ए 2000रू109)। यह वृद्धि (अ) खाद्य की बढ़ती हुई कीमत के कारण, (ब) गांवों में रोजगार के अवसर पैदा करने की संभावनाएँ कम होने के कारण और (स) गांवों में गैर– कृषि आय का हिस्सा घटने के कारण बताई जाती है। आज देश के 5 प्रतिशत लोग बेरोजगार हैं। सरकार द्वारा अर्जित प्रत्येक रुपये में से करीब एक चौथाई भाग उधार के ब्याज

उतारने में जा रहा है। 1998–99 में यह रुपये का 24 प्रतिशत और 1999–2000 में 27 प्रतिशत था (जेम भ्पदकनेजंद ज्पउमेए डंतबी 1ए 2000)। सकल घरेलू उत्पाद का 11 प्रतिशत केन्द्रीय व राज्य सरकारों द्वारा गैर योग्यता सब्सिडी पर (जैसे– जल आपूर्ति, उच्च शिक्षा, सिंचाई विद्युत, पेट्रोल, मिट्टी का तेल आदि पर खर्च किया जा रहा है। यह तथ्य देश में निर्धनता, आय और सम्पत्ति की दुखद स्थिति दर्शाते हैं। राष्ट्रीय धन और आय का कितना भाग गरीबी तथा बेरोजगारी दूर करने के कार्यक्रमों पर खर्च किया जाए, इस विषय पर काफी चर्चा होती है। आर्थिक विकास की दर में कैसे वृद्धि की जाए? आर्थिक विषमताएँ किस प्रकार दूर की जाएं? सार्वजनिक सेवाओं और कल्याण योजनाओं पर कितना खर्च किया जाए? कल्याण कार्यक्रमों की क्या भूमिका है? क्या यह गरीबों को न्यूनतम सुरक्षा प्रदान करने वाला हो या फिर सभी के लिए गहन सुरक्षा व्यवस्था करने वाला? क्या हमारे देश में सामाजिक विषमताएँ आर्थिक विषमताओं का परिणाम हैं या आय वितरण में विभेदीकरण का?

यूनिट–4

भारत में सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य

(ळवंसे वि िवबपंस बिंदहम पद प्दकपं)

भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता के समय अनेक बुद्धिजीवियों ने अनुभव किया कि भारत आधुनिकीकरण के क्षेत्र में असफल हो गया है, क्योंकि यह पूँजीवादी साम्राज्यवाद का शिकार रहा है, न कि यहाँ विकास की संभावनाएँ कम हैं। सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन जिसको हमने 47 वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया था तथा जिसको भविष्य के लिए हमने अपना उद्देश्य बनाया है, सरंचनात्मक परिवर्तन के उद्देश्य से किया है। इससे जन आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग मिलेगा। गणतन्त्र की स्थापना के प्रारम्भिक दस वर्षों में जिन सामूहिक उद्देश्यों की योजना हमने बनायी थीं वे थी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक।

सामाजिक उद्देश्य थे– समानता, न्याय, स्वतन्त्रता, युक्तिकरण और व्यक्तिवाद। आर्थिक उद्देश्यों में वितरण सम्बन्धी न्याय तथा आर्थिक धर्म दर्शन के स्थान पर आर्थिक युक्तिकरण शामिल थे। राजनैतिक उद्देश्य थे, ऐसी राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना करना जहाँ शासक जनता के प्रति उत्तरदायी हो, राजनैतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो तथा अधिकाधिक लोगों को निर्णय की प्रक्रिया में सम्मिलित किया जा सके। हमारा सांस्कृतिक उद्देश्य था पवित्रता से धर्म निरपेक्षता की नीति। हमारे सत्ताधारी अभिजनों ने इस सम्बन्ध में निम्न उद्देश्य बनाए–

एक शक्तिशाली केन्द्रीय राज्य की रचना–यह इसलिए आवश्यक था क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में राजनैतिक सत्ता का विखण्डन हो चुका था। स्वतन्त्रता के पश्चात् यह भय था कि धार्मिक, भाषायी, जातीय, जनजातीय, वर्गवादी आदि शक्तियाँ सत्ता का और भी विखण्डन कर सकती है। केन्द्र में शक्तिशाली तथा राज्यों को आदेश देने वाली सरकार ही ऐसे प्रयत्नों को रोक सकेगी।

अर्थ व्यवस्था को आधुनिक बनाना– यह प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करने देश को आत्म निर्भर बनाने तथा स्वदेशी पूँजी क्षेत्र बनाने के लिए आवश्यक था।

समाजवादी समाज की स्थापना करना–यह निजी पूँजीपतियों की भूमिका को प्रतिबन्धित करने के लिए आवश्यक था, न कि उनको समाप्त करना तथा प्रमुख उद्योगों के जन स्वामित्व पर बल देना था।

जातियों, क्षेत्रों एवं वर्गों में असमानताओं को कम करना– मूलभूत मानव अधिकारों का संरक्षण करना जैसे– स्वतन्त्र – भाषण का अधिकार, स्वतन्त्र धार्मिक अभिव्यक्ति का अधिकार, राजनैतिक भागीदारी का अधिकार आदि। एक ऐसे समाज की स्थापना करना जहाँ निस्वार्थ, त्याग, सहयोग तथा आदर्शवाद की ओर प्रेरित हों।

समाजिक परिवर्तन के अध्ययन सम्बन्धी उपागम

(।चचतवंबीमे जव जीमॅजनकल वॅिवबपंस बिंदहम)

योगेन्द्र सिंह ने सामाजिक परिवर्तन पर अपने प्रारम्भ के लेखों में (1969:11) भारत में सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन की प्रकृति और प्रक्रिया पर तीन उपागमों की चर्चा की थी। दार्शनिक–ऐतिहासिक और आध्यात्मिक उपागम, राजनैतिक– ऐतिहासिक उपागम, सामाजिक मानवशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय उपागम।

दार्शनिक ऐतिहासिक उपागम के स्रोत भारतीय एवं पश्चिमी दोनों ही बताए गए हैं। भारतीय दर्शन और धर्म ने परिवर्तन के दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसकी विशेषता थी समाज में काल चक्रीय गति, जो समय–समय पर अवतारों के द्वारा खण्डित किया गया तथा पुनः सक्रिय किया गया। इस सिद्धान्त का आधार कर्म–धर्म और मोक्ष में विश्वास है। एक समय था जब इस सिद्धान्त पर दृढ़ विश्वास किया जाता था, लेकिन अब यह विलुप्त होता जा रहा है, क्योंकि इसका व्यवस्थित विश्लेषण सम्भव नहीं हैं। ऐतिहासिक उपागम से सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन भारतीय इतिहास के आलेखों द्वारा होता है, उदाहरणार्थ, जाति प्रथा में परिवर्तन या स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन का अध्ययन विविध युगों के ऐतिहासिक आलेखों के आधार पर किया जाता है जैसे– मौर्यकाल, गुप्तकाल, ब्राह्मणिक काल, मुगल काल, ब्रिटिश काल तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल। इस उपागम की सीमा यह है कि ऐतिहासिक आलेख सभी उपलब्ध नहीं हो पाते हैं या फिर साक्ष्य विश्वसनीय नहीं होते। परिणामतः इस उपागम पर निर्भर रहने से समाजशास्त्रीय सामान्यीकरण भ्रामक हो सकता है। सामाजिक मानव शास्त्रीय उपागम अन्य दोनों उपागमों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित समझा जा सकता है। इस उपागम में गहन क्षेत्रीय कार्य या सहभागिक अवलोकन विधि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के उपागम में सैद्धान्तिक प्रस्थापनाएँ मानवजातीय आंकड़ों की व्याख्या करते हैं जो या तो अध्ययनकर्ता के स्वयं के या दूसरों के क्षेत्रीय कार्य के परिणाम होते हैं। एम.एन. श्रीनिवास (1985:137) का विचार है कि कुछ सप्ताह या कुछ माह सूचनादाताओं के साथ दुभाषिए के माध्यम से रहने से अध्ययन किए जाने वाले लोगों के विषय में विश्वसनीय दृष्टिकोण प्राप्त नहीं किया जा सकता है। सामाजिक मानवशास्त्रियों से आशा की जाती है कि वे उन लोगों के बीच कम से कम साल डेढ़ साल व्यतीत करें, उनकी भाषा में निपुणता प्राप्त करें, और जितना अवलोकन कर सकें उतना करें। ब्रिटिश मानवशास्त्री संस्कृति को महत्व नहीं देते बल्कि समाज, सामाजिक संरचना और सामाजिक सम्बन्धों को अधिक महत्व देते हैं। वे अब तुलनात्मक विधि का भी प्रयोग करते हैं जिसमें विविध समाजों का अध्ययन सम्मिलित हैं। यह जानते हुए कि समाज की विभिन्न संस्थाएँ परस्पर सम्बन्धित हैं, सामाजिक मानवशास्त्री विशिष्ट संस्था के साथ सभी सम्बद्ध संस्थाओं का

अध्ययन करता है। इस मानवशास्त्रीय उपागम की सीमा यह है कि यह सूक्ष्म स्तर के आधार पर सार्वभौमिकता एवं समरूपता पर आधारित है। लेकिन भारत में विषमता और विविधता अधिक है। इस प्रकार एक गाँव के किसी संस्था (जैसे– परिवार, जाति आदि) के परिवर्तन को दो समय अवधि के दीच अध्ययन करके हम इस सामान्य निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते कि दूसरे गाँवों में या समूचे भारत में इसी प्रकार के परिवर्तन होते हैं। सामाजिक मानवशास्त्रीय उपागम की त्रुटियाँ समाजशास्त्रीय उपागम द्वारा कम कर दी गई है। समाजशास्त्रीय उपागम में आनुभविक जाँच पड़ताल वृहत स्तर पर की जाती है और सामान्य निष्कर्ष प्राप्त किए जाते हैं।

सामाजिक परिवर्तन पर अपने बाद के लेखों में योगेन्द्र सिंह (1977) ने भारत में सामाजिक परिवर्तन के विषय में पाँच उपागमों की चर्चा की है। ये हैं– उद्विकासीय उपागम, सांस्कृतिक उपागम (संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण, लघु व महत्व परम्पराएँ, संकुचितीकरण और सार्वभौमीकरण), संरचनात्मक उपागम (प्रकार्यात्मक तथा द्वन्द्वात्मक मॉडल पर आधारित, आदर्शगत व विचारात्मक उपागम, तथा एकीकरण उपागम।

समाज इकाईयों से निर्मित एक व्यवस्था है नैतिकता अनैतिकता इसके अंग है। अनैतिक कृत्य बुराईयाँ फैलाते है। जिससे सम्पूर्ण समाज का पतन होता है। बुराईयाँ सामाजिक सहयोग एवं विकास में बाधा पहुँचाती हैं। समाज शास्त्रियों एवं समाज कार्यकर्ताओं की धारणा है कि बुराईयों को जन्म देने वाले परिवेश को शुद्ध करके बुराईयों से निजात पाया जा सकता है। सामाजिक बुराईयाँ समाज के व्यक्तित्व के लिए प्रदूषण को जन्म देती हैं बुराईयों के कारणों कार्यों एवं प्रभावों का अध्ययन करके इनसे छुटकारा पाया जा सकता है। सामाजिक बुराईयाँ निम्नवत् हैं–

1. मद्यपान तथा मादक द्रव्य व्यसन
2. भिक्षावृत्ति
3. भ्रष्टाचार
4. सम्प्रदायवाद
5. कम्युनलिज्म

मद्यपान तथा मादक द्रव्य व्यसन

भारत परम्पराओं से निर्मित देश है। परम्पराएँ आध्यात्म से जुड़ी हुई है। आध्यात्म देव लोक में ही सुरा के समतुल्यं पेय पदार्थ की कल्पना करता हैं। देवलोक में शारीरिक पौष्टिकता प्रधान पेय पदार्थ लिया जाता है उसका अनुशरण करते हुये भारतीय समाज शराब जैसी वस्तु को प्रयोग करना शुरू किया शराब ने शारीरिक उत्तेजना प्रगट किया जिससे शक्ति का प्रस्फुटन हुआ किन्तु इसने व्यक्ति को आन्तरिक रूप से झकझोर दिया। आज इसके नकारात्मक परिणाम मानस पटल पर प्रकट हो गये हैं किन्तु इसे समाज ने व्यवहार में प्रयोग करना जारी रखा है।

व्यक्ति परिवार तथा समाज को विघटित करने में मद्यपान का प्रमुख कार्य कर रहा है एक समस्या के रूप में मद्यपान का तात्पर्य अत्यधिक मात्रा में शराब पीना है लेकिन कम या अधिक मात्रा कितनी है यह एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण है। मद्यपान के अन्तर्गत देशी शराब और विदेशी शराब साथ ही स्प्रिट और ताड़ी जैसे पदार्थों को शामिल किया जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार– ''मद्य सेवी का तात्पर्य अत्यधिक नशा करने वाले इस व्यक्ति से जो शराब पर इतना निर्भर हो जाता है कि इसके कारण उस व्यक्ति का सामाजिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य, अन्तवैयक्ति सम्बंध तथा सामाजिक और आर्थिक जीवन पूर्णतयः अस्त–व्यस्त हो जाता है।''

टेक चन्द्र समिति के अध्ययन के अनुसार– शराब पीने अथवा किसी भी मादक पदार्थ के सेवन से उत्पन्न बुरी आदत अथवा बीमारी ही मद्यपान है। यह वह स्थिति है जो मनुष्य को आत्म मन और शरीर को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करके उसे पतन की ओर ले जाती है। मद्यपान के अन्तर्गत व्यक्ति द्वारा बार–बार अधिक मात्रा में शराब पीकर असामाजिक कृत्यों को किया जाता है।

मद्यपान के निम्न कारण हैं–

1. परम्परागत संस्कृति पर विश्वास
2. तनाव पूर्ण पारिवारिक परिवेश
3. शराब का भ्रमक अर्थ जानना
4. गंदी बस्तियों का होना
5. फैशन के रूप में मनाना
6. व्यक्तिगत जीवन में कुंठा आना
7. विशिष्ट उद्देश्य अथवा इच्छा की प्राप्ति न होना।
8. गलत मित्र–मण्डली होना।

मद्यपान को दूर करने के निम्न उपाय हैं–

1. शिक्षा का प्रसार करना।
2. शराब के दोषों को उजागर करना।
3. पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश को शुद्ध बनाये रखना।
4. प्रदूषित मित्र मण्डली से दूरी रखना।
5. सामाजिक परिवेश को जागरुक रखना।
6. अन्तर वैयक्तिक एवं अन्तर पारिवारिक झगड़ों से बचना।

मादक द्रव्य व्यसन

समाज अच्छाईयाँ एवं बुराईयों से निर्मित एक व्यवस्था है अच्छाईयाँ विकास का सूचक होती हैं। बुराईयाँ समाज को विकलांग कर देती हैं। नशा एक ऐसी बुराई है जो व्यक्ति तथा समाज दोनों को क्षति पहुँचाती है। नशा के अर्न्तगत पेय पदार्थ एंव जड़ी–बूटियों को रखा जाता है। भारत में शराब अधिकांश रूप से प्रयोग की जाती है इसलिए इसे मद्यपान के अर्न्तगत रख दिया गया है। इसके अलावा कुछ अन्य पेय पदार्थ तथा जड़ी बूटियां हैं जिन्हें मादक द्रव्य व्यसन के अन्दर

रखा गया है इनके प्रयोग से व्यक्ति को नशा, उत्तेजना, सुख का अहसास अथवा ऊर्जा प्राप्ति का अनुभव होता है इसके प्रयोग करने से इसको पाने की उत्कृष्ट इच्छा हुआ करती है जब व्यक्ति आदी हो जाता है तब वह इसी में शारीरिक मानसिक संतुष्टि प्राप्त करता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की विशेषज्ञ समिति के अनुसार मादक द्रव्य व्यसन अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन उन्माद की वह दशा है, (जो व्यक्ति को एक विशेष व्यवघर करने पर उतना निर्भर बना देती है कि वह शारीरिक और मानसिक संतुष्टि के लिए उसे आवश्यक समझने लगता है।) किसी नशीली वस्तु के निरन्तर उपयोग से उत्पन्न होती है और जिससे व्यक्ति तथा समाज दोनों को हानि होती है।

डॉक्टर इमलाह ने अपनी पुस्तक ष्क्तनह पद डवकमतद ैवबपमजलष में मादक द्रव्य व्यसन के अन्तर्गत निम्न बातों को रखा है–

1. शराब, गांजा, भांग, अफीम,चरस, फेन्मीजाइन, स्मैक तथा ब्राउन सुगर।

2. मार्फिन, साइलोसाइबीन, मैन्ड्रेक्स, कोकीन आदि।

मादक द्रव्य व्यसन के निम्न कारण हैं–

1. निराशापूर्ण जीवन।

2. निराशा की दोषपूर्ण दशाएं

3. संगीत का प्रभाव

4. फैशन

5. नगरीकरण

6. मनोवैज्ञानिक कारण

7. असामान्य व्यक्तित्व

8. प्रतिपूर्ण परिस्थितियाँ

9. नैतिक मूल्यों का पतन

10. चुनाव की राजनीति।

मादक द्रव्य व्यसन के दूर करने के उपाय

मद्यपान तथा मादक द्रव्य वयसन के परिणाम

भौतिकता प्रधान वैरियक परिवेश मद्यपान तथा मादक द्रव्य के प्रयोग के लिए प्रेरित करता है इसका प्रयोग समाज के लिए अत्यधिक हानिकारक है इसके परिणाम नकारात्मक ही होते हैं। ये नकारात्मक तथा घातक परिणाम निम्नवत् हैं–

1. वैयक्तिक विघटन

2. पारिवारिक विघटन

3. सामाजिक विघटन

4. सांस्कृतिक विघटन

मद्यपान तथा मादक द्रव्य व्यसन से सम्बन्धित आंकड़े या तथ्य

- भारत में लगभग 10 से 15 प्रतिशत व्यक्ति मदिरापान करते हैं।
- 1986 में अमेरिका में पीने वाले लोग 9 प्रतिशत थे।
- 1983 में अमेरिका में 76 प्रतिशत व्यक्ति मदिरा सेवन करते थे।
- भारत में शराब की बिक्री 1988–98 के बीच 20 गुना बढ़ गई थी।1998 के वर्ष में शराब की बिक्री से 15 हजार करोड़ रुपये की आमदनी हुई।
- भारत में एक व्यक्ति की शराब की खपत सबसे अधिक केरल में है।
- देशी शराब में 28 प्रतिशत एल्कोहल होती है।
- 1976 के अध्ययन के आधार पर मादक पदार्थ का सर्वोच्च सेवन विधि के विद्यार्थियों में है। इसके बाद 23.6 प्रतिशत वाणिज्य विद्यार्थी के मादक पदार्थ का प्रयोग करते हैं। इंजीनियर विद्यार्थियों 4.6 प्रतिशत मादक पदार्थ का प्रयोग किया है। 1986 के अध्ययन ने सर्वोच्च स्थान वाणिज्य वर्ग को हो गया था।
- 90 प्रतिशत विद्यार्थी हफ्ते में लगभग एक बार मादक द्रव्य का प्रयोग करते हैं 9 प्रतिशत विद्यार्थी नियमित प्रयोग करते हैं।
- लगभग 75 प्रतिशत विद्यार्थी शराब और तम्बाकू लेते हैं।
- कोलकाता ऐसा समुदाय है जहाँ पर सर्वाधिक व्यसनी पाये जाते हैं।
- मार्च 1998 में भारत ने मादक द्रव्य छुटकारा दिलाने के लिए 172 परामर्श केन्द्र और 33 अभिज्ञा (ं्तमदमे) केन्द्र निर्धारित किये गये।
- वर्ष 1997 में दिल्ली में 46 हजार लोग भांग, गांजा, अफीम, हिरोइन इत्यादि का सेवन करते थे, जबकि 3.6 लाख लोग तम्बाकू तथा 3.4 लाख लोग शराब का सेवन करते थे।
- इस समय अनुमानतः देश में 10 करोड़ शराबी हो सकते हैं। 1 करोड़ ऐसे लोग हैं जो भांग, गांजा, चरस इत्यादि का सेवन करते हैं। अफीम का सेवन करने वाले लगभग तीस लाख हो सकते हैं।
- भारत में मैनड्रेक्स को 1970 के दशक के अंत में प्रतिबंधित किया गया है।
- 1961 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने चिकित्सकीय शोध के अतिरिक्त अन्य कार्यों में गांजा और चरस के उपयोग को प्रतिबन्धित कर दिया है।
- अफीम उपयोग प्रतिबन्ध अधिनियम 1959 में बनाया गया है।
- मादक पदार्थ सम्मेलन 1961 में हुआ। भारत ने इसी आधार पर मादक पदार्थ नियंत्रण रणनीति तैयार की। 1972 में इस रणनीति में संशोधन किया गया भारत ने यह निश्चय किया कि 25 वर्ष के अन्दर वह सभी सांस्कृतिक विधियों में मादक पदार्थों का प्रयोग बन्द कर देगा।
- 1985 में मादक द्रव्य एवं उत्तेजक पदार्थ अधिनियम बनाया गया।

- 21 से 35 वर्ष की आयु के लोग मादक पदार्थ का सर्वाधिक उपयोग करते हैं। इस आयु लोगों में 55.39 प्रतिशत लोग व्यसनी हैं। इन व्यसनियों में करीब को तिहाई लोग औद्योगिक मजदूर हैं।
- औद्योगिक संस्थानों में लगभग 94.44 प्रतिशत लोग शराब का प्रयोग करते हैं। 18.47 प्रतिशत लोग चरस का प्रयोग करते हैं। 2.16 प्रतिशत लोग अफीम का प्रयोग करते हैं। 8.39 प्रतिशत लोग भांग का प्रयोग करते हैं तथा 6.95 प्रतिशत लोग गांजे का प्रयोग करते हैं।
- 1991 के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली, कोलकाता, बडौदा और मुम्बई के 32 प्रतिशत छात्र नशाखोरी एवं यौनाचार्य में संलग्न रहते हैं।
- एक अध्ययन के अनुसार नशा खोरी निम्न कारणों से उतनी नही मात्रा में किया जाता है।
    - तनाव से शत–प्रतिशत
    - यौन समस्या 80 प्रतिशत
    - पारिवारिक तनाव 50 प्रतिशत परिवार में नशाखोरी की आदत से 30 प्रतिशत
    - मुफ्त में नशा की उपलब्धता से 30 प्रतिशत
    - अस्वस्थ्य वैवाहिक जीवन से 30 प्रतिशत
    - बेरोजगारी से 34 प्रतिशत
- श्रम मंत्रालय के श्रम ब्यूरो के अनुसार 10.24 प्रतिशत मजदूर परिवार नशा के आदी होते हैं।
- दिल्ली और मुम्बई में स्मैक के प्रयोगकर्ताओं में 75 प्रतिशत लोग गरीब तबके के होते हैं।

जाति व्यवस्था–

जाति प्रथा न्याय व समृद्धि दोनों की ही प्राप्ति में बाधक रही हैं। किंगस्ले डेविस (1951:216) का कथन सत्य था कि अनुवांशिक व्यवसाय का विचार, मुक्त अवसरों का विचार, मुक्त प्रतिस्पर्द्धा, बढ़ती हुई विशेषज्ञता, तथा व्यक्ति की गतिशीलता जो गतिशील औद्योगिक अर्थव्यवस्था से संबन्धित है कि बिल्कुल विपरीत है।

निरक्षरता, अज्ञानता तथा भय

निरक्षरता के कारण उत्पन्न अज्ञानता भय उत्पन्न करती है जो सामाजिक परिवर्तन में बाधा डालती है। प्रथा के अनुसार कार्य करना सुरक्षित होता है, क्योंकि उनका परीक्षण हो चुका होता है। एक और बात यह है कि नया अनजान होता है, अतः उससे बचना ही ठीक होता है। यदि जो वर्तमान भौतिक संस्कृति से सम्बद्ध है, और जिनकी अधिक आवृति होती है तो लोग उसके आदी हो जाते हैं और परिवर्तन के प्रति वैमनस्य भाव कम होता है और भय का कारण भी। जब निरक्षरता संस्करण को प्रोत्साहन देती है, तब शिक्षा समानता के विचार पर बल देती है। यह विवेक को भी प्रोत्साहन देती है। शिक्षित लोग सभी प्रकार की इच्छाओं को जन्म देते हैं तथा उनकी प्राप्ति के साधन भी विकसित करते हैं।

मूल्य–

सामाजिक परिवर्तन में मूल्यों की भूमिका विवाद का विषय उदाहरणार्थ हीगल का विचार था के सामाजिक परिवर्तन विचारों की अभिव्यक्ति का परिणाम है मार्क्स का विचार था कि लम्बी अवधी के सामाजिक परिवर्तन पर मूल्यों का कोई प्रभाव नहीं होता है। उन्होने सोचा कि सामाजिक परिवर्तन आर्थिक भाक्तियों की अन्तर्क्रिया का प्रतिफल होता है, जो कि वर्ग संघर्ष में प्रकट होता है। अधिकतर भारतीय समाजशास्त्री सहमत हैं कि मूल्य व्यक्ति और सामूहिक व्यवहार दोनों को प्रभावित करते हैं और इस प्रकार सामाजिक प्रक्रिया को भी प्रभावित करते हैं। अनेक लोग अनुभव करते है कि मूल्य परिवर्तन का परिणाम होते है। अतः मूल्यों को सामाजिक परिवर्तन में प्राथमिक कारक नहीं मानना चाहिए। जाति प्रथा के मूल्य (संस्तरण, अपवित्रता, अन्तर्विवाह) भारतीय समाज के परिवर्तन में बहुत बाधक थे। जब लोगों ने तकनीकी तथा औद्योगीकरण को स्वीकार कर लिया तभी भौगोलिक गतिशीलता के बाद सामाजिक गतिशीलता संभव हुई। भाग्यवाद ने भी कठिन परिश्रम तथा सामाजिक परिवर्तन में बाधा उत्पन्न की। अकाल, बाढ़, भूकम्प, निर्धनता, बेरोजगारी सभी ईश्वरीय प्रकोप के परिणाम समझे जाते थे। औद्योगिक समाजों में लोगों ने सिद्ध कर दिया है कि प्रकृति पर नियंत्रण संभव है तथा अवांछनीय स्थिति निराशाजनक बाधा नहीं है, बल्कि मनुष्य की शक्ति को चुनौती है।

स्वजातिवाद भी लोगों को दूसरी संस्कृतियों अथवा नवीन विचारों को स्वीकार करने से रोकता है। भारतीयों के मस्तिष्क में जातिवाद इतनी गहरी जड़ें जमा चुका है कि यद्यपि वे सांस्कृतिक सापेक्षवाद के दर्शन के प्रति सचेत होते हैं फिर भी वे दूसरों के विचारों को अपने विचारों के प्रकाश में मूल्यांकन करने के शिकार हो ही जाते हैं। स्वाभिमान व इज्जत का विचार लोगों को दूसरों के विचारों को स्वीकार करने से रोकते हैं। वे समझते हैं कि वे इतने विद्वान व विचारवान हैं कि दूसरों के विचार उनके लिए कोई महत्व नहीं रखते, इसलिए उन्हें छोड़ देना चाहिए।

यूनिट–5

निर्धनता (च्वूमतजल)

निर्धनता और असमानता एक से नहीं हैं। वह व्यक्ति जिसकी वार्षिक आय 15000 रुपये है और उसे एक पत्नी और एक बच्चे का भरण पोषण करना है, इतना निर्धन नहीं है जितना कि वह व्यक्ति जिसकी वार्षिक आय 25000 रुपये है और उसे पत्नी और पांच छः बच्चों के बड़े परिवार का भरण पोशण करना है। आय और धन भी दो अलग शब्द हैं। आय का अर्थ आर्थिक संसाधनों के प्रवाह से है जबकि धन का अर्थ आर्थिक संसाधनों के कुल संचय से है। वेतन, मजदूरी, किराया, ब्याज, पेन्शन, स्व–रोजगार से आय और शेयर कम्पनियों से प्राप्त लाभांश को आय माना जाता है, जबकि अचल सम्पत्ति, स्वर्ण और बॉण्ड धन कहलाता है। असमानता और निर्धनता को समझने के लिए निर्धनता, आय, धन और असमानता जैसी अवधारणाओं पर विचार करना आवाश्यक है।

निर्धनता की अवधारणा (ब्वदबमचज वि च्वअमतजल)

निर्धनता क्या है? निर्धनता को या तो निरपेक्ष या सापेक्ष रूप में परिभाषित किया जा सकता है। अस्तित्व की मूल आवश्यकताओं में अपर्याप्तता निरपेक्ष निर्धनता है। व्यावहारिक रूप में अर्थ आमतौर पर पर्याप्त भोजन, कपड़ा व मकान का अभाव होता है। गरीबी की रेखा की अवधारणा निर्धनता को निर्वाह (गुजारा) के सन्दर्भ में समझाती है, जिसका अर्थ है श्शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए न्यूनतम आवश्यकता। बर्सटीन हैनरी ने निर्धनता के चार आयाम बताए हैं– 1. जीवन–यापन के साधनों की कमी, 2. संसाधनों (धन, भूमि, ऋण) तक पहुँचने की अक्षमता, 3. असुरक्षा की भावना और कुण्ठाएँ तथा 4. संसाधनों की कमी के कारण दूसरों से सामाजिक सम्बन्धों को विकसित करने एवं बनाए रखने की अयोग्यता।

निर्धनता को परिभाषित करने के लिए तीन सूत्र बहुधा प्रयोग किये जाते हैं– 1. जीवित रहने के लिए व्यक्ति को धनराशि की आवश्यकता, 2. प्रदत्त समय और स्थान में प्रचलित न्यूनतम जीविका स्तर और रहन–सहन के स्तर से नीचे का जीवन, तथा 3. समाज में बड़ी संख्या के लोगों के वंचित व अभावग्रस्त और निराश्रय लोगों की और कुछ लोगों के समृद्ध जीवन स्थिति की तुलना।

अन्तिम धारणा सापेक्षता और असामानता के सन्दर्भ में निर्धनता को स्पष्ट करती है। जहाँ प्रथम दो धारणाएँ निरपेक्ष निर्धनता की आर्थिक अवधारणा के सन्दर्भ में हैं, वहीं तीसरी धारणा इसको सामाजिक अवधारणा के रूप में अर्थात् नीचे के स्तर के लोगों द्वारा कुल राष्ट्रीय आय से प्राप्त भाग के अर्थ में देखती है। हम तीनों धारणाओं को अलग–अलग समझने का प्रयास करेंगे।

पहले दृष्टिकोण (जीविका के लिए न्यूनतम आय की आवश्यकता के अर्थ में) के अनुसार निर्धनता शरीर क्रियात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति की असमर्थता अर्थात् अस्तित्व रक्षा और सुरक्षा की आवश्यकता की असमर्थता है। यह शरीर क्रियात्मक आवश्यकताएँ सामाजिक आवश्यकताओं से (अथवा अहं की तुष्टि और स्वाभिभान) स्वायत्तता की आवश्यकता, स्वाधीनता की आवश्यकता, तथा स्व–वास्तविकीकरण की आवश्यकता से भिन्न है। शरीर क्रियात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति

के लिए भोजन और पोषक तत्व, आवास और स्वास्थ्य, सुरक्षा न्यूनतम आवश्यकताएँ हैं। इसके लिए आवश्यकताओं के खरीदने और मौलिक सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिए कम से कम आय चाहिए।

यहाँ निर्धनता को गरीबी रेखा के सन्दर्भ में देखा गया है जिसका निर्धारण स्वास्थ्य, दक्षता, बच्चों के लालन–पालन, सामाजिक सहभागिता और आत्म सम्मान को बनाए रखने की आवश्यकताओं के प्रचलित मानदण्डों से किया जाता है (ठमबामतए 1966रू436)। परन्तु व्यवहार में गरीबी रेखा का निर्धारण न्यूनतम वान्धनीय पोषण मानदण्डों से कैलोरी का उपभोग करने के आधार पर किया जाता है। भारत में गरीबी रेखा का निर्धारण ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी प्रतिदिन प्रति व्यक्ति के उपभोग तथा शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के उपभोग के आधार पर होता है। इसके आधार पर प्रति व्यक्ति का मासिक उपभोग व्यय निकाला जा सकता है।

हमारे देश में न्यूनतम उपभोग व्यय 1962 के योजना आयोग के परिप्रेक्ष्य योजना विभाग की सिफारिसों तथा 1961 के मूल्यों के आधार पर गणना द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में पांच सदस्यों के परिवार का व्यय 100 रुपये तथा शहरी क्षेत्रों में 125 रुपये हुआ। यह प्रति व्यक्ति प्रतिमाह ग्रामीण क्षेत्रों में 20 रुपये तथा शहरी क्षेत्रों में 25 रुपये हुआ। सन् 1978–79 में यह ग्रामीण क्षेत्रों में 62.5 रुपये तथ शहरी क्षेत्रों में 70.08 रुपये आंका गया था, जबकि, 1984–85 में पुरीक्षित गरीबी रेखा 1981–82 कीमत के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति मासिक व्यय 107 रुपये तक और शहरी क्षेत्रों के लिए 122 रुपये निर्धारित की गई (प्दकपंए 1990रू 404)। 1987–88 में यह गांवों के लिए प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह 131.80 रुपये और शहर के लिए 152.10 रुपये रखी गई (जैम भ्पदकनेजंद ज्पउमेए ।चतपस 13ए 1998)। 1993–94 में ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति प्रतिमाह को 229 रुपये तथा शहरी क्षेत्र में 264 रुपये की आमदनी, भोजन, तथा अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक होती थी । (व्नजसववाए थ्मइतनंतल 14ए 1996रू 26) यदि एक परिवार में औसतन पांच सदस्य मान लिए जाएं तब गांवों में प्रति परिवार प्रतिवर्ष 13740 रुपये और शहरों में प्रति परिवार प्रतिवर्ष 15840 रुपये न्यूनतम पर्याप्तता के लिए जरूरी होंगे। 1998–99 की कीमत के आधार पर गांवों में वार्षिक खपत 22400 रुपये और शहरों में 25620 रुपये होनी चाहिए। इसी आधार पर सरकार ने 1990 दशक के मध्य में प्रति परिवार प्रति वर्ष 15000 रुपये से कम आय वाले परिवार को गरीबी रेखा से नीचे का परिवार माना। यहां पर न्यूनतम जीविका स्तर को ही केन्द्र माना गया है जो न्यूनतम पर्याप्तता स्तर तथा न्यूनतम आराम स्तर से भिन्न हैं। अमरीका में 1963 में 2500 डालर वार्षिक आय तथा चार सदस्यों वाला परिवार न्यूनतम जीविका स्तर के नीचे माना जाता था, 3500 डालर वार्षिक आय वाला श्न्यूनतम पर्याप्तता स्तर से नीचे वाला, तथा 5500 डालर आय वाला परिवार श्न्यूनतम आराम स्तर से नीचे रहने वाला माना जाता था (व्उंजपए 1964 रू 440)। इस आधार पर अमरीका में 10 प्रतिशत परिवार श्न्यूनतम जीविका स्तर वाले परिवार, 25 प्रतिशत न्यूनतम पर्याप्तता स्तर वाले परिवार तथा 38 प्रतिशत न्यूनतम आराम स्तर वाले परिवार थे। अमरीका में चार सदस्यों का परिवार जो गरीबी स्तर का था, उसकी वार्षिक आय 1982 में 8450 डालर (डंसहंआंतए 1983 रू 3). 1986 में 10989 डालर और 1990 में 14200 डालर थी। 1998 में अमरीका में प्रति व्यक्ति आय 29080 डालर थी (प्दकपं ज्वकंलेए डंल 10ए 1999रू 46)। एक औसत अमरीकन व्यक्ति एक औसत भारतीय से आठ गुनी आय अर्जित करता है।

भारत में 1993–94 में योजना आयोग द्वारा गरीब लोगों की संख्या (अर्थात् वे लोग जो न्यूनतम जीविका स्तर से नीचे थे) कुल जनसंख्या की 18.1 प्रतिशत आँकी गई थी। मार्च 1997 में लकड़वाला समिति की रिपोर्ट स्वीकार करने के बाद योजना आयोग के अनुसार गरीबी रेखा के नीचे के लोगों का प्रतिशत 37.2 या 32.03 करोड़ माना गया है (जेम भ्पदकनेजंद ज्पउमेए ।चतपस 16ए 1997)। परन्तु यह बात महत्वपूर्ण है कि निर्धन लोग समजाति समूह नहीं हैं। इन्हें चार उप–समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है– अकिंचन अथवा निराश्रय (जो 1993–94 की कीमतों पर 137 रुपये से कम प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय कर रहे थे), अत्यधिक निर्धन (जो 201 रुपये से कम प्रति व्यक्ति मासिक व्यय कर रहे थे) और निर्धन (जो 246 रु. से कम प्रति व्यक्ति मासिक व्यय कर रहे थे।

निर्धनता पर दूसरे विचार के अनुसार भौतिक पदार्थों और संसाधनों की कमी के दृष्टि कोण से निर्धनता के तीन पक्ष हैं–

1. वे जो शारीरिक कष्ट को दूर रखने के लिए तथा भूख और छत की आवश्यकता पूर्ति के लिए अर्थात् अस्तित्व के लिए आवश्यक है।

2. वे पदार्थ जो मानव स्वास्थ्य के लिए अर्थात् पोषण प्राप्ति और बीमारी से बचाव के लिए आवश्यक हैं।

3. वे जो न्यूनतम जीविका स्तर बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

सरल शब्दों में इनका आशय न्यूनतम भोजन उपभोग, पर्याप्त मकान और कपड़ा और स्वास्थ्य रख–रखाव से है।

ग्रॉस और मिलर ने तीन कारकों की दृष्टि से निर्धनता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है– आय (गुप्त और प्रत्यक्ष), सम्पत्ति या भौतिक प्राप्तियाँ और सेवाओं की उपलब्धता (शैक्षिक, चिकित्सकीय, मनोरंजन सम्बन्धी)। लेकिन अन्य विद्वानों ने इस परिप्रेक्ष्य में निर्धनता की अवधारणा को भ्रामक माना है। उदाहरणार्थ, अमेरिका में 1960 में गरीबी स्तर से नीचे जीवन व्यतीत करने वालों में से 57.6 प्रतिशत के पास टेलीफोन, 79.2 प्रतिशत के पास टी.वी. सेट, तथा 72.6 प्रतिशत के पास कपड़े धोने की मशीन थी। अतः सम्पत्ति या भौतिक साधनों का होना निर्धनता का विशिष्ट आधार नहीं हो सकते। इसी तरह निर्धनता को आय के कारक से नहीं जोड़ा जा सकता। यदि मूल्य स्तर में वृद्धि होती है तो लोग अपने परिवार के सदस्यों के लिए जीवन की आवश्यकताओं को जुटाने में समर्थ नहीं हो सकते। स्पष्टतया तब निर्धनता को समय और स्थान से जोड़ना पड़ता है।

तीसरे विचार के अनुसार निर्धनता प्रत्येक समाज में उपयुक्त न्यूनतम जीविका स्तर से नीचे जीने की स्थिति है, या जीवन की आवश्यकताओं को खरीदने के लिए धन का अभाव है या शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अत्यधिक कमी–भूख कुपोषण, बीमारी और कपड़ा, मकान, चिकित्सा सुविधा की कमी है। आखिरी स्थिति का मापन समाज के निचली सतह पर रहने वालों के जीवन की जनसंख्या के अन्य व्यक्तियों से तुलना कर के किया जाता है। इस प्रकार यह निरपेक्ष दशाओं की अपेक्षा सापेक्ष परिभाषा का विषय है। निर्धनता का निर्धारण मौजूदा मानदण्डों से होता है। मिलर और रोबी ने कहा है कि इस धारणा में निर्धनता को असमानता के निकट माना जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह परिभाषा उस प्रभाव के अर्थों में अधिक महत्वपूर्ण

है जो गरीबों के जीवन अवसरों और आय की असमानता का जीवन की स्थितियों पर पड़ता है। पूर्ण निर्धनता तो गरीबों के हाथ में धन देकर कम की जा सकती है या मिटाई जा सकती है, लेकिन असमानता को सापेक्ष सीमा रेखा से ऊपर उठा कर भी नहीं रोका जा सकता। जब तक आय के पैमाने की सतह पर लोग रहेंगे, वे किसी न किसी प्रकार निर्धन तो रहेगें ही। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक हमारे समाज में सामाजिक स्तरीकरण मौजूद रहेगा।

हारविंगटन ने गरीबी की परिभाषा वच्चनाओं के सन्दर्भ में की है। उसके अनुसार निर्धनता, भोजन, स्वास्थ्य, मकान, शिक्षा एवं मनोरंजन के उन न्यूनतम स्तरों से वंचित रहना है जो तत्कालीन प्रौद्योगिकी, विश्वासों, और मूल्यों के अनुकूल हों। रीन ने निर्धनता में तीन तत्वों का पता लगाया है– जीविका, असमानता, और वाह्यता। जीविका अस्तित्व के अर्थ में स्वस्थ बनाए रखने और कार्य क्षमता के लिए तथा शारीरिक क्षमता बनाए रखने के लिए पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता पर जोर देती है। असमानता उन लोगों की आपस में तुलना करती है जो आमदनी के निम्नतम स्तर पर हैं और जो उसी समाज में विशेषाधिकार प्राप्त लोग हैं। निम्नतम स्तर के व्यक्तियों की वंचनाएँ सापेक्ष हैं। वाह्यता निर्धनों पर गरीबी के पड़ने वाले प्रभाव के अलावा समाज के अन्य लोगों पर पड़ने वाले प्रभाव पर भी बल देती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से निर्धन लोग दुष्चक्रों से घिरे रहते हैं। निर्धन होने का अर्थ है गरीब पड़ोस मे रहना, अधिक व्यक्तियों का या तो बिना काम के रहना या कम वेतन पर कार्य करना, बच्चों को स्कूल न भेज पाना, और लम्बे समय के लिए निर्धन बने रहना। गरीब रहने का अर्थ यह भी है कि अल्प भोजन खाना, कमजोर स्वास्थ्य, भारी शारीरिक काम करने योग्य न होना तथा निम्न भुगतान का काम लेना, जो फिर गरीब को हमेशा के लिए गरीब ही बना रहने देगा। इस प्रकार चक्र गरीबी से प्रारम्भ होकर गरीबी तक ही समाप्त होता है। अतः इसमें कोई विस्मय नहीं कि थामस गाल्डविन जैसे समाजशास्त्रियों ने असमानता या गरीबी की सामाजिक अवधारणा को इतना महत्व दिया।

निर्धनता के परिमापन की अभिव्यक्ति

निर्धनता के परिमापन क्या हैं? प्रमुख परिमाप है– कुपोषण (2100 से 2400 कैलोरी प्रतिदिन से नीचे), निम्न उपभोग व्यय, न्यूनतम आय (1998–99 के मूल्य स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में 218.75 और नगरीय क्षेत्रों में 247.80 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह से कम) तथा मानों की अस्वास्थकर दशाएँ। मोटे तौर पर किसी समाज की निर्धनता की अभिव्यक्ति, न्यून संसाधनों, निम्न राष्ट्रीय आय, निम्न प्रति व्यक्ति आय, आय वितरण में बड़ी विषमताएँ, कमजोर रक्षा और इसी प्रकार के कारकों में होती है।

विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित अनुसंधान में राजस्थान के एक जिले में निर्धनता के अध्ययन आधार पर इस लेखक ने उन घरों के गरीबी से जुड़े लक्षण बताये हैं। जिनमें रहने वाले लोग निर्धन होते हैं। इन लक्षणों में से कुछ प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं– उस घर में पूर्ण कालिक मजदूरी अर्जित करने वाले का अभाव, वे घर जिनमें परिवार की मुखिया स्त्री हो, वे घर जिनमें 18 वर्ष से कम आयु के 6 बच्चों से अधिक हों, वे घर जिनके मुखिया दैनिक मजदूरी पर निर्भर रहते हों, वे घर जिनमें प्राइमरी से भी कम स्तर की शिक्षा प्राप्त सदस्य हों, वे घर जिनमें सदस्यों को कार्य का कोई अनुभव न हो तथा वे घर जिनके सदस्य अंशकालिंक रोजगार में हों।

भारत में निर्धनता का अनुपात व फैलाव

भारत में विकास में द्विभाजन पाया जाता है। विश्व औद्योगिक उत्पादन में भारत का 19वाँ स्थान है तथा कुल सकल राष्ट्रीय उत्पादन (ळछच) में 12 वां स्थान है, फिर भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग अत्यन्त निर्धन है। संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव विकास इन्डेक्स ने (जिसके तीन सूचक हैं– जीवन अवधि, शैक्षिक उपलब्धि तथा क्रय शक्ति की समानता के संदर्भ में वास्तविक (जी.डी.पी.) भारत को 174 राष्ट्रों में से (सितम्बर 2000 में यह संख्या 179 हो गयी) 134वां स्थान दिया है। वास्तविक प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) के अर्थ में भारत को 141वां स्थान दिया गया है, जबकि पाकिस्तान का 100वां तथा चीन का 123वां स्थान है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में सम्पूर्ण उत्पादन दर में महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई है। प्रति व्यक्ति आय में उत्तरोत्तर वृद्धि 1980–81 में 1630 रुपये से 1987–88 में 3289 रुपये, 1990–91 में 4934 रुपये, 1993–94 में 6234 रुपये और 1999–2000 में 9739 रुपये दर्ज की गयी। राजस्थान में यह 1999–2000 में 7141 रुपये, 1998–1999 में 7694 रुपये, और 1997–98 में 7811 रुपये थी। यदि 1999–2000 को आधार वर्ष माना जाए तब यह आय 1999–2000 में 18900 रुपये थी। स्थिर मूल्यों (1980–81) पर प्रति व्यक्ति आय 1992–93 में 2226 रुपये, 1993–94 में 2282 रुपये और 1994–95 में 2362 रुपये आँकी गई थी। यदि हम राष्ट्रीय मुद्रा के क्रय शक्ति समानता के अर्थों में 1998–99 में भारत में प्रति व्यक्ति आय की गणना करें तो भारत की प्रति व्यक्ति आय (370+) पी.पी.पी. सुधार के साथ 2000+ होगी। फिर भी अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय भारत की अपेक्षा 18 गुनी अधिक होगी। (प्दकपं ज्वकंलेए डंल 1998.99ए 10ए 1998रू 46)

योजना आयोग के आकलन के अनुसार (मार्च 1997 में लकड़वाला समिति की सिफारिशें स्वीकार करने के पूर्व) गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने वाले लोगों का प्रतिशत 1972–73 में 51. 5 प्रतिशत से घटकर 1983–84 में 37.4 प्रतिशत, 1987–88 में 29.9 प्रतिशत और 1993–94 में 18.1 प्रतिशत हो गया। परन्तु विशेषज्ञ समूह के अनुमान के अनुसार यह प्रतिशत इससे काफी ऊँचा था। 1977–78 में 51.8 प्रतिशत, 1983–84 में 44.8 प्रतिशत, 1987–88 में 39.3 प्रतिशत और 1993–94 में 33.4 प्रतिशत था।

योजना आयोग ने मार्च 1977 में देश में मौजूदा गरीबी का आंकलन करने के लिए लकड़वाला समिति की क्रिया विधि अपनाने का निश्चय किया। लकड़वाला समिति सितम्बर 1989 में नियुक्त की गई थी, जिसने जुलाई 1993 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। तीन वर्ष तक रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। 1996 में योजना आयोग ने अचानक इस रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया और गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का अनुमान 1993–94 में 18.1 प्रतिशत से बढ़ाकर 37.2 प्रतिशत लिया। इस निर्णय से न केवल नवीं पंचवर्षीय योजना के विकास कार्यक्रमों पर बल्कि आगे आने वाले वर्षों के कार्यक्रमों पर भी काफी प्रभाव पड़ा।

भारत में लगभग 32 और 35 करोड़ के मध्य निर्धन लोगों में से (योजना आयोग के नये अनुमान के अनुसार) बिल्कुल दरिद्र लोग – जो कि समाज में बिल्कुल नीचे सतह के 10 प्रतिशत में हैं, लगभग 5–6 करोड़ हैं। ये लोग बूढ़े, बीमार, अपाहिज नहीं हैं। उनके लिए रोजी–रोटी ही उपलब्ध कराना नहीं हैं बल्कि उन्हें एक प्रकार की सामाजिक सुरक्षा भी प्रदान करानी है। जिसमें कुछ नियमित आय का प्रबन्ध भी सम्मिलित हो। इसका अर्थ यह हुआ कि 26 करोड़ और 30 करोड़ के आस–पास विविध निर्धन लोगों के लिए रोजगार के अवसर जुटाये जाने हैं। ग्रामीण

क्षेत्रों में ये निर्धन लोग भूमिहीन, खेतिहर मजदूर, आकस्मिक गैर खेतिहर मजदूर (जैसे लोहार, बढ़ई और चमड़े का काम करने वाले) हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में ये निर्धन लोग बिना संगठनों वाले औद्योगिक श्रमिक, साक–सब्जी, फल–फूल बेचने वाले, चाय की दुकानों के नौकर, घरेलू नौकर और रोजाना दिहाड़ी के मजदूर हैं।

विगत कुछ वर्षों में सर्वेक्षणों के अनुसार आर्थिक विकास के साथ–साथ उच्च मध्यम, और मध्यम आय वर्ग के लोगों की संख्या में वृद्धि हुई है। 1997–98 के मूल्यों के आधार पर 30000 रुपये वार्षिक से कम आय वाले घरों की संख्या लगभग 50 प्रतिशत है, 3 लाख रुपये वार्षिक से अधिक आय वाले 0.7 प्रतिशत हैं और 30,000 से 3 लाख रुपये आय वर्ग के लोगों की संख्या कुल घरों की 40 प्रतिशत है। आगामी 10 वर्षों में आशा की जाती है कि इन आय समूहों के अपेक्षाकृत आकार में काफी परिवर्तन आने वाला है। 30,000 रुपये से कम वार्षिक आय वाले घरों की संख्या 14 प्रतिशत रह जाएगी, 3 लाख रुपये से अधिक आय वाले धनी घरों की संख्या 3.5 और 30,000 रुपये से 3 लाख रुपये वार्षिक आय वाले मध्यम वर्गीय घरों की संख्या कुल घरों की लगभग 80 प्रतिशत हो जाएगी। जब तक आय वितरण की असमानता कम नहीं की जाती तब तक गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में कमी करने के अवसर भी कम ही रहेगें।

भारत में मूल्य ऊँचे उठे हैं और आय का दायरा संकुचित हुआ है। वर्तमान में मुद्रास्फीति

की दर 5.94 प्रतिशत बताई गई है, जबकि 1996–97 में यह दर 7.0 प्रतिशत थी, ब्रिटेन में 2.7 प्रतिशत थीं, कनाडा में 1.8 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया में 0.8 प्रतिशत, स्पेन में 2.0 प्रतिशत और स्वीडन में 0.2 प्रतिशत। मुद्रास्फीति में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले कारक हैं–

1. माँग में अत्यधिक वृद्धि, पूर्ति लगभग समान या उसमें गिरावट या ठहराव। इसे माँग का खिचाव मुद्रास्फीति नाम से जाना जाता है।

2. मूल्यों में स्वतन्त्र वृद्धि जो मजदूर संघों के दबाव के कारण श्रमिकों की मजदूरीमें वृद्धि का फल हो सकती है या उद्योगपतियों की अधिक लाभ कमाने की इच्छा हो सकती है। कीमतों में इस प्रकार की वृद्धि या मुद्रास्फीति को मूल्य दबाव मुद्रास्फीति कहते हैं।

3. भारत जैसे विकासशील देशों में मुद्रास्फीति इसलिए भी हो जाती है क्योंकि विकास के प्रयत्न और संरचनात्मक कठोरताएँ भी चलती रहती हैं। मूल ढाँचागत संस्थागत या अन्य तंगियाँ उत्पादन गतिविधियों में रूकावट पैदा करती हैं और अभाव पैदा कर देती हैं। इससे मूल्य बढ़ते हैं और मुद्रास्फीति भी।

4. घाटे की वित्त व्यवस्था धन की अधिकता की स्थिति तो पैदा कर देती है लेकिन साथ–साथ वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि नहीं करती। इससे मुद्रास्फीति की स्थिति बन जाती है।

5. कभी–कभी विकासशील देशों को विकास के लिए प्रमुख वस्तुओं का आयात करना पड़ता है। इन वस्तुओं के लिए अत्यधिक विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है। प्रायोजनाओं के मूल्य बढ़ जाते हैं और मुद्रास्फीति स्वयं बन जाती है। लोग सम्पत्ति, स्वर्ण तथा अन्य गैर उत्पादनीय प्रयोगों में पूंजी निवेश करना पसन्द करते हैं। इससे निवेश योग्य पूंजी का एक बड़ा भाग अस्त–व्यस्त हो जाता है। यह विकास को रोकने का काम करता है और मुद्रास्फीति शक्तियों को कार्य करने का

आधार तैयार करता है। भारत ने उन तमाम समस्याओं का सामना किया है और अब भी कर रहा है, जिन्होंने देश में मुद्रास्फीति को बढ़ाया है।

सामाजिक विचलन/विपथगमन/बी. सामान्यता–

जो व्यवहार किसी समाज विशेष के सामाजिक मूल्यों, प्रतिमानों, आदर्शों एवं मानदण्डो के . विपरीत है वह विचलन या वीसामान्यता है।

लोग न तो पूर्णतया समअनरुपी होते है एवं न पूर्णतया विचलित हमारे समाज में लगभग प्रत्येक व्यक्ति कुछ मात्रा में विचलित है।

विचलन मात्र नियमों का उल्लंघन नही है क्योकि व्यक्ति कभी अनजाने में नियमों का उल्लंघन कर देता है। किन्तु जानबूझ कर उल्लंघन विचलित व्यवहार नहीं है।

विचलन एक सापेक्ष अवधारणा है न कि निरपेक्ष अवधारणा है। समाज बहु विवाह को विचलित व्यवहार समझता है किन्तु मुस्लिम समाज इसकी अनुमति देता है पाश्चात समाज युवक युवती के मुक्त मिलन की अनुमति देता है परन्तु पूर्वी समाज उसकी स्वीकृति नही देता है।

अनुरुपता एवं विचलन में दोनो सापेक्षित अवधारणाएं है गांजा और भांग का सेवन भारत में कोई विचलित व्यवहार नही है। किन्तु पाश्चात देशों में इसकी मनाही है यानी यह वर्जित है। इसी तरह ब्रीटेन में शराब पीना एक सामान्य व्यवहार है। किन्तु भारत में काफी हद तक असमान्य व्यवहार है इसी तरह प्रेम विवाह भारत में असमान्य है किन्तु ब्रिटेन में सामान्य है। इसी तरह मंन्दिर विवाह एवं कोर्ट मैरिज भी भारत में असमान्य व्यवहार है किन्तु ब्रिटेन में सामान्य है।

थियोडोरसन एवं थियोडोरसन के अनुसार,''विचलन का अर्थ सामाजिक मानदण्डो के प्रतिरुपता है।''

राबर्ट वेल के अनुसार–''समाज में औसत व्यवहार से बहुत अधिक भिन्नता प्रकट करना ही विचलन है।''

जानसंन के अनुसार–''विपथगामी व्यवहार केवल ऐसा व्यवहार नही जिसमें किसी मानदण्ड का उल्लंघन होता है यह ऐसा व्यवहार है जोड़ा है यह जानबूझ कर किया गया उल्लंघन है।''

विचलन की विशेषताएं–

1. विचलन सामाजिक मानदण्डो से बहुत अधिक दूर हटना पडता है।

2. विचलन वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनो स्तरों पर हो सकता है।

3. विचलन का सम्बन्ध एक विशिष्ट समाज एवं संस्कृति है।

4. विचलन नियंत्रण को जन्म देती है।

विचलन के कारण–

1. अनुचित सामाजीकरण या सामाजीकरण का अभाव

2. दुर्बल अनुशक्तियां – अनुशक्तियां ऐसी व्यवस्था है जिसके व्यक्ति द्वारा समाज के अनुरूप तथा समाज के स्वीकृति व्यवहार करने पर उसे पुरष्कार एवं विचलित व्यवहार करने पर दण्ड दिया जाता है।

3. कानून के लागू करने मे कमी।

4. तार्किक करण की सरलता– गलत तर्क के द्वारा किसी बात को सही घोषित करना इसके अन्तर्गत आता है लूट के धन के बारे में तर्क देना कि वह धन गरीबों में वितरित किया जायेगा।

5. अनुचित या गलत ढंग से कानून लागू करना।

6. उपसंस्कृति द्वारा वैद्यकरण– किसी क्षेत्र में अपराधी उपसंस्कृति होती है जिसमें अनेक युवक भाग लेते हैं, जैसे– रास्ते में छेड़–छाड़ करने वाला एक समूह इस समूह की अपनी एक संस्कृति होती है। जिसे उप संस्कृति कहते है। इस समूह के लिए छेड़–छाड़ करना, वि–सामान्य न होकर सामान्य व्यवहार है। तथा इसे वे नियमों द्वारा मजबूत भी कहते है। किन्तु इस समूह के लोग प्रमुख संरचना के लिए वि–सामान्य कार्य करते है। विचलित व्यक्ति प्रायः अन्य सामान्य व्यक्तियों के साथ मिलकर विचलित समूहों को जन्म देते है किसी संस्कृति का विचलन उपसंस्कृ ति कहा सकता है। मदिरा सेवी समूह और समलिंग का भी व्यक्तियों का समूह एक उपसंस्कृति का विकास जा करते है।

7. इड, अहम, पराअहम मे संघर्ष–

विचलन के प्रकार – हर्टन एवं हण्ट ने विचलन के तीन प्रकार बताए है–

1. सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक विचलन

2. वैयक्तिक एवं सामूहिक विचलन

3. प्राथमिक एवं द्वितीयक विचलन – जो कि व्यक्ति सामान्य तौर पर सामाजिक नियमों के अनुरूप व्यवहार करता है पर कभी–कभी लुक–छिपकर कुछ गलत काम कर बैठते है तो उसे प्राथमिक विचलन कहा जाता है। जैसे– कभी–कभी बिना टिकट का यात्रा करना या दुकान में बिना दाम चुकाये चले आना, बडे–बडे चोर, डकैत, तस्कर एवं अपहरण कर्ता द्वितीयक विचलन के अन्तर्गत आते है।

नोट– प्राथमिक एवं द्वितीयक विचलन का सबसे पहले प्रयोग लेमर्ट ने किया है।

मेटास्पेन्सर ने विचलन को चार भागो में विभाजित किया है

विचलित कार्य– इसके अन्तर्गत तीन प्रकार के आचरण आते है– 1. अपराध, 2. यौन सम्बन्धी विसामान्यताएं एवं 3. आत्महत्या।

यौन सम्बन्धी विसमान्यताओं के चार भाग हैं–1.समलिंगरति, 2. स्त्री समलिंगीरति, 3. वैश्या वृत्ति एवं 4. कौटुम्बिक व्यभिचार।

जनसंख्या विस्फोट

(च्वचनसंजपवद म्गचसवेपवद)

जनसंख्या के विस्फोट के कारण निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की संभावनाएँ अवरुद्ध हो जाती है। हमारी जनसंख्या के लगभग 47.3 हजार व्यक्ति प्रतिदिन बढ़ रहे हैं या 170 लाख प्रतिवर्ष, या 1700 लाख व्यक्ति एक शताब्दी में अनुमान है कि 1350 लाख लोगों की वृद्धि के लिए हमें 20 लाख टन अन्न, 25000 मी. कपड़ा और 2500 लाख मकान, 1.35 लाख प्राइमरी स्कूल व सेकेण्डरी स्कूल, 4000 अस्पताल, 1500 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 2 लाख हजार डाक्टरों की आवश्यकता प्रतिवर्ष है (प्दकपं ज्वकंलेए ैमचज. 16.30ए 1979रू53)। इस प्रकार अधिक जनसंख्या गरीबी रोकने के प्रयासों और तीव्र विकास की राह में रुकावट डालती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जहाँ तक भारत में सामाजिक परिवर्तन की दिशा का प्रश्न है, सांस्कृतिक निरन्तरता प्रचुर मात्रा में रही है। साथ ही आधुनिक मूल्यों, प्रथाओं तथा संस्थाओं में परिवर्तन भी आया है। परम्परागत स्वरूप स्थिर नहीं रहा है तथा आधुनिक व्यवहार सामान्यतः लम्बी अवधि तक चलते रहने के कारण कार्य प्रणाली में ही समाविष्ट हो गया है।

मद्यपान (शराबखोरी) तथा मादक द्रव्य व्यसन (नशाखोरी)

सेवन की जाने वाली नशीली वस्तुएँ दो प्रकार की होती है– 1. जड़ी बूटियां– जैसे– भांग, गांजा, चरस, अफीम, आदि तथा 2. तरल पदार्थ, जैसे– शराब।

- फेयर चाइल्ड के अनुसार– ''शराब की असमान्य एवं बुरी आदत ही मद्यपान हैं।"
- बोगर के अनुसार– व्यक्ति आपत्तियों एवं चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिए शराब का प्रयोग करता है।''
- गांधी जी के अनुसार– ''मुझे सम्पूर्ण भारत का यदि एक घंटे के लिए तानाशाह बना दिया जाए जो मैं बिना किसी छूट के पहला कार्य शराब की सभी दुकानों को बन्द करूँगा।''
- डा. अरनेष्ट बाउन्डर का मत है कि–''मद्यपान से गले का कैन्सर पनपता है, शराब से गठिया, चर्मरोग, हृदय रोग, अपच, आंख का रोग, श्वांस कष्ट, डिप्थीरिया आदि रोग पनपते हैं।''
- 1930 में गांधी इर्विन समझौते की 11 शर्तों में से एक मद्य निषेद्य की शर्त भी थी।
- स्माइल्स एवं लेडी बैल ने इंग्लैण्ड में शराब और गंदी बस्ती के सहसम्बन्ध का अध्ययन किया।
- करांची में कांग्रेस ने 1931 में पूर्ण नशा बन्दी का निश्चय किया।
- 1937 में राज्यों के कांग्रेसी मंत्रीमण्डल बने तो उन्होंने मद्यनिषेद्य के कार्यक्रम को अपनाया।
- लौंगर– ''कारखाने के अधिक गर्म या ठंडे वातावरण से होने वाली असुविधा को दूर करने को मजदूर मदिरा का प्रयोग करते हैं।''
- जेनेट–''मद्यपान का मुख्य आधार सामाजिक अपर्याप्ता है।''
- संविधान के 47वें अनुच्छेद में राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों में भी मद्य निषेद्य की बात की गई है।
- 1954 में श्रीमान् नारायण की अध्यक्षता में नशा निषेद्य जांच समिति गठित की गई है।
- महानिषेद्य अध्ययन दल 1964

- मुम्बई में महानिषेद्य में सर्वप्रथम कार्य सन् 1949 में कानून बनाकर सन् 1950 से पूर्ण महानिषेद्य घोषित किया था।
- कांग्रेस 1931 में मद्यनिषेद्य आन्दोलन में भाग लेना प्रत्येक नागरिक का जन्म सिद्ध अधिकार है।
- महानिषेद्य कार्यक्रम 31 मार्च 1956 को लोक सभा में स्वीकार्य किया गया।
- 1985 में भारत सरकार ने जीम छंतबवजपब कतनह ंदक च्लेबवजतवचपब ैनइेजंदबमे ।बज 1985 पारित किया।
- 1790 में आबकारी कानून बनाया गया।
- 1905 में इण्डियन एक्साइज कमेटी की नियुक्ति की गई।

एड्स क्या है?

अर्जित रोध क्षमता अभाव संलक्षण का एड्स यह आदिवर्णिक शब्द है। इस आदिवर्णिक शब्द का विस्तार, स्थिति का बहुत सही तरीके से वर्णन करता है।

अर्जित – व्यक्ति के खुद के व्यवहार या स्थिति की वजह से संक्रमित होना।

रोध क्षमता – सुरक्षा प्रणाली

अभाव– एक दुर्बल शरीर

संलक्षण– किसी भी रोग में प्रायः पाये न जाने वाले विकारों या लक्षणों का समूह।

हमने देखा की एड्स रोध क्षमता प्रणाली का एक गंभीर विकार है। रोध क्षमता प्रणाली हमारे शरीर में संक्रमित किसी भी रोग के विरोध में मोर्चाबन्दी करके हमारे शरीर का रोगों से बचाव करती है। एड्स एक ऐसी स्थिति है, जहां इस प्रणाली पर ही आक्रमण होता है। शरीर के संक्रमण से मुकाबला करने के सामान्य बचाव ध्वस्त हो जाते हैं और शरीर संक्रमणों और कैन्सर के प्रति अतिसंवेदनशील बन जाता है। कुछ संक्रमण तंदुरुस्त व्यक्तियों पर साधारणतः असर नहीं कर पाते। परन्तु जब प्रतिरक्षा की शक्ति कमजोर या मंद पड़ जाए तो उन्हें फैलने का मौका मिल जाता है और उन्हें सही में अवसरवादी संक्रमण कहा जाता है। एड्स की पहचान सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका में 1991 में की गई जबकि पहले से तंदुरूस्त समलिंगी व्यक्ति विरले संक्रमण जैसे न्युमोसाईटिस कारीनी न्युमोनिया से पीडित होकर कष्ट सहते हुए मरने लगे। बहुत चर्चा और खोज के पश्चात् वैज्ञानिकों ने इस नये संलक्षण की पहचान कर इसे एड्स का नाम दिया।

एच.आई.वी. क्या है?

एच.आई.वी. अथवा मानवीय रोध क्षमता अभाव विषाणु ऐसा विषाणु है जो एड्स का कारण है। इसे पाश्चर संस्थान के डॉ० लुक मान्टेगनेर ने पृथक किया था। शुरू में यह दो नामों से जाना जाता था। लिम्फॅडीनो पॅथी एसोसिएटेड वायरस और हयुमन टी लिफोसायटोट्राफिक वायरस टाईप। परन्तु "इण्टरनेशनल कमेटी ऑन नॉमनक्लेचर ऑफ वायरसीस् ने आखिरकार इस एच. आई.वी. की उपाधि दी।

जैसे की वर्तमान नाम सूचित करता है, यह वायरस जाति विशेष है– यह केवल मानव पर ही प्रभाव डालता है। कुछ लोगों द्वारा उठाई गई शंकाओं का, जैसे की, क्या बिल्लयां, कुत्ते और कीड़े इस विषाणु को फैला सकते हैं, इस तथ्य की वजह से समाधान हो जाएगा।

एच.आई.वी. के उगम के बारे में बहुत से सिद्धान्त हैं। परन्तु जैसे की श्री केनेथ काऊँण्डा, भूतपूर्व राष्ट्रपति, झांबिया ने कहा–''इस रोग की शुरूवात कहां से हुई यह जानने से ज्यादा जरूरी है, यह जानना कि यह कहां जा रहा है।''

एच.आई.वी. किस तरह फैलता है?

एड्स लाईन पर फोन करने वाले अधिकतर व्यक्ति अपनी विविध सक्रियाताओं या व्यवहार के कारण संचारण की संभवता को लेकर चिंतित नजर आये। परामर्शदाता के लिए यह बहुत जरूरी है कि वह इन सब प्रश्नों की तरफ ध्यान दे ताकि स्थिति का सही आंकलन किया जा सके। संचारण की कड़ियां संकल्पना इसे स्पष्ट करने में मददगार साबित होगी। ई.एम.आर्मस्ट्रांग के नजरिये से, यदि संक्रमण होना है तो संचारण कडी को कहीं भी टूटना नहीं चाहिए। विषाणुओं के संचारण के लिए तीन चीजों का होना जरूरी है– 1. संक्रमित व्यक्ति में पर्याप्त रूप में विषाणु होने चाहिए, 2. संक्रमण के लिए विषाणुओं का दर्जा उपयुक्त होना चाहिए, 3. एक उचित मार्ग का होना भी आवश्यक है।

1. पर्याप्त मात्रा में विषाणु– एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति के शारीरिक द्रव्यों में पाये जाते हैं। इन द्रव्यों में विषाणुओं के स्तर अलग होते हैं, खून, सिरिब्रो स्पायनल द्रव्य, वीर्य, योनि और ग्रीवा के स्त्राव में संक्रामक विषाणु और विषाणुओं से संक्रमित पेशीयों का केन्द्रीय करण होता है। स्तनों के दूध में इनकी मात्रा में बदलाव आ सकते है जबकि दूसरे शारीरिक द्रव्यों में कम या शून्य विषाणु अंश होते हैं। संचारण केवल उन्हीं शारीरिक द्रव्यों के द्वारा ही हो सकता है जिनमें की विषाणुओं की मात्रा अधिक हो, जैसे– खून, वीर्य योनि द्रव्य, और ग्रीवा के स्त्राव।

2. विषणुओं का दर्जा–इसका मतलब है कि संक्रमित होने के लिए विषाणु गर्मी, ब्लीच, या रसायनों द्वारा क्षतिग्रस्त ना हो। हालांकि एच आई व्ही बहुत ही कमजोर होता है। यदि इसे 56 डिग्री सेल्सियस तक 30 मिनट के लिए अनावृत कर दिया जाए या फिर कुछ सेकेन्डों के लिए उबाला जाए तो यह मारा जा सकता है। रासायनिक किटाणु नाशक और रोगाणुनाशी जैसे सोडियम हायपोक्लोराईट का घोल, कैल्सियम हायपोक्लोराईट इथेनाल और फारमलिन के कुछ संकेन्द्रण भी इसे निष्प्रभ कर देते हैं। 3. मार्ग :– यद्यपि पहली दोनों स्थितियां मौजूद हो तो भी मानव शरीर में प्रवेश करने के लिए इसे एक मार्ग की आवश्यकता होती है। इसलिए सी एस एफ जिसमें की एच आई व्ही का गाढ़ापन सबसे अधिक मात्रा में होता है, खतरनाक नहीं माना जाता क्योंकि यहां विषाणुओं के संक्रमण का मार्ग नहीं होता। विषाणुओं से संक्रमित द्रव्य को ग्रहण करने वाले व्यक्ति के शरीर तक एक मार्ग की आवश्यकता होती है। यह मार्ग उपलब्ध कराया जाता है जबकि व्यक्ति की त्वचा में ब्रण, दरार या कटाव हो या अक्षत म्युकस टिशु द्वारा जो कि योनि, मलद्वार, मुंह और आंखों में विद्यमान होते हैं।

संचारण के मार्ग

1. लैंगिक सक्रियता– यहां संक्रमित शारीरिक द्रव्यों का स्थानान्तरण होता है। इसमें योनि, मौखिक और गुदद्वार संभोग शामिल है। विभिन्न लैंगिक सक्रियाओं में विभिन्न खतरे होते हैं।

गुदद्वार संभोग में संक्रमण का खतरा सबसे अधिक होता है क्योंकि श्लेष्म की सतह, जो विषाणुओं के लिए प्रवेश द्वार का काम करती है, वह किसी भी चोट के प्रति संवेदनशील होती है। योनी संभोग में एच.आई.वी. का संक्रमण जब वीर्य की संक्रमित कोशिकायें औरत के मैथुनांगीय क्षेत्र के लिंफोसाईटस् और मकोफेजिस को संक्रमित करती है। सक्रिय पुरुष साथी को संक्रमण का खतरा लिंफोसाईटस् और मैकोफेजिस् से होता है जो शिश्नाग्र या मूत्र मार्ग से होकर जाते हैं।

2. पेरेटेरल मार्ग– इसके अन्तर्गत संक्रमित व्यक्ति के साथ संक्रमित रूधिर आदान या खून से जुड़े कुछ उत्पादन, पिचकारी का सांझे में प्रयोग या किसी तीक्ष्ण उपकरण का उपयोग आते हैं। भारत में राष्ट्रीय नीति के तहत् हर दिये जाने वाले खून के यूनिट या खून के उत्पादों की जांच आवश्यक होने की वजह से इस मार्ग से संक्रमण का खतरा बहुत की कम है। नसों के अन्दर दवा लेने वाले यदि सुइयों का साझे में इस्तेमाल करें तो भी संक्रमण का खतरा हो सकता है। स्वास्थ्य व्यावसायिकों में यह खतरा बहुत कम होता है यदि वे दस्तानें आदि का उपयोग करके सावधानी बरतें। ऐसे व्यक्ति को अधिक खतरा होता है जो ऐसी स्थिति में काम करते हों जहां रक्त अधिक मात्रा में हो। इनमें शामिल है दाईयां, सर्जन और वे लोग जो शव विच्छेदन का काम करते हैं।

3. पेरिनेटल मार्ग– एक संक्रमित महिला विषाणुओं का संक्रमण प्लॅसेंटा में से गर्भावस्था में, प्रसव के समय मैथुनांगीय द्रव्यों या रक्त के द्वारा और स्तनपान के समय दूध द्वारा कर सकती है। स्तनों के दूध में विषाणुओं के स्तर इस पर निर्भर करते हैं कि महिला किस हद तक संक्रमित हैं। एचआईवी संक्रमण की शुरूआत में और एड्स के आखरी पडाव पर विषाणुओं का शरीर में सबसे अधिक जमावडा होता है। पहले दिये गये तख्ते में दिखाया गया है कि संक्रमण की सहूलियत की दृष्टि से कौन सा मार्ग सबसे अधिक खतरनाक है, और वे मार्ग हैं, जो वास्तव में संक्रमण के काम में आते हैं। यद्यपि लैंगिक सक्रियता में सौ में से एक या हजार में से एक बार संक्रमण का खतरा है फिर भी यह तीन चौथाई मामलों का लेखा जोखा बनाती है क्योंकि लैंगिक सक्रियता बार–बार हो सकती है। परामर्शदाता को इस बात का ख्याल रखना चाहिए और सेवार्थियों के लैंगिक व्यवहार के बारे में पूरी जानकारी हासिल कर लेनी चाहिए। खतरे का व्यौरा व निर्धारण इस मुद्दे का एच आई वी से जुड़े परामर्श अध्याय का विस्तार किया गया।

एच.आई.वी. किस तरह नहीं फैलता–

एच.आई.वी. साधारण सम्पर्क से, जैसे की छूना, हाथ मिलाना, भीड़ वाली जगह किसी से सम्पर्क, इकट्ठे खेलने से या काम करने से नहीं फैलता। इकट्ठे खाना खाने से या चम्मच वगैरहा इस्तेमाल करने से एच.आई.वी. संक्रमण का खतरा नहीं होता। ना ही विषाणु संक्रमित होते हैं, तैरने के तालाबों से या टायलेट सीट से।

इसका संक्रमण मच्छरों के काट खाने से भी नहीं होता क्योंकि मच्छर इंसान के शरीर का खून चूसते है। मलेरीयल पैरसाईट की तरह ह्यूमन इम्यूनो डेफिशियंसी वायरस अपने आपको मच्छरों के शरीर के अन्दर पुनरावृत नहीं कर सकते।

शरीर पर एच.आई.वी. का असर

सी डी 4 लिंम्फोसाईट्स, एक प्रकार के श्वेत रक्त कण हैं जो कि शरीर में घुसे हुए किसी भी बीमारी के जीवाणुओं को, जो की आपकी सेहत को बरबाद कर सकें, पहचान कर उनका प्रतिकार करते हैं। जब एच.आई.वी. का संक्रमण शरीर पर होता है तो ये विषाणु अपने आप को इन कणों के साथ जोड़ लेते हैं। सी डी 4 पेशी के अन्दर जाकर एच.आई.वी. हर दिन अपनी एक खरब तक कापियां बना लेता है। यह पेशी की शक्ति एवं सामग्री का उपयोग करते हुए कापियां बनाता है और अपने आपको सी डी 4 पेशी के न्युक्लियस में समाहित कर लेता है। जब विषाणु पेशी की शक्ति और सामग्री का, विषाणु की कापियां बनाने में पूरी तरह से उपयोग कर लेता है, तो टूट कर दूसरी पेशियों को संक्रमित कर देता है। यहां भी वह उसी प्रकार पेशिका की शक्ति और सामग्री का उपयोग करते हुए बढते जाते हैं।

जब एच.आई.वी. लिंम्फोसाईट से बाहर आ जाता है तब वह उस पेशिका को मार देता इस तरह से ज्यादा से ज्यादा पेशिकाओं के मरने से रोगों के कीटाणुओं के लिए शरीर पर संक्रमण करना आसान हो जाता है। बहुत से ऐसे संक्रमण जिन्हें 'अवसरवादी बीमारी' के नाम से जाना जाता है, कमजोर पडे हुए शरीर को निशाना बना लेते हैं।

बहुत से लोग एच.आई.वी. और एड्स को पर्यायवाची ढंग से इस्तेमाल करते हैं। हालांकि परामर्शदाता को इन दोनों का फर्क मालुम होना चाहिए। एक व्यक्ति, जो इस विषाणु से संक्रमित हों, वास्तव में बीमार न लगे और बीमार दिखाई न दे वह एच.आई.वी. बाधित कहलाता है। यह अवस्था काफी समय तक रहती है। एड्स असल में एच.आई.वी. की आखिरी पायदान है। व्यक्ति बहुत सारी 'अवसरवादी बीमारियों' से ग्रस्त होता है। यह टूटना धीरे–धीरे होता है।

एच.आई.वी. बीमारी के रोग विषयक पड़ाव

जो व्यक्ति एच.आई.वी. से संक्रमित हो, वह कुछ प्रमुख अवस्थाओं से गुजरता है–

1. तीक्ष्ण संक्रमण– जब व्यक्ति शुरू से संक्रमित होता है तब शरीर तुरन्त रोग प्रतिकारक नहीं बनाता। इसलिए कुछ लक्षण दिखाई नहीं देते। इस अवधि को ''खिंडकी अवधि'' पुकारते हैं क्योंकि हमेशा की रोग प्रतिकारक टेस्ट नकारात्मक नतीजे देती है। संसर्ग के बाद यह स्थिति 6 हफ्ते से लेकर तीन महीनों तक रह सकती है। जबकि एड्स संक्रमित व्यक्ति इस अवधि में सबसे अधिक विषाणु लिए हुए होता है और इस वजह से बहुत ही संक्रामक होता है। विषाणुओं का स्तर बहुत अधिक होता है और इसे केवल सीधे एन्ओजन और पी.सी.आर. टेस्ट के द्वारा जांचा और पहचाना जा सकता है।

दो से 6 हफ्ते के उद्भवन काल के बाद करीब 50 प्रतिशत व्यक्तियों में तेज और बुखार अन्य लक्षण दिखाई देने लगते हैं जिन्हें की फ्लू समझ कर खारिज कर दिया जाता है। दो हफ्तों के भीतर व्यक्ति सामान्य हो जाता है। इस बिन्दु पर सेरो कनवरजन या रोग प्रतिकारक बनने शुरू हो जाते हैं। सम्पर्क कर्ताओं को यह बताना जरूरी है कि एड्स या एच.आई.वी. की विभिन्न पायदानों में यह जरूरी नहीं है कि कुछ लक्षण दिखाई दें। एक व्यक्ति एच.आई.वी. से यदि सम्पर्क में आया हो तो तुरन्त मंहगी पी.सी.आर. जांच करा सकता है या खिडकी काल के इंतजार के बाद सस्ती म्स्पै। जांच करा सकता है। संक्रमण के बारे में शंका का समाधान इन्हीं जांचों द्वारा हो सकता है।

2. शीघ्र संक्रमण– यह इस बीमारी की सबसे लम्बी अवधि होती है जिसमें की व्यक्ति में कोई भी लक्षण दिखाई नहीं देते और प्रायः ठीक–ठाक ही होता है। भारत में यह अवधि पांच से सात साल तक या ज्यादा की हो सकती है। इस समय काल में व्यक्ति तरह–तरह की त्वचा की बीमारियों से पीड़ित हो सकता है क्योंकि रोध क्षमता विषाणुओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया दे रही होती है। एक सामान्य विशेषता है– परसिसटंट जनरलाईझड लिंफेडिनोपॅथी जिसमें दर्द रहित सूजन गले में, ऊर मूल और बगलों में होती है। सी डी 4 की मात्रा (रक्त के एक क्युबिक मिमी में सी डी 4 पेशियों की मात्रा) निरन्तर घटती जाती है लिंफेडेनोपॅथी व्यक्ति के स्वस्थ होने की गलत राय घटाती जाती है। असलियत में व्यक्ति की रोग प्रतिकारक शक्ति क्षीण होती जा रही होती है।

3. मध्यवर्ती एच आई वी संक्रमण– जैसे सी डी 4 की मात्रा गिरने लगती है और 200 और 500 प्रति क्यु मिमी. तक पहुंच जाती है। बहुत सी उलझने सामने आने लगती हैं जैसे कि हरपिझ सिंप्लेक्स या हरपीझझोस्टर और कॅनडीडीयासिस। यदि इनका इलाज न किया गया तो इन व्यक्तियों का अगले 2 वर्षों में निधन हो सकता है।

4. एच आई वी बीमारी का विलंबित पड़ाव– जब सी डी 4 की गिनती 50 और 200 क्यु. मि0मि0 के बीच तक गिर जाती है तब व्यक्ति एड्स से पीडित माना जाएगा। ऐसे व्यक्ति को अवसरवादी बीमारी जैसे की न्युमोसिस्टीस कारीनी न्युमोनिया होने का अत्यधिक खतरा होता है। भारत में जो लोग एच आई व्ही एड्स से पीडित हैं उनमें से 62.3 प्रतिशत तपेदीक का शिकार हैं और दूसरी ओर सामान्य बीमारियां हैं कॅनडिडियासिस (63:), किप्टोस्पोरीडीएसिस (31:), हर्पीसझोस्टर (14:) और टोक्सोप्लासमोसिस (12.8:) अधिकतर व्यक्ति एक से अधिक व्ॅ से पीडित होते हैं।

5. विकसित एच आई वी बीमारी या एड्स– ऐसे लोग जिनमें सी. डी 4 की गिनती 50 प्रति क्यु. मि0मि0 से भी कम हो गई हो वे अगले दो सालों के अन्दर किसी भी अवसरवादी संक्रमण की वजह से मर सकते हैं। सी डी 4 के स्तर में लगातार कमी आने की वजह से उस व्यक्ति को बार–बार बीमारियों का सामना करना पड़ता है। इस पड़ाव में आ कर कईयों को तांत्रिक समस्याओं का जैसे एड्स डीमेंशिया काम्पलेक्स का सामना करना पड़ता है। बहुत से व्यक्तियों में वजन घटने लगता है या पेशियां कमजोर होने लगती हैं।

80 से 90 प्रतिशत च्ॅम्। के लोग प्रतिनिधिक प्रगति वाले होते हैं जिनके जीने की अवधि संक्रमण समय से लेकर 10 वर्ष तक होती है। 5 से 10 प्रतिशत शीघ्र प्रगति वाले लोग होते हैं जिनके जीने की अवधि 3 से 4 वर्ष तक होती है। 5 प्रतिशत के करीब लोगों में रोग में कई वर्षों तक कोई प्रगति नहीं हो पाती। उन्हें लम्बे समय के अप्रगतिशील व्यक्तियों के नाम एड्स सम्बन्धित से जाना जाता है।

यह अनुमान लगाया जाता है कि जो विषाणु लम्बे समय तक संक्रमण के बाद भी प्रगति नहीं करते शायद उनमें रोग जनन की शक्ति बहुत कम होती है। संक्रमित व्यक्ति की अनुवंशिकता भी जिम्मेदार होती है। यह भी जाना गया है कि लम्बे समय तक का तनाव, प्रतिकार शक्ति को तेजी से एच आई वी से जुड़ी बीमारियों की शुरूवात की ओर ले जा सकता है। इसी प्रक्रिया में विषाणुओं को भी दोहराने का मौका मिल जाता है। बीमारी की प्रक्रिया में उपयुक्त सावधानी और प्रबन्धन जरूरी है। अगले अध्याय में इसे विस्तार से लिखा गया है।

एच आई बी परीक्षण

विभिन्न प्रकार की परीक्षण योजनाएं है। वे सुस्पष्ट लक्ष्य के लिए उपयुक्त हैं–

1. खुला हुआ अनामक परीक्षण– इस प्रकार के परीक्षण किसी एक व्यक्ति की ओर निर्दिष्ट नहीं होते। किसी और कारण के लिए संकलित किये हुए रक्त का उपयोग इस के लिए किया जाता है और उस व्यक्ति की पहचान का अभिलेख मिटा दिया जाता है। इसका उद्देश्य है संक्रमण के फैलाव को जन स्वास्थ्य की निगरानी में रोकना।

2. स्वैच्छिक गुप्त परीक्षण– यहां नैदानिक कारणों के लिए परीक्षण किया जाता है। इस प्रक्रिया में विशिष्ट व्यक्ति की एच आई वी स्थिति सुस्पष्ट हो जाती हैं इसलिए गोपनीयता और जानकारी सहित अनुमति बहुत आवश्यक है ताकि उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा और मानवीय हकों का रक्षण हो सके और स्वास्थ्य प्रणाली में विश्वास पैदा हो सके। ताकि और व्यक्तियों को परीक्षण के लिए प्रोत्साहन मिले।

3. अनिवार्य परीक्षण– यह परीक्षण व्यक्ति के अनुमति के बिना किया जाता है ताकि दाता के वीर्य, अंग और पेशियों में से जैविक उत्पाद ग्रहण करने वालों में संक्रमण की रोकथाम की जा सके।

राष्ट्रीय एच आई वी परीक्षण नीति

- किसी भी व्यक्ति को एच आई बी के अनिवार्य परीक्षण के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।
- किसी भी रोजगार या स्वास्थ्य सम्बन्धी सहूलियतों के लिए अनिवार्य परीक्षण नहीं लादा जाना चाहिए।
- पूरे देश में परीक्षण पूर्व और परीक्षण पश्चात् बहुत सी परामर्श की सहूलियतें उपलब्ध करवाई जाएं।
- महामारी की रोक–थाम में व्यक्ति की व्यक्त बी सहमति के बिना परीक्षण कई बार विपरीत साबित हुए हैं। ऐसे परीक्षणों के कारण संक्रमित व्यक्ति भूमिगत हो सकते हैं और किसी भी तरह का हस्तक्षेप मुश्किल हो सकता है।

रोक–थाम

इस बीमारी का कोई पक्का इलाज या आशाजनक टीका उपलब्ध न होने के कारण, असलियत में बचाव का तरीका है, खुदबखुद को आंकना और संक्रमण से बचाना। इसे करने का सबसे अच्छा तरीका है परामर्शदाता के संदर्भ में।

फोन करने वाले व्यक्ति जब लैंगिक सक्रियता से जुड़े सवाल पूछते हैं तब इन गतिविधियों से जुड़े खतरों से उन्हें अगाह कराना चाहिए। परामर्शदाता उन्हें इन खतरों को कम या दूर करने की सलाह दे सकता है। विकल्पों में सम्मिलित हैं–

- लैंगिक गतिविधियों से पूरी तरह परहेज।
- लैंगिक क्रियाओं की शुरूवात में देरी।

- अपने आप को हस्तमैथुन तक सीमित रखना।
- सावधानी पूर्वक साथी का चुनाव।
- साथियों का एक दूसरे के प्रति निष्ठावान होना
- भेदक संभोग से बचना।
- साथियों की संख्या में कमी।
- सहज या बिला प्लान के लैंगिक सम्बन्धों से बचना या।
- सभी प्रकार की लैंगिक सक्रियता में कॉण्डोम का उपयोग करना।

जैसे–जैसे हम इस तालिका को देखते हुए जाते हैं हम पाते हैं कि लैंगिक सम्बन्धों से खतरे बढ़ते ही जाते हैं। परामर्शदाता किसी एक उपाय का सुझाव नहीं देता परन्तु सेवार्थी को उसके खतरे के स्तर की जांच में मदद करता है और कौन सा विकल्प खतरे को कम करने के लिए सबसे उपयुक्त होगा। इसके बारे में बता सकता है। यह भी हो सकता है कि सुझाए गए विकल्पों में से कुछ स्वयं परामर्शदाता के व्यक्तिगत मूल्यों से मेल न खाते हों।

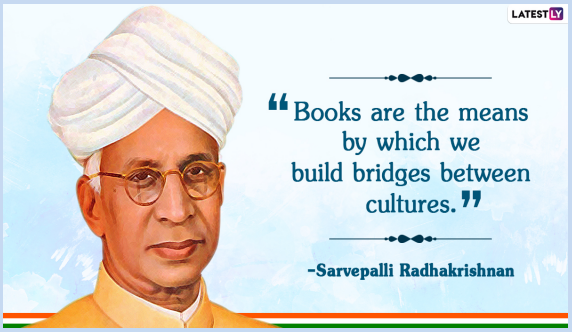

Center for Distance Learning & Continuing Education
MAHATMA GANDHI CHITRAKOOT GRAMODAYA VISHWAVIDYALAYA
Chitrakoot, Satna (M.P.) 485334
E-mail : directordistancemgcgv@gmail.com